अनुक्रम

क्रान्तिकारी युग में धर्म

विश्राम-दिवस का रूपान्तरण

मुझे वह दिन याद है जव मेरे गाँव की मुख्य सडक पर मोटरगाडी दिखाई दी थी, क्योंकि मेरा जन्म वर्तमान शताब्दी के शुरू होने के कुछ पहले ही हो चुका था। मेरा गाँव एक आम कस्वे से भौगोलिक या सान्स्कृतिक दृष्टि से वहुत दूर नही है। मुझे वह दिन भी स्मरण है जव शहर मे पहली वार फिलम दिखाई गई थी। उन दिनो हमारे शहर मे लोग रगमच के काफी खिलाफ थे क्योकि यह व्यर्थ का तमाशा गिर्जाघर की प्रार्थना से अधिक मनोरजक था, और यद्यपि यह उतना 'ईश्वर-विरोधी' कृत्य नही था जितने कि वेकार के नाच-तमाशे, शरावखोरी, जुएवाजी और ताशवाजी थे, फिर भी यह 'सासारिक' वात तो थी ही और इसलिये दभपूर्ण थी। उस गाव के जीवन मे, शक्ति के उत्पादक, शिक्षणात्मक एव रचनात्मक उपयोग तथा दूसरी ओर खेल-तमाशो और उत्तेजना के उन विविध रूपो मे जो प्रलोभक थे और जीवन के गभीर व्यापार मे ध्यान खीचने वाले थे, एक आधारभूत नैतिक भेद किया जाता था। न तो हमारी धार्मिक और न शैक्षिक सस्थाएँ प्रलोभक थी न होना चाहती थी। ये गभीर विषय की चीजे थी, शिक्षा इसलिए गभीर थी कि वह उत्पादक थी, धर्म इसलिए गभीर था कि वह गभीरता पैदा करता था।

जव शहर मे फिलमे और मोटरगाडियाँ आयी तो उनसे वडी सनसनी फैली। पहले तो इन चीजो को किसी ने गभीरता से न लिया, पर उनकी निन्दा करने से भी कोई लाभ न था। उस समय तो वे चीजे विलकुल निर्दोष

मालूम पडती थी। यद्यपि कुछ बडे विचारशील दूरदर्शियो को उनका परिणाम व्यापार, नैतिकता, शिक्षा और धर्म पर क्या होगा, यह दिखाई दे रहा था, पर अधिकाश लोगो ने तो उन्हे केवल अनिवार्य समझकर ही स्वीकार कर लिया।

आयोवा के धार्मिक, साप्रदायिक गाँव अमाना जैसे कुछ स्थान ऐसे भी थे जिन्होने साफ-साफ और जल्दी ही देख लिया था कि वहाँ के युवक शीघ्र ही फिल्मो को गिर्जाघर की प्रार्थना की अपेक्षा अधिक गभीरता से लेने लगेगे, इसलिए उन्होने अपने समाज मे सिनेमा का प्रवेश ही नही होने दिया। बीस-तीस वर्ष तक ये धार्मिक भक्त लोग अपने नवयुवको को सिनेमा वाले शहरो की ओर जाते हुए मजबूर-से देखते रहे। पुरानी पीढी ने इस प्रकार सिनेमा के विरुद्ध अत तक बनाये रखा। लेकिन अधिकाश धार्मिक अमरीकियो ने अपनी अचेतन सामान्य बुद्धि से फिल्मो और मोटरो को या तो भोलेपन से या निर्विकार भाव से स्वीकार कर लिया। वही बात हाल मे रविवासरीय पत्रो, किस्से-कहानियो, जाज-सगीत (और उसके परिणाम), हवाई जहाज, रेडियो और टेलिविजन के तीव्रतापूर्ण प्रसार के बारे मे भी कही जा सकती है। धार्मिक लोगो ने जब-तब ही इनके विरुद्ध छुटपुट या सगठित रूप से विरोध, भय या घृणा का प्रदर्शन किया। पर कुल मिलाकर बीसवी शताब्दी के इन आविष्कारो ने अमरीका के जन-जीवन के ढग, आदर्श और रुचियो मे इतनी तेजी से क्रान्ति ला दी कि लोग यह नही जान पाये कि नीति और धर्म पर इनके अनिवार्य परिणाम क्या होगे।

१९०५ मे इस शताब्दी के मोड पर एक बडे उदार उपदेशक ने धर्म के परिवर्तित रूप और उसके शाश्वत सार के बारे मे ऐसी बाते कही थी जिनका व्यापक प्रसार हुआ

१८९८ ई० मे जब मेरे पिता का जन्म हुआ था तो कोई भी जीवित मनुष्य अब्राहम से अधिक तेज यात्रा नही कर सकता था। ये आश्चर्य-जनक परिवर्तन उसके बाद आये है परन्तु चार, छ या दस मील प्रति

घटे के बजाय मुझे ५० मील प्रति घंटे का सफर क्यो करना चाहिए ? माना कि यह एक बडी सुविधा है, पर यह कोई जरूरी नहीं है कि मै एक अच्छा ही आदमी होऊँ, और जिस संदेश को लेकर मै दौड़ता हूँ वे शायद ऐसे जरूरी, दयालुतापूर्ण, न्याययुक्त एव मानवोचित न हो। हमारी सभ्यता इस पर निर्भर है कि हम क्या है न कि हम क्या करते हैं या उसे कितनी तेजी और आश्चर्यजनक ढग से करते है।

यद्यपि हम डा० सैवेज की पुरानी सभ्यता और आत्मसतोषी नैतिकताओ पर मुस्करा सकते है, पर हम स्वय अपनी कथनी और करनी मे अतर रखकर उसी प्रकार के नैतिक उपदेश देने मे तत्पर रहते है। तेज गति का न्याय से अथवा सस्ते मनोरजन का दयालुता से भला क्या सवध हो सकता है ? आज भी ऐसे धार्मिक नेता है जो शुद्ध 'धर्मनिरपेक्ष' आविष्कारो के प्रति उपेक्षा का दावा करते है और जो यह भी सोचते है कि वुनियादी तौर पर तव से अव तक कोई परिवर्तन नही हुआ है। यह सच है कि ये आविष्कार अपने आप मे भौतिक और वाह्य चीजे अथवा साधनमात्र है, पर अव हर एक इस वात को जान गया है कि अपने परिणामस्वरूप इन आविष्कारो मे न केवल हमारे विचार-प्रकाशन के ढग मे परिवर्तन ला दिया है वलिक इसमे भी कि हम क्या सोचते है और करते है। इन नये आविष्कारो के द्वारा दिये गये नये अवसरो और दिशाओ मे हमारी रुचियो के विस्तार मे क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है।

इन आविष्कारो ने अमरीकी सस्कृति मे जो आम क्राति ला दी है मै उसका वर्णन नही करूँगा, क्योकि उसके तथ्य सभी को मालूम हैं। साथ ही मै यह भी याद नही दिलाऊँगा कि इन आविष्कारो से पहले जीवन कैसा था, क्योकि हो सकता है कि मै 'सादे जीवन' की ही प्रशसा करने लग जाऊँ। सभवत मै अपने मित्र जोसेफ हैरोटूनियन के इस कथन से सहमत हूँ कि हम वहुत-सी अच्छी चीजो की लालसा मे पडकर अच्छाई से प्रेम करना खो वैठे है। जव हम पर लगातार नये और अच्छे अवसरो द्वारा अपनी वढी हुई क्रय-शक्ति का उपयोग करने के लिए जोर डाला

जाता है तो यह पूछना असामयिक प्रतीत होता है कि हम वास्तव मे अद्यतन रहना चाहते है या नही, क्योकि सम-सामयिक सभ्यता की उपेक्षा करके कोई सभ्य कैसे हो सकता है ? कितु जब वस्तुओ के लिए होने वाली भाग-दौड हमारा ध्यान स्थायी सतोष से हटाकर अपनी ओर आकर्षित करती है तो हम पीछे देखते है और उस जमाने की सादगी को ही आदर्श मानने लगते है। अधिकाश नैतिक उपदेशो की यही करुण कहानी है । हम सोचते रहते है कि शाश्वत या सत्य सत्ता की प्राप्ति हमे, जहाँ हम है उसकी बजाय कही और होगी, और साथ ही कि हमारी चेतना इतनी भटकी हुई नही है जितनी कि हमारी करतूते । कितु यहाँ हमारा इरादा नैतिक उपदेश देना नही है। मै तो केवल यह बता रहा हूँ कि किस प्रकार हमारे धर्म और नित्यता के प्यार पर हमारे समय के दबाव का प्रभाव पडा है ।

प्रारभ मे मैने इस शताब्दी के बहुत ही आम परिवर्तनो पर जोर दिया है क्योकि अकेले उनसे ही धर्म मे क्राति आ गयी होती । लेकिन ये परिवर्तन तो हमारे मनो मे आये हुए उसी प्रकार के परिवर्तनो, नयी खोजो, नये इतिहास, नये आदर्शो और बदली हुई दार्शनिक विचार-धाराओ के परिणाम थे । आत्मा की इन आतरिक हलचलो और धर्म पर उनके प्रभाव का वर्णन अगले अध्यायो मे किया जाएगा। यहाँ पर हम केवल यह विचार करेगे कि इन तकनीकी और आर्थिक क्रातियो का धर्म पर क्या प्रभाव पडा ?

प्रारम्भ हम चर्च मे हाजिरी देने, त्योहार मनाने आदि धर्म के बाह्य रूपो से करेगे । १८०० और १७०० की तरह १९०० मे भी धार्मिक [illegible] देहात या गाडियो मे चढकर सप्ताह मे कई बार धर्मस्थानो मे पहुँचते थे । गिरजाघर समुदाय का केन्द्र हुआ करता था और स्थानीय धर्म-सस्था ही धार्मिक गतिविधियो का केन्द्र हुआ करती थी। छोटे-से गाँव मे भी दो-तीन धर्मस्थान आसपास ही हुआ करते थे । परन्तु इस पन्थ-वाद या धार्मिक विविधता ने धर्मस्थान या प्रार्थनाघर के सामुदायिक केन्द्र

के रूप का विनाश नही किया। न्यू इगलैंड मे भी जहाँ का 'सभा-भवन' नगर की एकता का प्रतीक माना जाता था, प्रोटेस्टेंट रोमन कैथोलिक तथा अन्य चर्च 'दिव्य यश के भवन' होने के साथ-साथ समुदायके सदस्यो के मिलने के स्थान भी बने रहे। इस प्रकार गाँव समुदायो का पडोस होना था। पास-पडोस के लोग विभिन्न धर्मस्थानो को जाते थे, पर उनका व्यवहार एक-सा ही रहता था। चार हजार की आबादी के मेरे गाँव मे सात गिर्जाघर थे और ग्रामवासी विभिन्न धर्मो के अनुयायी होते हुए भी परस्पर उन सब से एक आत्मिक समुदाय का लगाव अनुभव करते थे। यह लगाव वे उन लोगो के साथ अनुभव नही करते थे जो किसी भी चर्च मे नही जाते थे। शहर और गाँव मे इस प्रकार के बहुधर्मी समुदाय भौगोलिक पडोसियो के समूह से बनते थे जिनकी परस्पर एक-दूसरे को जानने मे सच्ची दिलचस्पी थी। जब वे लोग सभा मे जाते या कही और मिलते तो उनसे वास्तव मे एक समाज बनता था। 'सामूहिक पूजा' केवल पूजा न होकर पडोस का सम्मिलन भी होती थी। सप्ताह भर तो ये पडोसी अपने-अपने कामो मे व्यस्त रहते थे पर रविवार के दिन वे व्यक्तिगत काम छोडकर, वे वह चीज पैदा करते थे जिसे आजकल की व्यापारिक भाषा मे सामाजिक सबध कहते है। सप्ताह मे एक सभा अपर्याप्त समझी जाती थी। रविवार को सुबह तथा शाम की प्रार्थनाएँ नियम से होती थी, साथ ही रविवासरीय विद्यालय तथा नवयुवको की सभाएँ भी होती थी। सप्ताह के शेष दिनो मे प्रतिदिन एक सामान्य प्रार्थना, समितियो की सभाएँ तथा समूह-गान का अभ्यास होता था। लोगो के अवकाश का काफी भाग धर्म-कार्यो मे व्यतीत होता था। रविवार को समाज मे जाने के अलावा भी आम तौर से लोग मिलनसार बन कर रहते थे। इसके सिवाय रविवार या अवकाश के दिन सार्वजनिक रूप मे उपस्थित होना सामाजिक और गभीरता का परिपालन समझा जाता था। शोरगुल के खेल और प्रतिस्पर्धाओ से लोग बचते थे। घूमने-फिरने, लोगो के घर जाने, पढने और सगीत-साधना मे धर्म-साधना से बचा समय लग जाता था। इन सब

क्रिया-कलापो मे एकरूपता नही होती थी किंतु किसी-न-किसी रूप मे सप्ताह मे यह एक दिन या तो धार्मिक कृत्यो मे लगता या पारिवारिक सामाजिक कार्यो मे । कैथोलिको मे भी जो यूरोप मे सैबाथ कम मनाते थे, यह रिवाज शीघ्र प्रचलित हो गया ।

सामान्य नियम यह था कि रविवार के दिन 'आत्मा-सबधी' कार्य होते थे । उस दिन के धार्मिक कृत्य 'ससार' से इस अलगाव के अग मात्र ही होते थे । राजनीति, खेल तथा व्यापार सभी सासारिक मामले माने जाते थे । रविवार के कार्य अव्यावहारिक तथा व्यस्त जीवन की चिंताओ से मुक्त होते थे । आत्मा का पुनर्निर्माण तथा उसे ऊँचा उठाना ही ईश्वर की शान्ति का उद्देश्य होता था और इस उद्देश्य की प्राप्ति मे वही गभीरता बरती जाती थी जो कि सासारिक मामलो मे । उस दिन कोई बेकार का मनोरजन या खेल नही होता था ।

धर्म-पालन के इस प्रकार के सामुदायिक रीति-रवाजो के बीच ऊपर कहे गए आविष्कार प्रकट हुए । पर भिन्न-भिन्न समुदायो मे वे असमान चलन मे आये । आइए, पहले हम उन 'पेरिशो' के रूपान्तरण पर विचार करे जहाँ कि बीसवी सदी के परिवर्तनो का पूरा-पूरा प्रभाव पडा है । ऐसे पैरिश सारे देश मे, शहर तथा गाँव दोनो मे पाये जाते है कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय अन्तर भी है जिन पर हम बाद मे विचार करेगे, पर इन बुनियादी परिवर्तनो ने आबादी के सभी भागो पर प्रभाव डाला है । इसलिए किसी भी भौगोलिक क्षेत्र मे बहुत बडे-बडे अन्तर पाये जा सकते है, पर वे अन्तर 'वर्गो' के अन्तर नही है ।

घरेलू अनीश्वरवाद के चरम सीमा के प्रकार

केवल बहुत ही उग्र आर्थिक मामले धार्मिक रूप मे महत्त्वपूर्ण है । जो लोग मोटर, रेडियो और अन्य ऐसी चीजे नही खरीद सकते जिन्हे हम सुविधा की दृष्टि से पुराने धार्मिक शब्दो मे 'सामाजिक आवश्यकता' की वस्तुएँ कहेगे, वे उन लोगो से अलग दिखाई दे जाते है जो उन्हे खरीद सकते है और खरी-

दते हैं। आम तौर पर ये विभिन्न वस्तुएँ साथ-साथ चलती है। जो लोग सोचते है कि वे इन्हे खरीद सकते है वे यह भी विश्वास करते है कि ये सभी आधुनिक आवश्यकता की चीजे हैं। जो लोग सचमुच गरीब है और जो सभ्यता की आवश्यक वस्तुएँ नही खरीद सकते वे 'गृह मिशन' सहायता-कार्य या सगठित धार्मिक खैरात के पात्र बन जाते है चाहे उन्हे सासारिक खैरात की आवश्यकता हो या न हो। उन पर दया की जाती है—उन्हे धर्म-स्थानो मे 'आमन्त्रित' किया जाता है, पर उन्हे ऐसा महसूस करने के लिए विवश किया जाता है (जैसे कि वे इस हालत मे अनुभव करते ही है) कि वे धार्मिक समुदाय के अपने आदमी उसी अर्थ मे नही है जिस अर्थ मे अधिक धनवान लोग है। यह धार्मिक दरिद्रवर्ग सदा से अस्तित्व मे रहा है, वह न शहरी है, न ग्रामीण और न है आधुनिक—वह तो विश्वव्यापी है। पर बीसवी सदी के अमरीकी जीवन-स्तर के कारण धनी और निर्धन के बीच का सास्कृतिक अतर बहुत बढ गया है। जिन लोगो के पास बिलकुल कुछ भी नही है और जिन्हे आधुनिक आविष्कारो के बुनियादी सास्कृतिक विशेषाधिकार प्राप्त नही है उन्हे न तो परपरागत धर्म मे भविष्य बनाने की आशा है और न क्रातिकारी राजनीति मे। सिवाय ऐसी विशेष हालतो के, जैसी कि उन नीग्रो-समुदायो की है, जहाँ दासता नाम-मात्र के लिए रह गयी है, ये लोग न तो कभी अपना धर्म-स्थान बना पाते है और न धर्म मे उनकी कोई प्रत्यक्ष दिलचस्पी ही होती है। दरिद्र गोरे लोग तो नीग्रो लोगो की अपेक्षा अवश्य ही कम धार्मिक होते है और मिशनरियो को उनकी चिन्ता भी अधिक होती है। इन बहुत ही ज्यादा दलित वर्गो को घरेलू अनीश्वरवादी कहा जा सकता है, पर उनकी अनीश्वरवादिता श्रद्धा की कमी के कारण उतनी नहीं होती जितनी कि विशेपाधिकारो की कमी के कारण। यद्यपि ऐसे लोगो के सुधार की आशा बनी रहती है तो भी धार्मिक दृष्टि से उनका समुदाय विजातीय ही माना जाता है। शहर और गाँव दोनो के ही जीवन मे वे बराबर अलग छिटक जाते है और अपने सभ्य पडोसियो की

दृष्टि मे उनका महत्त्व उतना ही कम होता है। सौभाग्य से इस सदी मे अब तक ऐसे लोगो का 'वर्ग' अपेक्षाकृत छोटा रहा है।

सामाजिक पैमाने के दूसरे छोर पर करोडपति लोग है। वे भी सगठित धर्म के क्षेत्र के बाहर हैं। वे ख़ैरात के पात्र नहीं है, लेकिन उनकी दृष्टि मे बाकी सब नश्वर मनुष्य इसके पात्र है। वे धार्मिक सस्थाओ के 'देवदूत' या सरक्षक होते है, लेकिन आम तौर पर उस सस्था मे अपने आप को ऊँचा अनुभव करते है। उनके लिए वे आधुनिक आविष्कार जिनके बारे मे हम विचार कर रहे है केवल आकस्मिक सुविधाएँ हैं। इनकी वजह से उनके स्तर मे कोई बडा परिवर्तन नही आता क्योंकि उनकी रुचियाँ 'सासारिक' होते हुए भी आम लोगो की पहुँच के परे होती है। ऐसे लोग स्कूल और अस्पतालो की तरह प्रार्थना-स्थानो मे भी परोपकारी रुचि दिखाते है क्योंकि उनकी निगाह मे वे उपयोगी काम कर रहे होते हैं। गिरजाघर मे वे कभी-कभी ऐसे ही जाते है जैसे किसी अस्पताल मे, या तो परोपकार के कारण या फिर बहुत जरूरतमद मरीज के तौर पर। एण्ड्रयू कार्नेगी जैसे, जो चर्च के बजाय पुस्तकालयो को अधिक सामाजिक तथा हितकारी मानता था, परोपकारी लोगो की सख्या वास्तव में बहुत कम है। एक सघ तो फिर भी अपने विवेक से काम ले सकता है, लेकिन एक गैरपेशेवर परोपकारी तो क्या उपयोगी है और क्या नहीं, इस बारे में सर्व साधारण का दृष्टिकोण ही स्वीकार कर लेता है। एक मितव्ययी उसकी दृष्टि से सामाजिक सहायता कोश की स्थापना हाल का सबसे बड़ा आविष्कार है क्योंकि उसकी वजह से वह अनेक छोटी मोटी चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है।

बहुत धनी व्यक्ति जब धार्मिक कार्यों मे पूरी तरह (सरक्षक के तौर पर नहीं) रमता भी है तो ज्यादा सभावना यही रहती है कि वह किसी धार्मिक समुदाय के जीवन मे भाग लेने के बजाय उस भाग को वह अपने अकेले ढग से करेगा। रहस्यवाद, अनासक्त शान्तिवाद, धर्म विज्ञान, ब्रह्मविज्ञान, तथा आध्यात्मिक शिष्यत्व के रूप मे असरदार पादरियो तो

अकेले या विशिष्ट मण्डली मे एकात-साधना की कला का अभ्यास करने के विविध अवसर मिल जाते है। धनियो के वीच इस प्रकार का धार्मिक व्यक्तिवाद कोई नयी चीज नही है।इसलिए वीसवी सदी की धार्मिक विशेषताओ का अध्ययन करते हुए हमे इन पर रुकने की आवश्यकता नही। इस वात के कुछ सबूत है कि धनी अमरीकी उन्नीसवी सदी की अपेक्षा वीसवी सदी मे कम धार्मिक है, लेकिन यह कहना कठिन है कि यह प्रवृत्ति आधुनिक टैक्नोलोजी के कारण ही है। किन्ही विशेष प्रकार के धार्मिक विश्वासो के कारण तो यह प्रवृत्ति और भी कम है। धनी लोगो के धार्मिक विश्वास होते ही इतने वहुरगी और अनिश्चित है कि उनका विशेष विश्लेषण करने से कोई लाभ नही है। एक धनी परोपकारी की अन्तरात्मा जैसी होती है उसका वर्णन एण्ड्रयू कार्नेगी ने अपनी पुस्तक 'सम्पत्ति का सन्देश' मे किया है। लकिन सम्पत्ति का यह सन्देश जो आज भी कार्नेगी के दिनो के जैसा है, धनी व्यक्ति का धर्म नही, यह उसकी 'अन्तरात्मा' ही है। उसका धर्म अधिकतर वहुत व्यक्तिगत, कुछ परम्परा-भिन्न और पूरी तरह अव्यावहारिक होता है।

आधुनिक शहरी चर्च

धार्मिक सघ या समुदायो की ओर अर्थात् उन लोगो की ओर जिन्हे कि परपरागत रूप से धार्मिक कहा जाता है, आते हुए पहले हम वडे शहरी चर्चो पर दृष्टि डालेगे। इन चर्चो के सदस्य व्यक्तिगत रूप से समृद्धिशाली है तथा सास्कृतिक दृष्टि से आधुनिक है, लेकिन वश-परपरा या पारिवारिक पृष्ठभूमि की वजह से वे अपने और अपने वुजुर्गो के रहन-सहन मे अतर के प्रति सदा सजग रहते है। इसीलिए ये लोग वीसवी सदी मे धार्मिक दृष्टि से जो कुछ वना (या विगडा) है उसका अध्ययन करने के लिए अच्छे उदाहरण है। ये चर्च वडे है क्योकि इनके सदस्य प्रार्थना के लिए दूर से भी, आम तौर पर कार द्वारा, आ सकते है। एक टिपिकल शहरी चर्च यद्यपि 'गृह-मिशन' के रूप मे निकटवर्ती

भौगोलिक पडोस की सेवा कर सकता है, फिर भी उसके सदस्य दूर-दूर के रिहायशी भागो और उपनगरो के होते है। इसी प्रकार के एक गाँव के चर्च के सदस्य न केवल पास के कस्बे के धनी व्यक्ति बनेगे बल्कि मीलो दूर के सपन्न किसान भी। ऐसे चर्च सामुदायिक सगठनो के बजाय सभा या सघ ही ज्यादा होते है। स्थानीय के बजाय उनका रूप केन्द्रीय अधिक होता है और इस तरह से आपस मे अपरिचित सदस्य चर्च के काम के लिए इकट्ठे हो जाते है। चर्च किसी स्थानीय समाज का नही होता। यह कुछ ऐसे व्यक्तियो का विशेष सगठन बना देता है जो किसी और ढग से समूह नही कहला सकते। ऐसी सदस्यता भौगोलिक दृष्टि से तो बिखरी होती ही है, साथ ही लचकीली और अस्थिर भी होती है, इसलिए चर्च मे इसकी दिलचस्पी भी इतनी तीव्र नही होती। परिणामत चर्च के कार्यों को चलाने के लिए अधिक बडी सदस्यता की आवश्यकता होती है। इन हालतो मे सगठन तथा उसकी सदस्यता को विस्तृत करने का एक स्वाभाविक आर्थिक कारण रहता है और ज्यो-ज्यो ऐसा चर्च बडा होता जाता है त्यों-त्यों इसमे आकस्मिक तथा भाग न लेने वाले लोगो की हाजिरी बढ़ती जाती है। छोटे, स्थानीय पैरिशो या मण्डलो को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे धार्मिक सीमा के अदर तथा उसके बाहर भी अपने आपको अधिक मजबूत बनाये। और यह कहना कठिन है कि पादरियो की जिस गर्मी से अधिकतर चर्च विज्ञापन करते है वह इन प्रवृत्तियो का कारण है या उसका परिणाम। जो भी हो, आधुनिक हालतो मे सख्या मे कम लेकिन आकार मे बडे चर्च उसकी बजाय ज्यादा काम कर रहे है जितना कि छोटे स्थानीय मडलो द्वारा किया जाता था।

इसके साथ-ही-साथ साधारण सामाजिक कसौटी के अनुसार चर्च की प्रार्थना तथा सेवा के स्तर मे भी 'सुधार' हुआ है। अब पेशेवर प्रशिक्षित, अधिक वेतन पाने वाले पादरियो और कर्मचारियो की सख्या पहले से अधिक है। हर चर्च मे एक स्टाफ पर नियुक्त पादरी, उसका सहायक, वेतन पाने वाले गायक, शिक्षा कर्मचारी तथा सामाजिक कार्यकर्ता

आदि होते है। चर्च ने 'सस्था' का रूप ले लिया है और इसका बजट पहले से बहुत अधिक बढ गया है। पहले से अधिक सदस्य, जिनमे से हरेक के पास कम भार है, पहले के से ज्यादा कुशल 'सेवा' (सर्विस) के लिए खर्च करते है। हालांकि वेतन पाने वाले कार्यकर्त्ता समाज के काम मे भाग लेने के लिए सदस्यो को लगातार प्रोत्साहित करते है, उनका सहयोग ज्यादा और ज्यादा आर्थिक ही होता जाता है। सामूहिक प्रार्थना मे उनका भाग लेना भी अधिक निष्क्रिय हो जाता है। कुछ समय बाद तो लोग गिर्जाघर की प्रार्थना मे भाग लेने इसी ढग से आते है मानो वे सगीत-गोष्ठी या नाटक मे आ रहे हो। प्रार्थना अब लोक-कला के सामूहिक प्रकाशन के बजाय एक व्यावसायिक क्रिया हो गयी है। मिनिस्टर या पुरोहित पर पहले से ज्यादा जिम्मेवारी रहती है। उससे व्यावसायिक क्रिया-कलाप के स्तर की तथा नेतृत्व के क्षेत्र मे अधिक कुशलता और कार्य की आशा की जाती है। साहित्य, नाटक, सगीत, स्थापत्य तथा अन्य कलाओ मे आलोचनात्मक निर्णय के विस्तार के साथ चर्च को भी बाकी कलाओ के साथ सौन्दर्यात्मक मुकाबले मे उतरने के लिए बाधित होना पडा है। अब बेढगी, भद्दी स्वाभाविक प्रार्थनाएँ स्वीकार नही की जाती। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष कलाओ ने धार्मिक नेतृत्व पर भी सुरुचि के सख्त मानदड लागू कर दिये है।

धनी सगठनो तथा उनके पादरी-नेताओ द्वारा कायम किये गये स्तरो का प्रभाव निम्न-मध्यम वर्ग पर भी पडता है। उनके चर्चो का स्तर भी ऊपर से कायम होता है। मुकाबले के दबाव का अनुभव उन्हे भी होता है। क्योकि, यद्यपि सामान्य व्यक्ति की रुचि आलोचनात्मक नही होती, फिर भी, साधारण नागरिक देखता ही है कि आधुनिक आविष्कारो से कुशलता बढ जाती है और यदि वह आधुनिक नेतृत्व की नकल या अनुमोदन नही करता तो बिना नये मानदडो को समझे ही वह अनुभव करने लगता है कि वह खुद पिछड गया है या स्तर से नीचे है। मानदड का स्तर ज्यो-ज्यो ऊँचा होता जाता है त्यो-त्यो शक्तियो और पूँजियो

को सगठित करने की प्रेरणा अधिक होती जाती है। साम्प्रदायिक बधन शिथिल पड जाते है। परिणामस्वरूप बहुत शिक्षित और आलोचनाशील समुदायो द्वारा चलायी हुई प्रवृत्तियाँ आम कस्बो के लिए आदर्श बन जाती है।

इन ज्यादा बडे, अच्छे और सख्या मे कम चर्चों मे हाजिरी के तरीको मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ जाता है। सप्ताह मे एक बार कार मे चर्च जाना अब 'नियमित' हाजिरी माना जाता है। एक औसत सदस्य के समय और शक्ति का बहुत कम भाग अब चर्च की गतिविधियो मे लगता है। सप्ताह के बीच मे औसत व्यापारी और कर्मचारी (यहाँ तक कि किसान भी) १९०० ई० के बजाय आज सामाजिक जीवन से कम अलग रहता है। फैक्टरियो के लोग पहले से ज्यादा मिलनसार है। उत्पादन-सस्था के रूप मे होता है और आर्थिक गतिविधियाँ सामाजिक मामलो के अधिक निकट है। अवकाश का समय अधिक सामाजिक तरीको से खर्च होता है। इसलिए रविवार को सामाजिक रूप से बिताने की माँग भी कम है। उस दिन घर पर रहने, पिकनिक पर जाने या किसी और प्रकार से एकात पाने की ओर प्रवृत्ति अधिक है। और ज्यो-ज्यो, खास कर शहरो मे, शनिवार की सन्ध्या तथा रात्रि को (जॉज-सगीत, नाच, सिनेमा तथा नाटक के रूप मे) तीव्र मनोविनोद बढता जाता है, त्यो-त्यो लोगो का झुकाव रविवार की सुबह आराम करने की ओर होता जाता है। अब तो सारे रविवार के ही सामाजिक उद्धार के बजाय विश्राम या सुस्ती मे गुजारे जाने की सम्भावना रहती है। रविवासरीय पत्रो, रेडियो और फिल्मो के द्वारा नपी-तुली मात्रा मे उदात्त भावनाएँ पहुँचायी जाती है और एक औसत आदमी को उन्हे मनोरजन के तौर पर स्वीकारने मे कोई सकोच नही होता है। अभी शायद वह समय नही आया है जब निश्चय किया जा सके कि सामूहिक पूजा के तरीको पर रेडियो और टेलीविजन का प्रभाव क्या पडेगा। लेकिन अभी से ही इस बात से कि रेडियो पर भी चर्च-प्रार्थना की जाती है और वह औसत दर्जे से अच्छी होती है, यह पता

चलता है कि लोगो का झुकाव 'घर तथा एकात मे' पूजा करने की ओर हो रहा है, बशर्ते उसे पूजा माना जा सके। इस तरह से ये आविष्कार परपरागत पूजा के तरीको और चर्च की गतिविधियो को यदि नुकसान नही पहुँचा रहे तो उन्हे बदल तो रहे ही है।

लेकिन परपरागत धार्मिक रीति-रिवाजो के लिए इस बाहरी खतरे की तुलना मे धर्म के लिए अधिक महत्त्व की बात वे विभिन्न परिवर्तन है जो इन परिस्थितियो मे आतरिक रूप से धर्म मे आ गये है। अधिक शिक्षित पादरी, अधिक धर्म-निरपेक्ष प्रकार के उपदेश, बहुत ही धर्म-निरपेक्ष नव्या प्रार्थनाएँ (जो व्यवहारत मनोरजन ही होती है) नाटकीय प्रभाव, सामयिक कथा-साहित्य की समीक्षा, धर्म से असबद्ध सामाजिक समस्याओ पर विचार-विनिमय, 'बाइबिल-विद्यालयो' के स्थान पर हलकी-सी धार्मिक शिक्षा, और ज्यादा व्यापक धार्मिक प्रेस, ये कुछ ऐसे परिवर्तन है जिन पर ध्यान दिया जा सकता है। बहुत-से सूक्ष्म रूपो मे, जिनकी विवेचना हम बाद मे करेगे, स्वय धर्म ने आधुनिक जीवन के तरीको को स्वीकार कर लिया है। अर्थात् बहुत-सी ऐसी बाते जिन्हे १९०० ई० मे सासारिक माना जाता था, आज के 'उदार' धर्म के पारस्परिक रूप मे शामिल कर ली गयी है। और यहाँ मै कोई ब्रह्म-विद्या के आधुनिकतावाद के बारे मे बात नही कर रहा। मेरा मतलब है कि सिद्धात और विश्वास मे बडे अतर के अलावा भी, धर्मनिरपेक्ष जीवन की शक्तियो और आविष्कारो के साथ धार्मिक व्यवहार और गतिविधियो की ऐसी सगति बैठायी गयी है कि धर्म के व्यावहारिक अर्थ और उसके प्रभाव मे क्रातिकारी परिवर्तन आ गया है। चाहे या अनचाहे, धार्मिक सस्थाओ को इन सासारिक और प्रकट रूप से असबद्ध आविष्कारो के दूर-व्यापी परिवर्तनो को स्वीकार करने और उनसे लाभ उठाने के लिए बाध्य होना पडा है।

हठीले धर्मो के प्रकार

अब धर्म के कम आधुनिक बने रूप पर विचार करते हुए हम उन

समुदायो और क्षेत्रो की ओर आते है जिनके लिए आधुनिक जीवन के बाह्य परिवर्तनो का धर्म के मूलतत्त्वो पर कोई खास प्रभाव नही पडा है। अमेरिका मे तथाकथित 'निम्न' मध्य वर्ग आर्थिक दृष्टि से निम्न नही है—कम-से-कम इतने नही है कि उन पर ध्यान जाय। उनके पास भी बुनियादी सासारिक वस्तुएँ है और उन्हे कुछ बुनियादी शिक्षा मिली हुई है। लेकिन उनके पास उस बुनियादी से ज्यादा शायद ही कुछ है, और बुनियादी क्या है, क्या नही, इसका भाव भी उन्हे उत्तराधिकार मे मिला होता है। वे जितने आराम से रह रहे है उतने आत्म-सतोषी भी है। आज यह सभव है बिना इस बात को जाने बीसवी सदी मे कोई क्रातिकारी बात हो गयी है कि कोई प्राथमिक और हाईस्कूल की शिक्षा या किसी कालेज द्वारा दी गयी हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त कर ले। और यह सभव है कि स्कूल मे मिली शिक्षा मे कोई वृद्धि किये बिना बहुत-से अखबारो, पत्रो और पुस्तको को पढ लिया जाय। यह सोचना भी सभव है कि विज्ञान का मतलब केवल टैक्नोलोजी से है और टैक्नोलोजी का मतलब है केवल शारीरिक सुविधाएँ तथा आराम। और ऐसे धार्मिक सगठनो का सदस्य बने रहना भी सभव है जो अपने सदस्यो को उसी प्रकार विचारो पर टिकाये रखना चाहते है।

ऐसे लोगो के लिए पारिवारिक जायदाद की तरह जीवन का आध्यात्मिक पहलू भी सस्कृति की विरासत मे मिलता है। धर्म का अर्थ 'हमारे पूर्वजो का विश्वास' से कुछ भी ज्यादा नही है, और सस्कृति का मतलब है केवल एक परपरा को आगे बढाते रहना। वे गिर्जाघर मे उसी सतोष तथा मनोयोग के साथ जाते है जैसे कि सगीत-गोष्ठियो मे, और उसी प्रकार नियमित रूप से वे अपराध-स्वीकृति (कन्फेशन) करते रहते है जैसे कि वे स्नान करते है। उनमे से जो कुछ ज्यादा आत्म-चेतन है वे धर्म का वैसे ही आनद लेते है जैसे कि अन्य प्राचीन वस्तुओ का—जो कि आदर की पात्र है, अभी भी उपयोगी है और पवित्र स्नेह दिखाने के लिए बडी सुदर है। लेकिन उनमे से अधिकतर सास्कृतिक दृष्टि से आत्म-

चेतन नही है वे अपने समय के जीवन मे ऐसी उत्सुकता से भाग लेते है मानो इसके द्वारा वे परलोक मे अनत जीवन के लिए सीधी तैयारी कर रहे हो। यह आवश्यक नही कि वे अपने 'विचारो' मे रूढिवादी हो, लेकिन वह यह मानकर चलते है, परमात्मा उनके मूल्यो की रक्षा करता रहता है। बुराइयो से वे खास तौर पर चौकते है और आशा करते है कि वे दूर हो ही जायेगी क्योकि वे अपना नाश अपने आप करती रहती है। केवल अच्छाइयाँ ही स्थायी है और युद्ध तथा अन्य तूफानो को पार करके के बची रहती है। इसलिए जिस प्रकार उन व्यक्तियो के विश्वास स्थायी है उसी प्रकार उनके चर्च भी परम्परागत है। लेकिन इस परम्परा और स्थायित्व मे भी हाल मे जो परिवर्तन आ गया है वह उन्हे मालूम नही है।

अमरीकी आबादी का मुख्य भाग ऐसे ही कल्पनाहीन, आत्मसतोषी लोगो का है जो १९०० ई० से अब तक हुए परिवर्तनो को केवल बाहरी और दिखावटी मानते है। अमरीका मे प्रचलित आधे से ज्यादा धार्मिक रीति रिवाज और विचार इसी प्रकार के है। आँकडो की दृष्टि से ये लोग औसत पर बैठते है। समाजशास्त्री जिसे 'सास्कृतिक पिछडापन' कहते है, ये उसके उदाहरण है, क्योकि जिन घटनाओ मे से ये गुजर रहे है और जो आराम ये उठा रहे है उन्होने उस भौतिक परिवर्तन के अनुपात मे मूल्यो के भाव को नही बदला है। वर्तमान अर्थ अभी आने वाले समय के सूचक नही बन पाये है, और न नये तथ्यो ने नये विचारो को जन्म दिया है। इन हालतो मे धार्मिक परम्परावादिता या स्थिरता का वह अर्थ नही है जो कि आम सास्कृतिक स्थिरता के समय मे होता। समाजशास्त्रियो ने बहुत ही सकुचित रूप मे अपना ध्यान धार्मिक रीति-रिवाज के इन ठोस रूप पर केद्रित किया है और इस प्रकार धर्म को व्यक्तिगत तथा सास्कृतिक स्थिरता देनेवाला कहा है। लेकिन आम नियम के तौर पर यह धर्म के बारे मे उतना ही सही है जितना किसी अन्य सस्था के बारे मे। यह कहना अधिक सही होगा कि जो 'सास्कृतिक पिछडापन' सभी सस्थाओ मे आ जाता है वह धर्म के इस रूप मे प्रकट हो जाता है। यह धर्म सारियकी की दृष्टि से भले ही औसत

पर हो, पर इसका मतलब यह नही कि धार्मिक दृष्टि से यह सामान्य या सही हे।

अत मे हम आबादी के उस बडे भाग की ओर आते है जो धार्मिक दृष्टि से आत्म-सतुष्ट तो नही हे पर अपनी बेचेनी को बडी पुरानी भाषा मे प्रकट करता हे। यह उग्र आचारवादियो का समूह हे। आर्थिक दृष्टि से अशात आबादी से इसका कोई निकट सबध नही है, और न ही अब तक राजनेतिक उदारवाद, राजनैतिक रूढिवाद या अन्य किसी धर्मनिरपेक्ष विचारधारा से इसका सम्बन्ध सिद्ध किया जा सका हे। इसके सदस्यो को भी वे ही बौद्धिक तथा शैक्षिक सीमाएँ हे जिनका वर्णन हमने अभी किया हे, लेकिन वे न तो पूरी तरह 'अधिकार-वचित' हे और न पूरी तरह सुरक्षित हो। वे उन्नीसवी सदी के बचे-खुचे अवशेष हो ऐसी बात भी नही हे। उग्र आचारवाद विरोध और अशाति का बीसवी सदी का आन्दोलन हे। यह आधुनिक जीवन की आलोचना करता हे, पर साथ ही भविष्य के बारे मे शकित हे।

'बाइबिल-ईसाइयो' की शुरू की पीढियो मे आत्मा और शरीर के बीच द्वैत आमतौर पर स्वीकार किया जाता था, और इस तथ्य को पारम्परिक रूप मे लागू करते हुए ही वे बडे होते थे। इसलिए वे जानते थे कि कैसे इस ससार मे रहकर भी इससे अलग रहा जा सकता हे। वे दो ससारो मे रहते थे क्षणिक और शाश्वत, इसलिए धार्मिक गभीरता सासारिक गभीरता से उतनी ही अलग थी जितना कि चर्च राज्य से। यहाँ कोई सघर्ष नही था, केवल द्वैत था। लेकिन जब बीसवी सदी मे ससार आत्मा के क्षेत्र मे प्रवेश करने लगा तो दोनो मे अजीब घपला हो गया। उस हालत मे उस और विरोधी बनना भी आवश्यक हो गया ताकि शरीर के मामलो और आत्मा की मुक्ति के बीच के सुपरिचित भेद को कायम रखा जा सके। उनके द्वैत मे विश्वास फिर से लाने का मतलब था कि स्वय धर्म को सजग होकर पवित्र किया जाए। इसलिए ये प्रतिक्रियावादी विश्वास मुख्य रूप से जिनके विरुद्ध लड रहे थे वह था स्वय आधुनिक या सासारिक धर्म।

ससार के साथ समझौता किये बैठे ईसाइयो को जो बात अनुचित प्रतीत होती थी वही उन्हे समझानी थी कि पुराना द्वैतवाद युक्तिसगत होने के साथ-साथ आधार रूप से सही भी था। स्वभावत ऐसे सदेश की अपील ऐसे वर्गो या समूहो को होनी थी जो कि सासारिक या आत्मिक कारणों से तात्कालीन प्रवाह से असतुष्ट हो गये थे। विश्व-सघर्ष और महायुद्ध के युग से पहले ऐसे सदेश बहुत प्रिय नही थे। अगर थोडा-बहुत आकर्षण उनमे था तो वह जन-नेताओ द्वारा की गयी धन के बढते हुए प्रभाव की आलोचना के कारण था। लेकिन जब आधुनिकता के मुख्य रूप मे महायुद्ध और पूँजीवाद सामने आये, और जब आधुनिक ज्ञान ज्यादा और ज्यादा तकनीकी हो गया, तो ये आधारवादी चर्च दिन दूने रात चौगुने बढने लगे। वे खासकर उन वर्गो और इलाको मे बढे जिनका विश्वास था कि क्रियात्मक कार्यक्रम के रूप मे आत्मा की मुक्ति को आधुनिक ससार के मामलो से बिल्कुल अलग किया जा सकता है। यह धार्मिक अलगाव अवश्य ही प्रतिक्रियावादी है, लेकिन साथ-साथ यह विरोध का सक्रिय आदोलन भी है। धार्मिक और सामाजिक मामलो के इस अलगाव को ग्यारहवे पोप ने व्यग्य से 'सामाजिक आधुनिकतावाद' कहा था, क्योकि इसके अनुसार पादरियो की सहायता लिये बिना भी सासारिक मामले भली प्रकार चल सकते थे। साथ ही यह सच है कि बीसवी सदी मे यह विचार-धारा उदारवाद का ही एक रूप थी। लेकिन तब यह निदनीय समझे जाने वाले सामाजिक सुधार और सामाजिक व्यवस्था से बच निकलने का एक उपाय बन गयी। इसलिए उनके विद्रोही स्वरूप और पैगम्बरी मिशन को समझने के लिए हमे उनकी सैद्धातिक तथा पुस्तकीय सतह के नीचे झाकना पडेगा।

रोमन तथा ऐग्लिकन कैथोलिक चर्चो का परम्परावादी आधारवाद बिल्कुल दूसरे ही प्रकार का है। इन चर्चो मे बाह्य रूप या विश्वास की स्थिरता तथा व्यवहार की आधुनिकता मे एक स्वनिर्मित अन्तर रखा जाता है। चर्च-प्रशासन के ये अधिकारवादी रूप प्रजातत्रीय राजनीति तथा आर्थिक खीच-तनाव मे उत्सुकता से भाग ले रहे है। अब उनके अदर, कम-से-कम

अमरीका मे, वर्ग-चेतनता नही है, अपने विचारो मे वे न तो रूढिवादी ही है और न समाजवादी। आधुनिक प्रोटेस्टेंट की तरह कैथोलिक भी मध्यमवर्ग के विचार-प्रकाशन का शक्तिशाली साधन बन गये है तथा अमरीकी समाज मे सतुलन किये हुए है। लेकिन प्रोटेस्टेंट उदारवादियो के विपरीत वे आज भी वही जो कि वे अब तक रहे है। यहाँ भी हमे यह जानने के लिए कि ये चर्च समकालीन समाज के सघर्ष मे किस प्रकार अपना भाग अदा कर रहे है ऊपरी सतह के औपचारिक रूप तथा अधिकारवाद के नीचे झाँकना पडेगा। उदाहरण के लिए जब कैम्ब्रिज, मसाचूसैट के संट बैनेडिक्ट के केन्द्र मे फादर लियोनार्ड फी ने तथा उनके कुछ साथियो ने फडामेंटलिस्ट 'सिद्धात आदोलन' चलाना चाहा तो उन्हे ऊपर से यह कहकर दबा दिया गया कि इससे हठधर्मिता को प्रोत्साहन मिलेगा। यहाँ अधिकारवाद ने स्पष्ट कर दिया कि वह अपनी सत्ता को आसानी से भुला दिया जाना नही चाहता।

धर्म की बाहरी सम्पन्नता

यह तो स्पष्ट है कि, बहुत से अगणी इतिहासकारो तथा समाजशास्त्रियो ने इस सदी के प्रारम्भ मे जो कुछ कहा था उसके विपरीत, १९०० ई० से अब तक अमरीका मे धर्म का ह्रास नही हुआ है। १८०० ई० मे कुल प्रौढ आबादी के लगभग दस प्रतिशत लोग ही चर्च के सदस्य थे, और शायद इनमे से भी तीन प्रतिशत ही नियमित रूप से चर्च जाते थे। उन्नीसवी सदी मे बढते-बढते सदस्य [illegible] संख्या १९०० ई० मे पचास प्रतिशत हो गयी, और अब [illegible] प्रतिशत व्यक्ति सदस्य है। इनके अतिरिक्त पच्चीस से तीस प्रतिशत [illegible] भी है जो समझते है कि उनका किसी-न-किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्ध है और जो व्यक्तिगत रूप से अस्पष्ट प्रकार से धार्मिक माने जा सकते है। इस प्रतिशत आबादी मे कुछ ही [illegible] ऐसी है जो धर्म से अपना किसी प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार नही करती। ये आकडे, हालाकि बहुत स्पष्ट नही है [illegible] एक सुपरिचित तथ्य की ओर संकेत करते है कि

हालांकि धर्म कभी भी धार्मिक सस्थाओ मे सक्रिय भाग लेने तक सीमित नही रहा, फिर भी उन्नीसवी सदी के प्रारभ के बजाय आज अमरीका मे धर्म अधिक सस्थागत है। आम तौर पर सभी मुख्य अमरीकी धर्म फिर से नया जीवन प्राप्त कर रहे है और धार्मिक नेताओ को अपने मत के बचाव की चिन्ता उतनी नही है जितनी कि एक पीढी पहले थी। लेकिन इस घटना को धर्म का पुनर्जीवन मानने से जो कुछ हो चुका है उसके प्रति नासमझी ही जाहिर होगी। धर्म आगे बढ आया है या कम-से-कम सामने तो आ गया है, उसने बहुत-सी ऐसी चीजे छोड दी है जिन्हे वह पचास साल पहले पकडे हुए था और जिन चीजो से इसे अब भी प्यार है उन्हे इसने नये अर्थ दिये है। कडवे अनुभवो ने इसे सजीदा बनाया है, कम आशावादी लेकिन ज्यादा शक्तिशाली। यदि यह एक सकट पार कर सका है तो इसीलिए कि इसके पास पर्याप्त समझ तथा आम अमरीकी जीवन मे हो रहे पुनर्निर्माण के प्रसग मे अपना पुनर्निर्माण कर लेने की शक्ति है।

स्वभावत अब तक हुए पुनर्निर्माण की मात्रा मे धार्मिक नेता असतुष्ट है और वे स्वय ही इसकी सबसे तीखी आलोचना कर रहे है। उदाहरण के लिए, गृह-मिशन के क्षेत्र के एक प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता, डा० हरमैन नैल्सन मोर्स ने इस प्रकार लिखा है

एक सस्था के रूप मे धर्म बढ तो रहा है पर पहले से धीमी गति से इसकी बढती हुई सदस्यता का प्रभाव चर्च न जाने वाले लोगो पर काफी नहीं पड रहा है। सस्था के रूप मे यह शहर तथा खुले देहात दोनो मे ही सबसे कमजोर है। स्कूल से भी बढकर इसके सगठन, क्रियाविधि और दृष्टिकोणो पर उन्नीसवी सदी की कृषिप्रधान सभ्यता की छाप है। और स्कूल से भी बढकर यह ऐसे नेतृत्व पर निर्भर है जिसे प्रशिक्षण तथा सहायता दोनो ही कम मिले है। मूलरूप मे यह एक अव्यवसायी कार्य ही है। सौ वर्षो मे हुए हर सामाजिक परिवर्तन ने इसके महत्त्वपूर्ण क्षेत्र पर प्रभाव डाला है और स्वय इसका प्रभाव पड़ना बहुत कठिन बना दिया है। अपनी अलग-अलग इकाइयो की स्थापना और व्यवस्था मे यह समाज

में हुए भारी परिवर्तनो को लागू करने का आजतक विरोध करता रहा है, और आज भी कर रहा है।

डा० आर० ए० गैरमैरहौर्न ने इस आलोचना का इस प्रकार विस्तार किया है

विधि-विधान, साम्प्रदायिक राजनीति तथा विभिन्न मतो के बीच दीवार खींचने आदि पर बल देने के कारण चर्च आज की आगे बढती हुई सस्कृति से अलग जा पडा है। एक औसत दर्जे का पादरी आज की कला, सगीत और साहित्य की सराहना से ऐसे दूर है मानो ये किसी और नक्षत्र पर हो।. . वह चर्च कहाँ है जो नये स्थापत्य के एक अधिक साहसपूर्ण रूप मे अपने को अभिव्यक्त करे, या जो आधुनिक कविता के विद्रोह को काबू मे ला सके ? एक धर्मगुरु के लिए नेता होना कठिन है जबतक कि वह उस क्षेत्र मे सामने की पक्ति मे न आजाय। हमारी सस्कृति के सोये पडे हुए अनगिनत मूल्यो को अभी धर्म ने छुआ भी नही है, लेकिन धर्मनिरपेक्षता पर उसका उन्मत्त आक्रमण बदस्तूर जारी है। यह अविश्वसनीय तो है ही, पर उससे भी बढकर यह दुःखद है।

बीसवीं सदी की धर्म निरपेक्षता का कारण यह है कि हमे धर्म मे वैसी समृद्ध मान्यताएँ नही मिलतीं जैसी कि मध्ययुगीन लोगो को या प्यूरिटन को प्राप्त थीं। उनका क्षेत्र धर्म तक ही सीमित था किन्तु हमारा नहीं। विज्ञान, कला, साहित्य और नाटक, सभी से हमे जीवन की महत्त्वपूर्ण गहराइयों का भाव मिलता है। यह एक ऐसा काम है जो पहले केवल धर्म किया करता था।

धर्मनिरपेक्षता और प्रकृतिवाद की समस्या को सुलझाने का एकमात्र रास्ता उनके बीच मे से होकर है न कि उनके बाहर बाहर। जब बिना हिचकिचाहट या मजबूरी का अनुभव किये एक बार यह यात्रा कर ली जायगी तो उस हीए का डर नहीं रहेगा। प्रोफेसर लिमान के शब्दो मे, "हमे भूतकाल के धर्म को अपरिवर्तित रूप मे लाने की आवश्यकता नहीं है, और नहीं हमे किसी ऐसे नये धर्म की आवश्यकता है जिसके आदि-अन्त

का ही कुछ पता न हो। जिस बात की आवश्यकता है वह यह है कि हम कुछ नई चीजो को पवित्र मानें, आदर के नये विषय बनायें, और परमात्मा के साथ नये सम्बन्धो से साहचर्य स्थापित करे।"

इस प्रकार की अपनी आलोचना कोई कमजोरी की निशानी नही थी, लेकिन क्योकि यह इस सदी के अधकारपूर्ण तीसरे दशक मे आयी, इसने एक ऐसे आक्रमण की शुरुआत कर दी जो तब से लगातार बढता चला आ रहा है।

धार्मिक सगठनो की वृद्धि किस दिशा मे हो रही इस बारे मे सही आँकडे पा सकना कठिन है। प्रतिशत के हिसाब से यदि वृद्धि नापी जाय तो उससे छोटे-छोटे, अधिकतर फडामेटलिस्ट चर्चो को बहुत महत्त्व मिल जाता है। सदस्यता के आँकडो की आपस मे तुलना नही हो सकती क्योकि कुछ समुदाय (जैसे रोमन कैथोलिक) सदस्यता जन्म (या बपतिस्मा) से गिनते है, जब कि कुछ दूसरे केवल प्रौढो की ही सदस्यता मानते है। यहूदी आबादी का प्रार्थना-स्थान की सभा मे सक्रिय भाग लेने वालो की सख्या के साथ सही-सही अनुपात निकालना भी असभव है। प्रदर्शित सामग्री स० १ मे एक ग्राफ दिखाया गया है जो बताता है कि मुख्य-मुख्य धार्मिक सगठन एक दूसरे के अनुपात मे तथा आबादी की वृद्धि के अनुपात मे किस प्रकार बढे हैं। इस ग्राफ से यह बात प्रकट होती है कि परिमाणात्मक रूप से पारस्परिक अनुपात मे कोई बहुत बडा परिवर्तन नही हुआ है, यद्यपि छोटे-छोटे सगठनो के अपने अदर काफी परिवर्तन हो गये है। आमतौर पर धार्मिक सगठन पहले के ही अनुपात मे है और आबादी की वृद्धि के साथ-साथ कुछ बढ गये है। प्राप्त आँकडो के और गहरे अध्ययन से पता चलेगा कि उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण-पूर्व मे, अर्थात् आमतौर पर देहाती इलाको मे, चर्चो की सख्या मे काफी वृद्धि हुई है। इसका कुछ सबब तो उन बातो से है जिन पर इस अध्याय मे हम विचार करने आ रहे है। इससे शायद यह सिद्ध नही होता कि इन इलाको मे पहले के बजाय अब धर्म मे ज्यादा रुचि है, लेकिन यह अवश्य प्रकट होता है कि आवागमन के साधनो

मे आधुनिक सुधारो के होने पर किसान इस योग्य हो गये है कि वे दूरस्थित गिर्जाघरो मे जा सके तथा उन्हे अपना सहयोग दे सके ।

पहले से बहुत सुधरी हुई सडको पर दौडती हुई कारो, ट्रको और बसो ने ग्रामीण समाज की सीमाओ को बहुत बढा दिया है। गाँव अब ग्रामीण अमरीका की राजधानी-सा बन गया है, स्कूल पहले से अधिक सुदृढ हो गये है, किसान का बाहरी ससार से सम्पर्क कई गुना अधिक हो गया है, विभिन्न सगठनो तथा समूहो की सभाएँ पहले से कही ज्यादा होने लगी हैं, और रेडियो के साथ इन सब चीजो ने मिलकर ग्रामीण जीवन के अलगाव को लगभग खत्म ही कर दिया है। इन परिवर्तनो का असर चर्च ने पर भी पडा है। खुले देहात के ऐसे हजारो चर्च खत्म हो गये जिनकी सदस्य-सख्या ५० से भी कम थी और जो उस समय के लिए ही उपयुक्त थे जब समाज छोटे-छोटे समूहो मे रहता था। गाँव के चर्च मे किसानो की सदस्यता का अनुपात १९४० तक ४० प्रतिशत था, जिससे ज्यादा यह कभी नही हुआ।

'नगरों की विल्मिंग्टन कौंसिल' की देखरेख मे एक टिपिकल पूर्वी तटवर्ती विल्मिंग्टन डेलावेयर मे किये गये अभी हाल के सर्वेक्षण मे भी कोई ज्यादा नये तरह के परिणाम सामने नही आये । ३७ प्रतिशत आबादी रोमन कैथोलिक है, २७ प्रतिशत प्रोटेस्टेंट, ३ प्रतिशत यहूदी, शेष ३३ प्रतिशत ऐसे है जिनका किसी धार्मिक सगठन से सबध नही है। प्रोटेस्टेंटो मे से (जिनमे अधिकाश मेथोडिस्ट, प्रेस्बिटेरियन या एपिस्कोपेलियन है) केवल तीन बटा आठ सदस्य किसी आम रविवार को चर्च जाते है। रविवासरीय स्कूल की सदस्यता चर्च की सदस्यता का पचपन प्रतिशत है, और रविवासरीय स्कूल मे उपस्थिति चर्च की उपस्थिति से कुछ अधिक होती है। सब से ज्यादा सदस्यता उपनगरों के लोगों की है। और अध्ययनो से पता चलता है कि विकेन्द्रीकरण की ओर कुछ-कुछ प्रवृत्ति है तथा उपनगरीय तथा आसपास के ग्रामीण चर्चों की बजाय शहरी चर्चों मे सदस्यता धीमी गति से बढ रही है।

सामाजिक समस्याओ और सामाजिक दृष्टिकोणो पर धार्मिक समुदायो मे जो अतर पाया जाता है उसे जन-मत-सग्रह की विधि से नापने के एक प्रयत्न का विवरण परिशिष्ट मे दिया गया है। इस प्रयत्न के परिणाम १९४०-४५ मे उसी प्रकार से प्राप्त किये गये परिणामो से बहुत भिन्न है। इन परिणामो के आधार पर ही 'धर्म तथा वर्ग-रचना' के कुशल अध्येता लिस्टन पोप को भी इस परिणाम पर पहुँचना पडा कि चर्चों की सामाजिक स्थिति मे पिछले दशक मे उससे कही ज्यादा अतर हुए जितना कि आमतौर पर माना जाता था।

लेकिन धर्म मे हुए बहुत-से महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो को नापा नही गया है, उनमे से अधिकतर को शायद नापा भी नही जा सकता। जो भी हो, अगले अध्याय, जिनमे कि धार्मिक पुर्नानिर्माण के विभिन्न पहलुओ का वर्णन किया गया है, एक वैज्ञानिक रिपोर्ट के स्तर तक नही पहुँच सकेगे। अपर्याप्त साक्षी के आधार पर भी सामान्य नियम निकालने पडेगे और व्यक्तिगत प्रभाव के आधार पर ही कई जगह मूल्य निर्धारित करने पडेगे।

संस्थागत पुनर्निर्माण

धार्मिक सस्थाओ का विभेदीकरण

हमारी सामाजिक क्राति द्वारा धर्म के अन्दर किये जाने वाले क्राति-कारी परिवर्तन ऐसे आदमी को तो स्पष्ट दिखते है जो धर्म को अदर से देखता है, लेकिन जो धार्मिक सस्थाओ के केवल ऊपरी ढाँचे पर निगाह डालता है उसे वे दिखाई नही देते। आँकडो के द्वारा, कम-से-कम ऐसे आँकडो के द्वारा जो प्राप्त है, वे परिवर्तन नही दिखाये जा सकते। सबसे अधिक सदस्यता वाले चर्च सबसे अधिक स्थिर भी होते है और जहाँ तक सदस्यता का प्रश्न है, जनसख्या मे वृद्धि के अनुपात मे थोडा आगे ही रहते है। धार्मिक सस्थाओ मे जानेवाली जनसख्या का प्रतिशत बीसवी सदी मे उतना नही बदला जितना उन्नीसवी मे। और उन आशकाओ और शेखियो के बावजूद जो प्रेस मे बार-बार निकलती रहती है, प्राटेस्टेट केथोलिक ओर यहूदियो के प्रति-शत मे भी कोई खास परिवर्तन नही हुआ है। इनके किनारे पर कुछ आक-[illegible] नयी शाखाएँ भी है। इन पचास सालो मे दो नये वर्गो के सदस्य [illegible] मे बढे है और वे दोनो असाधारण रूप से स्थिर हो गये है। वे है 'दि चर्च आफ जीसस क्राइस्ट आफ लैटर डे सेंट्स' (दि मार्मन्स) और 'दि चर्च आफ क्राइस्ट, साइंटिस्ट' (क्रिश्चियन साइंस)। मार्मन वे लोग है [illegible] उजगार्डिया की तरह गैर मार्मन लोगो के बीच अपनी इच्छा के विरुद्ध [illegible] हाना पडा है। उनका चर्च पूरे अर्थो मे एक चर्च—इसलिए [illegible] विशिष्ट सस्कृति [illegible] आत्मिक जीवन और उनका [illegible] [illegible] है। दूसरी ओर 'क्रिश्चियन साइंटिस्ट' [illegible] लोग [illegible] जिन्हे जर्मन [illegible] एक [illegible] पुकारेंगे। उनका चर्च उनके लिए एक

विशेष काम करता है—और वह है उन्हे एक विशेष प्रकार का मानसिक स्वास्थ्य देना। वैसे वे अलग दिखनेवाले लोग नही है और व्यवहार मे उनके धर्म का उनकी नागरिकता से कोई सबध नही है। इन दोनो धार्मिक सस्थाओ को अपना दिव्य ज्ञान उन्नीसवी सदी के पूर्वार्ध मे प्राप्त हुआ था और तब से और अधिक प्रेरणा को वे रोकते ही आये है। हालाँकि छोटे-मोटे भेद उनमे होते रहे है फिर भी ये चर्च सुस्पष्ट रूढिवादी सगठन बन गये है, और शायद अमरीकी धार्मिक सस्थाओ मे वे ही सबसे अधिक कठोर है। अब वे 'आदोलन' नही रहे है।

अमरीकी वातावरण मे 'चर्च' और 'सम्प्रदाय' (सेक्ट) मे यह समाज-शास्त्रीय विभेद अधिक उपयोगी नही बैठता, क्योकि राष्ट्रीय चर्च के दृष्टिकोण से सभी चर्च सम्प्रदाय ही है, यूरोपीय राष्ट्रीयताओ पर आधारित चर्च भी तेजी के साथ अपना मौलिक स्वरूप खोते जा रहे है। 'मार्मन', 'आर्थोडाक्स ज्यू' और कुछ छोटे-छोटे धार्मिक समुदाय धार्मिक रूप से सगठित है, लेकिन अमरीका की शेष सभी धार्मिक सस्थाएँ जिनमे रोमन कैथोलिक भी शामिल है, न तो राष्ट्रीय चर्च है, और न सम्प्रदाय ही। उन्हे आमतौर पर 'डिनोमिनेशन' या 'कम्यूनियन' कहा जाता है जिनमे से हरेक एक धार्मिक सघ मे ऐसे लोगो को इकट्ठा करता है जो और तरह विभिन्न समुदायो के होते है। ये सब सगठन मिलकर अमरीकी लोगो का धार्मिक जीवन प्रकट करते है, लेकिन उनमे से कोई भी किसी विशिष्ट सस्कृति या श्रेणी का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता। अमरीकी लोगो के लिए तो धार्मिक मत या 'डिनोमिनेशन' और धार्मिक आदोलन के बीच का भेद अधिक महत्त्व का है। एक धार्मिक मत का रूप स्थिर सस्था का होता है। उसका अपना उत्तराधिकार होता है जिसे वह बहुत प्रिय मानता है, एक शासन होता है जो कि इसकी श्रद्धा को सगठित रूप से प्रकट करता है, और होता है ऐसे सदस्यो का समूह जिसके कर्त्तव्य और मूल्य आमतौर से पहचाने जा सकते है। अधिकाश आन्दोलनो की परिणति सस्थाओ मे हो जाती है, वैसे ही जैसे कि अधिकाश विश्वास मत बन जाते है। एक आदोलन को तब

खतरा हो जाता है जब वह किसी संगठन का निर्माण नहीं करता और एक संगठन को तब खतरा हो जाता है जब वह एक आंदोलन नहीं रहता।

इस अंतर को लागू करते हुए हम उन धार्मिक समूहों पर ध्यान दे सकते है जिन्होंने, उन दो के समान जिनका वर्णन ऊपर किया गया है, अपनी मुख्य प्रेरणा पिछली शताब्दी मे प्राप्त की थी और जो अब उतार पर है। उदाहरण के लिए, उन्नीसवी शताब्दी मे आत्मिकता एक जबर्दस्त आंदोलन थी, और वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ के दो दशको मे भी उसकी निविर-सभाओ और बैठको मे कुछ जीवन था। लेकिन आज तो अध्यात्मवादी चर्च उस आंदोलन के अवशेषमात्र है।

१९०६ की जनगणना मे गिनाये गए बीस से अधिक धार्मिक संगठन पूरी तरह लुप्त हो गये है। थियोसोफी के बारे मे संयुक्त राज्य के १९३६ के जनगणना अधिकारियों ने कहा था 'थियोसोफिकल सोसाइटी'— "इन संगठनो के स्वरूप की वजह से निश्चय किया गया कि इन्हे अब धार्मिक सम्प्रदाय नही माना जायगा और न जनगणना मे उनकी इस रूप मे गिनती ही की जायगी" संभवतः यह निर्णय थियोसोफिकल साहित्य मे पाये जाने वाले [illegible] के बयानो पर आधारित था "थियोसोफी कोई नया धर्म, विज्ञान या दर्शन नहीं है, न [illegible] किसी विज्ञान-धर्म के आधारभूत सत्यों से कोई [illegible] । यह तो [illegible] आत्म विज्ञान है" (थियोसोफिकल यूनिवर्सिटी प्रेस, [illegible], [illegible] प्रकाशक की घोषणा)। लेकिन थियोसोफिस्ट [illegible] द्वारा [illegible] नहीं जानी रही है और उनको इस आंदोलन के धार्मिक न रहने की प्रवृत्ति का कोई [illegible] नहीं मिलता। इन लोगों के दो [illegible], एक ओर वे [illegible] जो [illegible] रूप 'थियोसोफिकल यूनिवर्सिटी' पर [illegible], दूसरी ओर वे [illegible] जिनकी [illegible] धर्म और उसके [illegible] [illegible] मे [illegible]।

[illegible] और इस प्रवृत्ति के बाद भी बीस से अधिक नये संगठन सामने आये है। [illegible] के भी अपने आंदोलन [illegible]। उनमे से [illegible] ने [illegible] संगठनो का जन्म दिया है।

ऐसे आदोलन साम्प्रदायिक हो भी सकते है और नही भी, लेकिन समकालीन धार्मिक आदोलन मे उनका बराबर महत्त्व है फिर चाहे वे क्षणस्थायी हो या फिर नये सगठनो को जन्म दे। वे धार्मिक उभार के रूप हैं और इसलिए अगले अध्यायो मे हमे उन पर उचित ध्यान देना चाहिए।

यहाँ हमे सस्थागत विभेदीकरण के एक और रूप की ओर ध्यान देना है जिसके अदर, इसके जारी रहने की दशा मे धार्मिक सगठनो की रचना मे एक क्रांति लाने की क्षमता है। सयुक्त राज्य की जनगणना मे गिनाये गए सगठन आमतौर से मत है—ऐसे सगठन जिनका मुख्य उद्देश्य (जनगणना अधिकारी और स्वय उनकी राय मे) पूजा या दैवी सेवा है। उनका केन्द्र उन इमारतो मे होता है जिन्हे सदियो से मदिर, चर्च, ईश्वर, का घर, मठ आदि कहा जाता रहा है। लेकिन हमारी शताब्दी मे ऐसे अनेक धार्मिक समाज सामने आये है जिनके भवन आदि चर्च की इमारतो के बजाय बडे व्यापार की इमारतो से ज्यादा मिलते है। उनमे से कइयो को तो कहा ही 'स्टोर फ्रट चर्च' जाता है। वे कर्म और धार्मिक श्रम के लिए बनाये गये सगठन है। ईसाई चर्चो के पारपरिक ढाँचे के भीतर भी 'न्यू इगलैड मीटिंग हाउस' और 'सोसायटी आफ फ्रेड्स' आदि नामो से विधि-विधानो से मुक्त धार्मिक सगठनो की झलक मिलने लगी थी। पिछली दशाब्दी मे अमरीकी धार्मिक सगठनो का काम इतना विशिष्ट, सगठित और व्यावहारिक हो गया है कि धर्म का जीवन ही पूजा से 'सेवा' और वेदी से दफ्तर की ओर जाता हुआ मालूम पडने लगा है। इस शताब्दी के प्रारभ मे भी एक दूरदर्शी धर्म विचारक द्वारा इस विभेदीकरण का आभास दिया गया था और उसने भविष्यवाणी से पूर्ण एक अनुच्छेद भी इस सबध मे लिखा था जिसे हम आगे दे रहे है (देखे प्रदर्शित सामग्री सख्या २)।

आया ये सभी गतिविधियाँ धार्मिक है या नही, यह तो एक सैद्धातिक विवाद है, क्योकि निश्चित रूप से कोई भी नही बता सकता कि व्यापार कहाँ समाप्त होता है और धर्म कहाँ प्रारभ, अथवा किस स्थान पर राजनीति 'राज्य की राजनीति' बन जाती है। अभी तो हमारे लिए चर्चो और मदिरो

के अदर या उनके सहारे बनी हुई बहुत प्रमुख धार्मिक सस्थाओ का वर्गीकरण कर देना ही काफी है।

१. एक पूर्ण तथा आधुनिक शहर के सस्थागत चर्चों मे शिक्षा देने के लिए स्टाफ मनोरजन की सुविधाएँ, क्लब के कक्ष और रसोईघर, व्यावसायिक सामाजिक सेवा, मानसिक चिकित्सा सबधी सलाह और रोजगार दिलाने की सेवा आदि की सुविधा होती है।

२ 'स्टोर फ्रट चर्च' और 'गोस्पेल टैबरनेकल' (धर्मोपदेश शिविर) इसके बिल्कुल विपरीत है। ये प्रचार करने, सात्वना देने या तत्काल दान आदि देने के लिए मिशन के स्थान है। कभी-कभी चर्चों द्वारा इन्हे आर्थिक सहायता दी जाती है, लेकिन अब तो बडे शहरो मे अपने आप ही सगठन, पूँजी या स्थायित्व के बिना इनकी गिनती बढती जा रही है।

३ ईसाई समुदायो मे सामुदायिक केंद्रो की सहायता सामुदायिक या केंद्रीय चर्चों द्वारा की जाती है। ऐसे तीन हजार स्वायत्त केंद्र है जिनकी सदस्य सख्या १० लाख है। यहूदी समुदायो मे ऐसे केंद्रो की सहायता यहूदी धर्म की विभिन्न शाखाओ द्वारा की जाती है।

४ मिशन, सामाजिक कार्य, शिक्षा, धर्मोपदेश और विस्थापित व्यक्तियो के पुनर्वास के केंद्रीय कार्यक्रम के लिए अब चर्च-बोर्ड और प्रशासनिक सस्थाओ को अधिक सगठित तथा सुदृढ कर दिया गया है।

५ मित्रता, मनोरजन, धार्मिक शिक्षा और मिशन की गतिविधियो के लिए बनाये गए युवक-सगठनो ने धार्मिक कार्य को चर्च की गतिविधियो से बहुत आगे पहुँचा दिया है। वाई० एम० सी० ए०, वाई० डब्ल्यू० सी० ए०, वाई० एम० एच० ए०, वाई० डब्ल्यू० एच० ए०, 'क्रिश्चियन एंडीवर सोसायटी' और 'स्टूडेंट वालटरी मूवमेंट' आदि सगठन सघो के बाहर स्वतत्र ही बनाये गए थे।

६ धार्मिक सगठनो के शिक्षा सबधी कार्य मे अब शिक्षा के सभी रूप आते है जिनमे प्राथमिक शिक्षा और रविवासरीय विद्यालय, कालिज और विश्वविद्यालय तक की शिक्षा, धर्मदर्शन सबधी विचार-गोष्ठियाँ

और अनेक प्रकार की तकनीकी सेवा के लिए प्रशिक्षण विद्यालय भी शामिल है।

७ प्रारभिक और उच्च दोनो प्रकार की धार्मिक शिक्षा के लिए और विद्यालयो मे धार्मिक कार्यक्रम की योजना बनाने और उस पर विचार करने के लिए बहुत से सगठन बन गए है।

८ धार्मिक प्रेस तथा प्रचार अब व्यावसायिक आधार पर आ गए है और धर्मनिरपेक्ष पत्रकारिता के सभी पहलुओ से मुकाबला करते है। उनमे धार्मिक उच्चादर्शो और निर्देशो के अलावा आम खबरे और मनोरजन की सामग्री भी रहती है। धार्मिक प्रकाशन-गृह अब अपने प्रकाशन कार्यक्रम का विस्तार बढा रहे है और पारपरिक धार्मिक साहित्य के साथ-साथ अनुसधान योजनाओ के परिणाम भी प्रकाशित करने लगे है।

९ ज्यादा बडे चर्चो द्वारा धार्मिक चर्चा-गोष्ठियो की स्थापना की गई है, और कुछ अतर्मतीय सगठनो द्वारा ऐसी गोष्ठियो की आर्थिक सहायता की जाती है जो औरो पर शक्तिशाली दबाव डाल सकती है।

१० धर्मनिरपेक्षवाद से धर्मो की रक्षा करने और अपने सामान्य हितो को बढावा देने के लिए अतर्मतीय और अतर्राष्ट्रीय सगठनो की भी स्थापना हुई है।

ऐसी सस्थाओ की केवल सूची बनाने से ही यह पता चल जाता है कि धार्मिक रुचियाँ कितनी पेचीदा हो गई है और यह विचार कितना पुराना मालूम पडता है कि धर्म का पालन एकात मे ही हो सकता है। अवश्य ही व्यक्तिगत पूजा अब भी की जाती है, पर सबसे अधिक व्यक्तिगत धार्मिक भावना को भी अब कुशल तथा सगठित धार्मिक कर्मचारियो के प्रयत्नो से प्रोत्साहन मिलने की सभावना रहती है। १९२० से १९५० तक की तीन दशाब्दियो मे उससे पहले की तीन दशाब्दियो मे दुगुनी कैथोलिक सोसाइटियो की स्थापना हुई। प्रोटेस्टेट और यहूदी सगठनो के बारे मे भी यही बात कही जा सकती है।

धार्मिक सस्थाओ का सामाजिक स्थान

उस समय जब कि राज्य और धर्म के बीच के सबधो के बारे मे अमरीकी सिद्धातो का निर्माण हो रहा था, धर्म को आमतौर से व्यक्तिगत चीज माना जाता था। १७७६ की अधिकारो की वर्जिनिया घोषणा मे धर्म मे, जो कि "ईश्वर के प्रति हमारा कर्त्तव्य है," और नैतिकता मे, जो "एक दूसरे के प्रति ईसाई सहिष्णुता, प्रेम और परोपकार का भाव रखने का पारस्परिक कर्त्तव्य है," एक विशिष्ट भेद किया गया था। सभव है यहाँ पर 'ईसाई' विशेषण गलती से आ गया हो, या एक आम प्रयोग का लापरवाह उपयोग हो। जो भी हो, उस समय सिद्धात मे आधारभूत भेद इन दो बातो मे था: ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य जिसका पालन प्रत्येक व्यक्ति को 'अपनी अतरात्मा की पुकार' के अनुसार करना था, और सहिष्णुता के सामाजिक और पारस्परिक कर्त्तव्य (जो आवश्यक नही कि ईसाई ही हो)। १९३१ मे भी मुख्य न्यायाधीश ह्यूज ने अतरात्मा की ओर से विरोध करनेवाले लोगो के केस मे इस अतर की ओर ध्यान दिलाया था (सयुक्त राज्य बनाम मैकिन्टाश २८३ यू० एस० ६३३)। उसने लिखा था: धर्म का सार परमात्मा सबधी वह विश्वास है जिसमे वे कर्त्तव्य आते है जो मानवीय सबधो द्वारा उत्पन्न होने वाले सभी कर्त्तव्यो से ऊँचे है। जैसा कि प्रसग से स्पष्ट है, जो वह कहना चाहता था वह था, "राज्य से ज्यादा ऊँची नैतिक शक्ति के प्रति कर्त्तव्य", लेकिन कैथोलिक सिद्धान्त-शास्त्रियो की तरह उसने भी स्वीकार किया था कि राजनैतिक कर्त्तव्यो से ऊपर उठा हुआ कोई भी कर्त्तव्य मानवीय सबधो पर आधारित नही हो सकता। धार्मिक चेतना या उपरिस्थ कर्त्तव्य की यह व्यक्तिवादी व्याख्या अब धीरे-धीरे समाप्त हो गई है, और धर्म-निरपेक्ष तथा धार्मिक दोनो प्रकार के नेता धर्म के सामाजिक उत्तरदायित्व को ज्यादा अच्छी प्रकार समझने लगे है। चाहे कोई उपवादियो के इस विचार से सहमत हो कि यह सामाजिक उत्तरदायित्व धर्म का मूल है या फिर चाहे कोई सामाजिक नैतिकता [illegible] मे ही [illegible]

की शक्ति स्वीकार करे, यह बात आमतौर से मानी जाने लगी है कि हमारी संस्कृति की रचना मे धर्म यदि एक बुनियादी नही तो महत्त्वपूर्ण तत्त्व अवश्य है। टामस जैफर्सन ने वह प्रसिद्ध अनुच्छेद जिसमे उसने 'अलगाव की दीवार' के बारे मे कहा है, इस वाक्यांश से शुरू किया है, "आपके साथ यह विश्वास करते हुए कि धर्म पूरी तरह से मनुष्य और उसके ईश्वर के बीच रहनेवाला मामला है, और वह अपनी श्रद्धा या पूजा के लिए और किसी के प्रति उत्तरदायी नही है।" समाप्ति उसने इस वाक्यांश से की, "यह विश्वास है कि मनुष्य को सामाजिक कर्त्तव्यो के विरोध मे कोई प्राकृतिक अधिकार प्राप्त नही है।" उस समय प्राकृतिक अधिकार और प्राकृतिक नियम की रक्षा के लिए जो प्रयत्न किये जा रहे थे वे और अधिक सार्थक हो सकते थे, यदि वे जैफर्सन की घोषणा के समान इस धारणा पर आधारित होते कि कोई भी प्राकृतिक अधिकार सामाजिक कर्त्तव्यो के विरोध मे नही हो सकता। एक चर्च सरकारी नियत्रण से मुक्त हो सकता है लेकिन यह सामाजिक उत्तरदायित्वो से कभी मुक्त नही हो सकता। इसलिए "चर्च और राज्य के बीच की अलगाव की दीवार" को कितना ही मजबूत क्यो न बनाया जाय, जिम्मेदार नागरिको और प्रजातत्रीय सरकारो का यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि न तो वे धर्म के प्रति 'उदासीन' रहे, न किसी प्रकार के धर्म के प्रति कृपालु हो, और न सभी धर्मो के प्रति विद्रोही हो। इसके विपरीत उन्हे चाहिए कि वे उन सभी धर्मो और विश्वासो की, जिसका असर सामाजिक जीवन पर पड़ता है, मानवीयता और भद्रता की युक्तियुक्त जाँच करे, चाहे कानूनी तौर पर वे धर्म और विश्वास 'व्यक्तिगत' ही क्यो न हो। 'रिलिजन इन अमेरिकन लाइफ' के नाम से चार्ल्स ई० विल्सन की अध्यक्षता मे एक राष्ट्रीय जनसाधारण की समिति बनायी गई है जिसका उद्देश्य अमरीकी जीवन की बुनियाद के रूप मे धार्मिक सस्थाओ के महत्त्व पर बल देना और सभी अमरीकियो को अपनी व्यक्तिगत पसद के चर्च मे भाग लेने की प्रेरणा देना" है। ऐसी सस्था को चाहिए कि वह सावधानी पूर्वक यह भी देखे कि विभिन्न धार्मिक सगठन वास्तव मे कहाँ तक 'अमरीकी

जीवन की बुनियाद' बनाने मे सहायक है।

कर लगाने की दृष्टि मे धार्मिक सस्थाओ को लाभ न लेने वाली माना जाता है और उन पर कर नही लगता, लेकिन अन्य दृष्टियो मे उन्हे 'परोपकारी' सगठन माना जाता है। आमतौर पर, धार्मिक सस्थाओ पर कर-निषेध लागू करनेवाले सघीय सशोधन की व्याख्या चर्च और राज्य को अलग करने के अर्थ मे की जा सकती है पर इसका मतलब यह नही है कि राज्य सगठित धर्म की गतिविधियो और मूल्यो पर कोई ध्यान ही नही देता। चर्चों और सयुक्त राज्य के बीच ऐतिहासिक सबधो को सही-सही निरूपित करने की कठिनाइयो का विवेचन ई० बी० ग्रीन द्वारा अपनी पुस्तक 'रिलिजन एंड दि स्टेट इन अमेरिका' मे किया गया था और तब से, ये सबध किस प्रकार के होने चाहिए, इस पर का विचार एक तीव्र सार्वजनिक मसला बन गया है। प्रोफेसर ग्रीन ने यह स्पष्ट तौर से दिखा दिया कि यह अलगाव कभी भी पूरा नही रहा है और उन दोनो मे वास्तविक सबध सही-सही कानूनी सिद्धातो के बजाय सहानुभूतियो के इधर या उधर होने पर अधिक निर्भर थे। डा० एन्सन फेल्प्स स्टोक्स ने अपने ग्रथ 'चर्च एंड स्टेट इन दी यूनाइटेड स्टेट्स' मे की तीन जिल्दो मे इस प्रश्न की बहुत ही विस्तृत विवेचना की है। इस ग्रथ से भी बहुत ब्यौरे से [illegible] ग्रीन के परिणामो की ही पुष्टि होती है।

सन् १९०० मे इस प्रश्न मे कोई खास रुचि नही थी। १९२८ मे अल्फ्रेड ई० स्मिथ के राष्ट्रपति के चुनाव आदोलन ने इसे आम जनता के लिए महत्त्व का बना दिया। उनके बहुत-प्रचारित व्यक्तिवादी सिद्धात का सबध उदारवादी कैथोलिक स्थिति से लिया जाता था। (प्रदर्शित सामग्री सख्या ३ देखें)। [illegible] के विरुद्ध उनका बयान कैथोलिक लोगो के बयान [illegible] लिया गया था जो इसे उस समय सताये जाने वाले मैक्सिकन चर्च की ओर से बीच मे डालना चाहते थे।

पिछले दो दशको से अदालतो द्वारा कई अनेक निर्णय दिये गए है जिनमे इस 'अलगाव' के अर्थ की परिभाषा करने की कोशिश की

गई है। क्योकि सभी सस्थाओ को, और खास तौर से लाभ न लेने वाली सस्थाओ को, कम या ज्यादा सरकारी सहायता लेने की आवश्यकता बढती जा रही है, इसलिए अब चर्च यह समझने लगे है कि उनकी स्वतत्रता खतरे मे है। अधिकाश चर्च यह अनुभव करते है कि जनता से धन-सग्रह करने मे वे राज्य का मुकाबला नही कर सकते। अब यदि चर्च को सदस्यो की आय का दशाश मिल जाय तो उसे बहुत प्रसन्नता होगी, जब कि राज्य तो इतनी कम राशि से काम चलाने की सोच भी नही सकता। यह स्थिति स्वय ही ऐतिहासिक तथा नैतिक दृष्टि से ध्यान देने योग्य है, क्योकि, इस देश मे भी, एक ऐसा समय था जब जनता से धन-सग्रह करने की चर्च की शक्ति पर राज्य को ईर्ष्या होती थी। कुछ तो आर्थिक आवश्यकता के कारण और कुछ नैतिक सिद्धातो के कारण, चर्चो ने (खास तौर पर रोमन कैथोलिक चर्च ने) चर्च और राज्य मे अलगाव के परम्परागत विचार मे सशोधन की माँग की है।

इस बदलती हुई नीति की सबसे स्पष्ट घोषणा २० नवबर, १९४८ को अमरीकी रोमन कैथोलिक बिशप के घोषणा-पत्र मे हुई जिसमे उन्होने एक काम चलाने वाले सूत्र 'चर्च और राज्य मे सहयोग' का सुझाव इस प्रकार दिया है

इतिहास और कानून की जानकारी रखने वाले किसी भी व्यक्ति को पहले (सविधान के) सशोधन का मतलब उसके शब्दो से ही स्पष्ट हो जायगा : "काग्रेस धार्मिक सस्थानो के बारे मे या उनका स्वतत्र रूप से धर्म पालन मना करने के बारे मे कोई कानून नहीं बनायेगी।"

इस पहले सशोधन के अधीन सघीय सरकार न तो किसी एक धर्म के साथ पक्षपात कर सकती थी और न राज्य सरकारो को वैसा करने के लिए बाध्य या मना कर सकती थी। अगर इस व्यावहारिक नीति का वर्णन 'चर्च और राज्य मे अलगाव' के रूपक से किया जाय, तो इसे खास अमरीकी अर्थ मे ही समझना चाहिए। अमरीकी इतिहास और कानून को तोड मरोडकर ही यह कहा जा सकता है कि इस नीति का

मतलब धर्म के प्रति उदासीनता है, और इसके अनुसार चर्च तथा राज्य मे कभी सहयोग हो ही नहीं सकता ।

पिछले दो सालो मे धार्मिक और नैतिक शिक्षण को बढावा देने के सरकारी प्रयत्नो के विरोध मे धर्मनिरपेक्षवाद को आशातीत सफलता मिली है; और यह सफलता ऐसे स्थानो पर भी मिली है जहाँ कि ओर धर्मो के विरोध मे किसी विशेष धर्म के साथ पक्षपात नहीं हो रहा था। हाल ही के दो केसो मे तो संयुक्तराज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने पहले संशोधन के 'धार्मिक सस्थान' की एक पूरी तरह से नई और व्यापक व्याख्या स्वीकार कर ली है ।

इस व्याख्या के अनुसार किसी भी संगठित धर्म ओर सरकार मे सहयोग नहीं हो सकेगा चाहे किसी विशेष धर्म के साथ पक्षपात की बात भी न उठती हो ।

हम पूरे विश्वास के साथ यह अनुभव करते है कि अच्छी नागरिक्ता और धर्म दोनो के लिए धार्मिक सस्थाओ ओर सरकार मे सहयोग की पुरानी अमरीकी प्रणाली को फिर से घोषित करना चाहिए । यह सहयोग ऐसा होगा जिसमे किसी भी समुदाय को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होंगे ओर न किसी नागरिक की धार्मिक स्वतत्रता पर कोई बन्धन ही होगा ।

हम पूरी उदारता के साथ उन सभी लोगो मे सहयोग करने के लिए तैयार हैं जो ईश्वर मे विश्वास करते है और ईश्वर के अधीन स्वतत्रता के उपासक है ताकि हम मिलकर कानून के द्वारा 'धर्मनिरपेक्षवाद की स्थापना' का और सार्वजनिक जीवन से ईश्वर को निकाल बाहर करने का जो खतरा सामने आ रहा है उसे टालें। धर्मनिरपेक्षवाद हमारे राष्ट्रीय जीवन की बुनियाद को ही खतरा पहुचा रहा है और सर्वशक्तिसम्पन्न राज्य के अवतरण के लिए रास्ता बना रहा है ।

सहयोग का यह सिद्धान्त किस प्रकार लागू किया जायगा उस पर बहुत कुछ निर्भर करता है। शायद ये विशप यह कहना चाहते हैं कि

कैथोलिक सिद्धात को प्रजातत्रीय शासन के अनुसार ढाल लिया जाय। तो भी, 'नेशनल कैथोलिक वेलफेयर कान्फ्रेस' की प्रबध 'समिति द्वारा १८ नवबर, १९५० को प्रकाशित बच्चो की शिक्षा के बारे मे एक घोषणा मे बिशपो ने सहयोग के इस सिद्धात को भ्रामक रूप मे लागू किया है। उन्होंने 'दो ससारो' मे दुहरी नागरिकता के सिद्धात के प्रति सम्मान प्रकट किया है, लेकिन साथ ही यह सिद्धात भी सामने रखा है कि केवल धर्म ही 'एकता लाने वाली शक्ति' का काम दे सकता है। उनके अनुसार धर्म ही बच्चे को "उसकी सत्ता का पूर्ण और युक्तिसगत अर्थ" बता सकता है। बच्चा या तो "ईश्वर-केन्द्रित होगा या आत्म केन्द्रित" इसलिए सारी शिक्षा, विशेषकर सेक्स के बारे मे शिक्षा, "धार्मिक और नैतिक आधार पर" होनी चाहिए ताकि बालक अपने जीवन के नियामक उद्देश्य—'ईश्वर की सेवा' को स्पष्ट रूप से समझ सके। सहयोग के सिद्धात के इस विकास का मतलब यही मालूम पडता है कि धर्मनिरपेक्ष नैतिकता को धार्मिक नैतिकता के अधीन कर दिया जाय और विद्यालयो मे भी आत्मिक मामलो मे चर्च और माता-पिता की ही बात मानी जाय।

इस बारे मे कैथोलिक स्थिति की सबसे स्पष्ट और प्रजातत्रीय व्याख्या फादर जोन कोर्टनेनी मरे की है जो अपने एक प्रबध मे निम्न-लिखित निष्कर्ष पर पहुँचा था

इतिहास और अनुभव ने चर्च को राज्य की स्वायत्तता का सम्मान करने को बाध्य कर दिया है, परिणामत वह सासारिक मामलो मे अपनी आत्मिक शक्ति का प्रयोग अधिक दृढता से कर सकता है। शक्ति का यह प्रयोग ज्यो-ज्यो अधिक आत्मिक होता जाता है, त्यो-त्यो वह अधिक व्यापक और गहरा होता है। उसका प्रवेश मानवीय जीवन की सभी सस्थाओ मे हो जाता है और एक 'ईसाई अन्तरात्मा' के नियमो का पालन करने मे उससे बढावा मिलता है।

धार्मिक नेता के इस कथन के साथ ही एक प्रसिद्ध कानूनी विद्वान

के विचारो पर ध्यान देना भी अच्छा रहेगा

चर्च और राज्य के पारस्परिक उत्तरदायित्व अब भी वही हैं जो सदा रहे हैं––दोनो को ही मानवीय समाज की उन्नति के लिए सहयोग करना है। लेकिन चर्च को समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन मेण्ट-पाल की भावना से करना चाहिए। चर्च जब दिव्य सगठन के रूप मे अपने मिशन मे पूरे विश्वास के साथ इस देश तथा संसार के लोगो के बीच परोपकार के धर्म-सन्देश का प्रसार करेगा तभी वह समाज तथा राज्य के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभा सकेगा।

राज्य और चर्च मे कानूनी अलगाव को सुलझाने के इन प्रयत्नो मे धर्म और समाज मे सहयोग की पुरानी समस्याएँ नये रूप मे उठ खडी होती हैं। हाल के विकास से इन मसलो को व्यावहारिक रूप से तुरत हल करने की आवश्यकता सामने आई है। इन सैद्धातिक विवेचनो के पीछे कई महत्वपूर्ण कानूनी निर्णय और दलो के सघर्ष है जिन सभी ने अब तक बचे हुए उग्रवादी नास्तिको और स्वतत्र विचारको की स्थिति को कमजोर किया है। धार्मिक समझी जाने वाली अमरीकी जनता के बहुमत ने राज्य की पूरी तरह की 'उदासीनता' पर इस दखलदाजी को बिना किसी विरोध या चिंता-प्रकाशन के स्वीकार कर लिया है। धार्मिक बातो को विद्यालयो मे लाने के बारे मे कुछ छोटी-मोटी शिका-यतें अवश्य की गई यहूदियो ने ईसाई प्रार्थनाएँ सिखाने पर आपत्ति की, कैथोलिको ने किंग जेम्स के बाइबिल सस्करण के प्रयोग पर आपत्ति की, नास्तिको ने विधान सभाओ मे प्रार्थना पर और राज्य के विश्व-विद्यालयो मे किसी विशेष दल के धार्मिक कर्मचारियो और अध्यापको के रहने पर आपत्ति की। लेकिन ऐसी समस्याएँ बहुत पहले से चली आ रही थी। नयी समस्याएँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महायुद्धो द्वारा उत्पन्न हुई थी। युद्ध के समय राष्ट्रपति विल्सन और राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने सार्वजनिक भाषणो और लेखो मे धार्मिक अपील और भावनाओ को शामिल करने मे सकोच नही किया। "ईश्वर की छत्रछाया मे यह राष्ट्र"

जैसे प्रयोग सघर्ष को धार्मिक गभीरता प्रदान करते थे और साथ ही सुझाते थे कि अधिकृत रूप से "हम लोग ईश्वर मे विश्वास करते है"। यद्यपि ऐसी भावनाओ का आम जनता ने स्वागत किया पर उग्र धर्मनिरपेक्ष-वादी इनसे भडक उठे, यहाँ तक कि वे फौज मे पादरियो के रहने का भी विरोध करने लगे।

१९३९ मे जब माइरौन टेलर की पहले रूजवेल्ट और बाद मे ट्रुमैन के निजी प्रतिनिधि के रूप मे वैटिकन मे नियुक्ति हुई तो आम जनता ने इसे सामरिक नीति और गुप्त समाचार पाने का एक साधन समझा। लेकिन इस सदेह पर कि यह नियमित कूटनीतिक सबध स्थापित करने की शुरुआत होगी, अगुआ प्रोटेस्टेट सगठनो ने इसके खिलाफ जबर्दस्त विरोध प्रकट किया। १९५१ मे जब प्रेजिडेट ट्रुमैन ने जनरल मार्क क्लार्क की इसी रूप मे नियुक्ति करनी चाही तो इन सदेहो की पुष्टि हो गई और तब प्रोटेस्टेट तथा अन्य मतो के द्वारा एक शक्तिशाली और सगठित विरोध खडा कर दिया गया।

इसी प्रकार जब जनरलिस्सिमो फ्राको के स्पेन के साथ सामान्य कूटनीतिक सबध स्थापित करने के लिए कैथोलिको ने दबाव डाला तो इस पर प्रोटेस्टेट तथा धर्मनिरपेक्षवादी उदारपथियो ने बहुत बुरा माना। लेकिन सबसे गभीर मसले नयी शिक्षा-नीतियो पर उठ खडे हुए। १९३० और १९४० के दशको मे हाई स्कूल के विद्यार्थियो के अदर बढती हुई अपराध की प्रवृत्ति के प्रति गभीर चिता प्रकट की जा रही थी। 'दि नेशनल कौसिल ऑफ प्रोटेस्टेट्स, कैथोलिक्स एड ज्यूज़' तथा अन्य अतर्मतीय सगठनो ने सुझाव दिया कि चिताजनक रूप से बढती हुई अनैतिकता का एक कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव था, और इस आधार पर जनता मे नैतिकता लाने के लिए धार्मिक शिक्षा के लिए बडी व्यापक माँग की गई। धार्मिक निरक्षरता को जनता के लिए खतरा माना जाने लगा, और उन सभी उपायो पर विचार किया गया जिनसे मतवाद को प्रोत्साहन दिये बिना, जनता का नैतिक व्यवहार

धार्मिक विधि-निषेध पर आधारित किया जा सके। इस प्रकार आम तौर पर धर्म की सार्वजनिक आवश्यकता मे विश्वास बढा जिसका अलग-अलग मतो ने फायदा भी उठाया। इस परिस्थिति के साथ यह बात भी जुड गई कि सघीय सरकार ने युद्ध से लौटे व्यक्तियो को छात्रवृत्ति देने के द्वारा कई लडखडाते चर्च कालेजो को युद्धोत्तर कालीन वर्षों के सकट से पार निकलने मे अप्रत्यक्ष रूप से सहायता दी, और कई राज्यो ने ऐसे नियम बनाये जिनके द्वारा सार्वजनिक धन का उपयोग धार्मिक स्कूलो को सहायता देने मे किया जा सकता था।

जबकि इन मसलो पर बहस अब भी (सन् १९५२ मे) चल रही है, किसी सामान्य नतीजे पर पहुँचना कठिन है, लेकिन यह बात आम तौर पर मानी जाती है कि १९०० के बाद से धार्मिक स्वतत्रता की समस्या का केन्द्र बदल गया है। नास्तिक, स्वतत्र विचारक और उग्र धर्म-निरपेक्षवादी अब धर्म से मुक्ति दिलाने के लिए इतना आदोलन नही करते, कम-से-कम सगठित धर्म के विरुद्ध विद्रोही आवाज अब उतनी नही सुनाई पडती जितनी एक या आधी शताब्दी पहले पडती थी। लेकिन यदि धार्मिक सगठन धर्म-निरपेक्षवाद को अनैतिक बताते रहे, या यह कहे कि यह भी एक तरह का धर्म ही है, तो उन्हे अवश्य ही उन अधार्मिक नागरिको का कोप-भाजन बनना पडेगा जिन्होने यह सोच रखा था कि सगठित धर्म के अदर असगठित अधर्म को सहने की समझ कभी-न-कभी आ जायगी। अन्यथा अब धर्म के लिए स्वतत्रता का सिद्धात आम तौर पर स्वीकार कर लिया जाता है। हाँ, कुछ अमरीकी कैथालिक सिद्धा-न्तियो का [illegible] अब भी यह विश्वास करता है कि सिद्धात रूप से 'झूठे' धर्मो का दबाना अच्छा है, हालाकि वे व्यवहार मे उसकी वका-लत नही करते। लेकिन धर्म मे स्वतत्रता के लिए वास्तव मे एक आतु-रता है अर्थात् लोग चाहते है कि अमरीका के दो या तीन धार्मिक सगठनो मे जिनकी परम्पराए उन्हे यदि शत्रु नही तो अलग रखने वाली तो बनाती ही है, पारस्परिक सम्मान और सहयोग बढे। दूसरे शब्दो मे,

चर्च और राज्य की समस्या 'धर्म से अलग रहने' की जनता की नकारात्मक नीति से नही सुलझती, वलिक वह एक ऐसा वौद्धिक तथा नैतिक वातावरण वनाने से सुलझती है जिसमे धर्म का स्वतत्र व्यवहार सार्वजनिक जीवन के रचनात्मक मूल्य के लिए होता है। स्वतत्रता की भावना का धार्मिक भक्ति की भावना के साथ समझौता सामाजिक नैतिकता की एक गभीर समस्या वन गया है। राज्य ओर चर्च मे से कोई भी अव दूसरे के नैतिक ढाचे के प्रति उदासीन नही रह सकता।

धार्मिक शिक्षा की संस्थाएँ

धार्मिक शिक्षा को वढाने के विभिन्न कार्यक्रमो ने शिक्षा की समस्या के अलावा नैतिक तथा कानूनी रूप से चर्च और राज्य के सवधो के वुनियादी सवाल उठा दिए है। ऐसा ही एक सवाल तव उठा जव सघीय फड का उपयोग पेरोकियल (किसी पैरिश के) स्कूलो को वस, मध्याह्न-भोजन तथा अन्य ऐसी सुविधाएँ देने मे किया गया जो पहले सघीय कानून द्वारा केवल सार्वजनिक विद्यालयो को ही मिलती थी। इसमे तर्क यह दिया गया था कि इन कार्यो का सवध धार्मिक शिक्षा से वढकर सार्वजनिक स्वास्थ्य और वाल-कल्याण से था। ८०वी काग्रेस मे सीनेट मे प्रस्तुत टापट विल और हाउस मे प्रस्तुत मैकगाउन विल ने सवैधानिक सवाल निश्चित रूप से उठा दिया। शिक्षा के क्षेत्र के वहुत-से नेता सार्वजनिक शिक्षा पर सघीय धन व्यय करने के लिए जोर दे रहे थे, लेकिन कैथोलिको ने उस दिशा मे कोई भी प्रयत्न तव तक नही होने दिया, जव तक पेरोकियल स्कूलो की सहायता वद रही। इससे जाहिरा तौर पर एक गतिरोध उत्पन्न हो गया है। जिस चीज ने प्रोटेस्टेट, यहूदी ओर धर्म-निरपेक्षवादियो को और भडका दिया वह भी कैथोलिक नेताओ के इस प्रकार के स्पष्ट कथन कि उनका ओर अधिक मागना भी ठीक था टैक्स से हमे इतना धन मिलना चाहिए कि कैथोलिक स्कूल अमरीकी शिक्षा के अभिन्न अग वन जायँ।

इस शताब्दी के प्रारम मे अमरीकी कैथोलिक नेताओ मे पैरोकियल स्कूलो के बारे मे मतभेद था। सन् १८७० मे न्यूयार्क के सेंट स्टीफेंस चर्च के फादर मैकग्लिन ने पैरोकियल स्कूल-प्रणाली का कडा विरोध किया था, और परिणामत बिशपो मे इस प्रश्न पर बहुत वाद-विवाद हुआ। इस विरोध का मतलब पोप लियो तेरहवे ने यह लगाया कि रोमन कैथोलिक चर्च के अदर अमरीकीपन बढता जा रहा है जिसके लिए कि उसने अत मे आर्कबिशप जोन आयरलैंड और कार्डिनल गिब्बस की भर्त्सना भी की। १८८२ मे पोप के प्रतिनिधि मौंसियोर सातोली और अमरीकी बिशपो के बीच समझौते की योजना तैयार हुई, पर छह महीने बाद ही पोप ने सार्वजनिक स्कूल-प्रणाली की ओर झुकने की निंदा कर दी। परिणामत बीसवी सदी मे पैरोकियल स्कूल खूब बढे, यहाँ तक कि अब कैथोलिक बच्चो मे से आधे पैरोकियल स्कूलो मे ही जाते है। इस बात मे १८९२ के इस समझौते का खडन हुआ कि, "प्रारभिक शिक्षा अथवा कला और विज्ञान की उच्च शाखाओ के अध्ययन के लिए कैथोलिक बच्चो के राज्य द्वारा नियत्रित सार्वजनिक स्कूलो मे जाने पर कोई आपत्ति नही है।" इसका स्थान अब इस नीति ने ले लिया कि न केवल धार्मिक शिक्षा होनी चाहिए, अपितु पढना, लिखना और गणित भी धार्मिक अधिकारियो की देख-रेख मे होना चाहिए।

इसी बीच यहूदियो के बीच हिब्रू स्कूलो की माँग बढने लगी। शताब्दी के प्रारभिक दशको मे यहूदी धार्मिक नेताओ ने यहूदी धर्म के सार्वभौम तत्त्वो पर बल दिया और अपनी धार्मिक शिक्षा को अमरीकी धर्म-निरपेक्ष शिक्षा के साथ मिला देने मे वे उदार पथी ईसाइयो से भी आगे बढ गये। परिणामस्वरूप उनके धर्म के बहुत से विधि-विधानो की धार्मिक कट्टरता समाप्त हो गई और इन बातो का महत्त्व केवल ऐतिहासिक ही रह गया। लेकिन जब यह देखा गया कि धार्मिक शिक्षा को धर्म-निरपेक्ष शिक्षा के साथ मिलाने की प्रक्रिया सफल नही हो रही, और जब धर्म-निरपेक्ष यहूदी राष्ट्रीयता का जन्म हुआ तो पिछली दो दशाब्दियो मे, हिब्रू की पढाई

और यहूदी धार्मिक विधि-विधानो की जानकारी के लिए माँग बढी। इस प्रकार की चीजो को प्रोत्साहन देना शिक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मालूम पडने लगा चाहे वह धार्मिक दृष्टि से आवश्यक हो या न हो।

इन स्कूलो ने चर्च और राज्य के विवाद को नही उठाया क्योकि वे 'अलगाव की दीवार' को स्वीकार करने को तैयार थे। पर उन्होने अमरीकी सस्कृति के साथ अपनी प्रामगिकता का प्रश्न अवश्य उठाया। जौजेफ एच० लुकस्टीन ने यहूदियो के पक्ष का औचित्य ऐसे शब्दो मे रखा है जो सभी धार्मिक सगठनो पर लागू हो सकते है। (प्रदर्शित सामग्री सख्या ४ देखिए)। यहूदियो की शिक्षा के लिए अमरीकी सघ की ओर से बोलते हुए एक दार्शनिक, होरेस एम० कैलन ने भी इस दृष्टिकोण पर एक सामयिक चेतावनी दी है "यह काम वही तक पूरा किया जा सकता है जहाँ तक कि अमरीकी यहूदी बच्चो के माता-पिता और स्वय बच्चो को यह बात स्पष्ट हो जाय कि उदार शिक्षा के द्वारा आगे बढाये जाने वाले अन्य मूल्यो के समान उनके उत्तराधिकार के यहूदी मूल्य भी स्वतत्रता मे पनपने की उनकी अपनी शक्तियो को मुक्त करने के लिए आवश्यक गति-तत्त्व है।

जब धार्मिक सस्थाओ द्वारा दी जानी वाली धार्मिक शिक्षा के लिए सार्वजनिक विद्यालयो मे 'रिक्त समय' (आम तौर से सप्ताह मे एक घटा) दिया जाने लगा तो ये ही मसले व्यावहारिक तथा कानूनी रूप से फिर उठाये गए। सर्वोच्च न्यायालय ने (१९४८ मे मैक् कॉलम के केस मे) यह निर्णय दिया कि सार्वजनिक स्कूल की इमारतो का उपयोग इस उद्देश्य के लिए नही किया जा सकता। लेकिन आम तौर पर यह कार्य-क्रम इस निर्णय के द्वारा रुका नही है, और ६-३ के निर्णय से सर्वोच्च न्यायालय ने न्यूयार्क राज्य की प्रणाली को उचित ठहराया है। इस कार्य-क्रम के धार्मिक मूल्य तथा इससे धार्मिक स्वतत्रता के नियमो का उल्लघन होता है अथवा नही, इस बारे मे बहुत तीव्र मतभेद है। ऐसे माता-पिता जिनका किसी भी धर्म से सबध या उसमे रुचि नही है यह शिकायत

करते हे कि उनके बच्चो की शिक्षा का एक घटा बेकार जाता हे। अधिकाश यहूदी लोग धर्म के आधार पर विद्यार्थियो के बॉटे जाने का विरोध करते हे । क्योकि एक तो इससे साम्प्रदायिकता को बढावा मिलता हे ओर दूसरे धार्मिक भेद का सार्वजनिक शिक्षा मे कोई सबध नही है। कुछ प्रोटेस्टेट लोगो को इस पर इसलिए आपत्ति है कि कैथोलिक इस कार्यक्रम का सबसे अच्छा उपयोग कर रहे हे ओर इसलिए भी कि इस थोडे से समय मे धार्मिक शिक्षा मे कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नही दिया जा सकता। सारा कार्यक्रम अभी पूरी तरह प्रायोगिक अवस्था मे हे ओर एक समुदाय से दूसरे समुदाय मे इसमे अतर हो जाता हे। लेकिन इसने एक बुनियादी सवाल को व्यावहारिक रूप मे उठा दिया हे कि क्या बिना धार्मिक मतभेदो और सघर्षो को बढाये जनता की भलाई के लिए धर्म को बढावा दिया जा सकता है ? धार्मिक निरक्षरता ओर निरक्षर धर्म इन दो बुराइयो की वृद्धि से समस्या और पेचीदी बन गई हे।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे अमरीकी प्रोटेस्टेट सदा यह मानकर चलते थे कि चर्चो को इसमे नेतृत्व करना चाहिए, और इसलिए बीसवी सदी मे नगरपालिका महाविद्यालयो ओर राज्य विश्वविद्यालयो की वृद्धि के आगे वे बडी अनिच्छा से ही झुके। धार्मिक वातावरण मे पूर्ण सतुलित शिक्षा देने ओर सामान्य शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा देने के उद्देश्य को प्राप्त करना अब ज्यादा ओर ज्यादा कठिन होता जा रहा है। बहुत-से कालेज जो धार्मिक सस्थाओ द्वारा स्थापित किये गए थे अब खुले तोर पर धर्म-निरपेक्ष या 'उदार कलाओ' के कालेज बन गए हे और आर्थिक दृष्टि से भी स्थापना करने वाले चर्चो के अधीन नही हे। लेकिन ऐसे कालेजो मे भी जिन्हे चर्च कालेज कहा जाता हे, धार्मिक 'वातावरण' मे बहुत गिरावट आ गई हे। गिरजाघर मे अनिवार्य उपस्थिति पर आमतोर से बुरा माना जाता हे। बाइबिल कोर्स तथा अन्य धार्मिक कोर्स अब 'ऐच्छिक' विषय बना दिए हे ओर विद्यार्थी प्राय उन्हे नही लेते। साथ ही उन बातो मे, जिनका अनुभव करना सरल हे, बताना कठिन,

चर्च द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलो का आम नैतिक तथा धार्मिक वातावरण उसी तरह की धर्म-निरपेक्ष सस्थाओ के वातावरण से ज्यादा भिन्न नही है, और कभी-कभी धार्मिक माता-पिताओ के द्वारा इस बात की कडी आलोचना की जाती है, और चर्च के क्षेत्रो मे इस पर बहुत बुरा माना जाता है। इस प्रकार चर्चो के सामने एक तो नकारात्मक समस्या है आया प्रारभिक उद्देश्यो को बनाये रखने की कोशिश करना उचित है या नही, और दूसरी सकारात्मक समस्या है कोई ऐसा नया तरीका खोज निकालने की जिससे ज्यादा प्रभावशाली धार्मिक शिक्षा दी जा सके।

जब कई प्रभावशाली प्रोटेस्टेट शिक्षाशास्त्री उच्च शिक्षा की स्थिति से निराश हो गए तो उन्होने भी, कैथोलिक और यहूदियो के उदाहरण पर, प्रोटेस्टेट प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने की वकालत की। १९४९ मे 'दि इटरनेशनल कौसिल ऑफ रिलिजस एजुकेशन' ने बताया कि १९३७ से रोमन कैथोलिक से भी बढकर लूथरन, रिफार्म्ड, सेविन्थ डे एडवेटिस्ट, और मैननाइट चर्चो के धार्मिक स्कूल अनुपात मे कही ज्यादा खुले है। लेकिन इटरनेशनल कौसिल ने 'अब लोगो के विद्यालय' के रूप मे सार्वजनिक विद्यालयो मे अपना विश्वास फिर प्रकट किया है और धार्मिक और अधार्मिक दोनो प्रकार की ऊँची उदासीनता मे बचने के लिए सार्वजनिक विद्यालयो के साथ सहयोग के एक कार्यक्रम की सिफारिश की है। दूसरी ओर धर्म-निरपेक्ष शिक्षा-शास्त्रियो ने चर्चो को दोष दिया है और उन पर यह आरोप लगाया है क्योकि वे अपने रविवासरीय विद्यालयो मे छोटे बच्चो को आकर्षित करने मे और धार्मिक सस्थाओ को समसामयिक अमरीकी जीवन के साथ मिला देने मे सफल नही हो सके, इसीलिए वे सार्वजनिक विद्यालयो का समय माग रहे है।

धार्मिक शिक्षा के लिए रिक्त समय के प्रयोग का शैक्षिक नेताओ द्वारा गभीर समर्थन किये जाने का एक कारण यह भी है कि उन्होने अब समझ लिया है कि भारी आधुनिकीकरण के बावजूद रविवासरीय विद्यालय धार्मिक शिक्षा के लिए जनता की आवश्यकता को पूरा नही कर

सकते । इस शताब्दी के प्रारभ मे ये सस्थाएँ 'बाइबिल स्कूलो' मे कुछ ज्यादा नही थी, और ऐसा ही उन्हे प्राय पुकारा भी जाता था। पाठ्यक्रम व्यवहार मे बाइबिल की कहानियो और टीकाओ तक ही सीमित था। रविवासरीय स्कूलो के भक्ति-गीत इतने नीचे थे जितने कि सगीत और धर्म मे कही हो सकते हैं। इस शताब्दी के पहले चतुर्थांश मे, कुछ लगन वाले अच्छे शिक्षको के अथक परिश्रम द्वारा रविवासरीय विद्यालय को धार्मिक शिक्षा देने का एक सर्वांगीण साधन बना दिया गया। अच्छे टेक्स्ट और पाठ रखे गए, पाठ्यक्रम का विस्तार किया गया, उसमे सभी अवस्थाओ के नैतिक तथा धार्मिक मसलो पर तथा चर्च के इतिहास, चर्च के अनुशासन और सामाजिक समस्याओ पर विचार-विनिमय शामिल किया गया। सगीत मे भी कुछ सुधार हुआ, यद्यपि सब मिलाकर रविवासरीय विद्यालयो मे सौन्दर्य-पक्ष की उपेक्षा ही की जाती रही। ये आधुनिक बनाये हुए 'चर्च-स्कूल' धार्मिक विषयो और धार्मिक विकास के मनोविज्ञान पर धर्म-निरपेक्ष शिक्षा के तरीको और मानदडो को लागू करने का प्रयत्न करते थे। अध्यापको को कुछ व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए एक बहुत सगठित तथा सुनियोजित व्यवस्था भी थी। कुछ चर्चों मे, विशेषकर एपिस्कोपल मे, अधिक बल चर्च की सदस्यता के लिए प्रशिक्षण पर था, लेकिन ज्यादातर चर्चों का उद्देश्य किशोरावस्था मे बालको की स्वाभाविक वृद्धि मे सहायक होना था। इस प्रकार वे उन्नीसवी सदी के धर्म-परिवर्तन पर बल और सवेगी अपील के स्थान पर एक अधिक प्रभावशाली और बुद्धिमत्तापूर्ण चीज बच्चो को देते थे। धार्मिक शिक्षा का यह सारा कार्यक्रम अब भी चल रहा है लेकिन शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश मे इसमे कुछ शिथिलता आ गई है। यह शिथिलता कितनी है यह एक विवादास्पद प्रश्न है और इसके कारणो का निश्चय करना कठिन है, १९४८ मे इनमे, विशेषकर गैर-प्रोटेस्टेंट विद्यालयो मे, प्रवृत्ति ऊपर की ओर मालूम पड़ती है। यह सभव है कि धार्मिक शिक्षा के इस कार्यक्रम मे लोगो ने पहले बहुत ज्यादा उत्साह दिखाया जो बाद मे स्वभावत

कम हो गया। जो परिणाम निकले, उनसे इतनी विशाल सस्थाओ और अर्ध व्यावसायिक प्रयत्नो को उचित नही ठहराया जा सकता। १९३० के दशक मे आर्थिक गिरावट ने छटनी आवश्यक कर दी और बाद की मुद्रास्फीति ने इसके धर्मस्व मे गरीबी ला दी। इस शिक्षा से जिस 'जनसाधारण के नेतृत्व' के सामने आने की आशा थी वह सभी दिखाई नही देता। साथ ही चर्च मे उपस्थिति की नियमितता मे गिरावट के साथ-साथ, जिसका जिक्र हमने पहले अध्याय मे किया था, रविवासरीय विद्यालयो की उपस्थिति मे भी कमी हुई है। लेकिन इन सभी बाहरी तत्त्वो के पीछे कुछ धार्मिक प्रवृत्तियाँ थी जो कि इस आदोलन मे ही अतर्निहित थी। धार्मिक अनुभव के जिस विस्तृत भाव ने पाठ्यक्रम मे सुधार करवाया उसने बाइबिल-सबधी निरक्षरता दूर करने के बजाय, बाइबिल के प्रति एक दूषित दृष्टिकोण और फैला दिया, जिससे बाइबिल का ज्ञान पहले के बजाय कम महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगा। जब पाठो मे बाइबिल की थोडी-सी समालोचना और बाइबिल की प्रामाणिकता के बारे मे अधिक युक्ति-सगत सिद्धात लाने की कोशिश की गई तो आधुनिक बनाये हुए रविवासरीय विद्यालयो मे पढी हुई पीढी को ये विद्यालय और भी कम महत्त्व के प्रतीत होने लगे, क्योकि अब इनके द्वारा धार्मिक शिक्षा का सबंध सामान्य शिक्षा से जोडा जाने लगा था। धर्म का जीवन से जितना ज्यादा सबध किया जाता था, धर्म की विशिष्ट सस्थाओ की शक्ति उतनी ही कम होती जाती थी, और इसलिए धार्मिक शिक्षा की समस्या को रविवासरीय विद्यालयो से हटाकर सामान्य विद्यालयो की बना दिया गया। अब सामान्य शिक्षा के विषय के एक साधारण तत्त्व के रूप मे धर्म का अध्ययन किया जाने लगा। इस प्रकार धर्म के बारे मे ज्ञान से धार्मिक शिक्षा के ही हटा दिये जाने का खतरा पैदा हो गया, और उदार धर्म शिक्षा की धर्म मडलीय प्रेरणा, जिस पर रविवासरीय विद्यालय आदोलन निर्भर था, धार्मिक उदारता की प्रगति के साथ ही धर्म-निरपेक्ष बनने लगी।

इस निदान को स्वीकार किया जाता है कि रविवासरीय विद्यालय पेशेवर धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता को पूरा करने मे अपर्याप्त सिद्ध हुए, पर इस समस्या का हल अब भी स्पष्ट नही हो पाया है। सुधार की तीन दिशाएँ सुझायी गई है

(१) सबसे अधिक धर्ममडलीय ढग के चर्च यह भार परिवारो पर डाल रहे है। उनका कहना है कि अपनी प्रकृति से ही घर से सबध रखने वाली चीज की व्यवस्था स्कूल नही कर सकते। रविवासरीय विद्यालय तो केवल परिवार द्वारा सप्ताह भर मे दी गई धार्मिक शिक्षा पर और अधिक बल दे सकता है। यदि आधुनिक घर मे बच्चे ने कुछ सीखा ही नही है तो रविवासरीय विद्यालय उसकी सहायता करने मे असमर्थ है।

कैथोलिक विशपो ने निम्नलिखित ठोस सुझाव दिये हैं

माँ-बाप को चाहिए कि बच्चो के अन्दर भगवान के प्रति विश्वास जल्दी ही उत्पन्न कराने की व्यवस्था करें। यह ऐसी चीज नहीं है जिसे विद्यालय के अधिकारियो द्वारा पढाये जाने के लिए छोडा जा सके। इसका आरभ घर मे ही सीधी-सादी प्रार्थनाओ के अभ्यास द्वारा होना चाहिए। यदि सुबह और शाम तथा भोजन से पहले और बाद मे प्रार्थना की जाय तो इससे पारिवारिक वाटिका की शोभा बढती है। प्रति दिन निश्चित समय पर छोटी-सी प्रार्थना करने पर वह घडी अवश्य ही हमे, शाश्वत सत्य के अधिक निकट ले जाती है और इससे हम क्रूस के निशान के प्रति श्रद्धा तथा मूर्ति एव अन्य धार्मिक चिन्हो के प्रति आदर प्रकट करना सीखते है। ये वे अभ्यास है जिन्हे बच्चे के धार्मिक निर्माण के समय प्रोत्साहन मिलना चाहिए। माँ-बाप को चाहिए वे उस सुदृढ अति प्राकृतिक प्रेरणा का उपयोग करें जो ईसामसीह के जीवन से प्राप्त की जा सकती है। बच्चो को ईसा की नकल करने की प्रेरणा देनी चाहिए—विशेषकर उनकी आज्ञा मानने मे, धैर्य मे तथा औरो का ध्यान रखने मे। निस्वार्थ भाव से देने की उस भावना को अपने अन्दर लाने मे, जो ईसा की एक विशिष्ट बात थी, उनमे प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए। यह अनेक क्रियात्मक

रूपो मे, खासकर बच्चो को घर मे स्वार्थ-त्याग के काम करने का अवसर देकर किया जा सकता है। "यदि तुम मुझे प्यार करते हो तो मेरे आदेशो का पालन करो" यह ईसा की कसौटी है, और यह कसौटी बच्चे पर अवश्य लागू होनी चाहिए। उसे इस योग्य बनाना चाहिए कि वह भगवान के आदेशो और उपदेशो को अपने ऐसे पथप्रदर्शक के रूप मे पहचान सके जो उसके कदमो को सही रास्ता दिखा सकते हैं।

इस तरह के सुझावो पर न केवल आधुनिक माता-पिता मुस्कराते है और आधुनिक शिक्षक तिलमिलाते है, बल्कि इनसे इस प्रचलित विश्वास को भी समर्थन मिलता है कि पादरी लोग बडी आत्म-तुष्टि और अधिकार पूर्ण ढग से यह मानते है कि वे प्राकृतिक कानून द्वारा नैतिक-धार्मिक शिक्षा का उपदेश देने के लिए नियुक्त हुए है। घर के जीवन को धर्म-मडलीय अधिकारी के आदेशानुसार चलाने का प्रयत्न उन कारणो मे से एक है जिनसे माता-पिता चाहते है कि धार्मिक शिक्षा भी व्यावसायिक शिक्षको के अधीन हो। कुछ भी हो, यह बात तो असभव-सी ही लगेगी कि धर्म-मडलीय अधिकारियो के दबाव से आधुनिक हालतो मे पहली-पीढियो के घरेलू विधि-विधान लागू किये जा सके। पूर्व इसके कि वे अतिप्राकृतिक प्रेरणाएँ जिनकी अपील बिशप लोग करते है प्रभावशाली बन सके, घर मे पूजा के लिए एक अधिक स्वाभाविक वातावरण सास्कृतिक रूप मे बनाया जाना चाहिए। चाहे घरेलू पूजा को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न व्यावहारिक हो या नही, यह तथ्य तो है ही कि पारिवारिक जीवन के धर्म-निरपेक्ष बन जाने से धार्मिक शिक्षा की समस्या मे क्राति आ गई है। इन दोनो बातो मे बडा अतर है कि शिक्षा किसी धार्मिक परम्परा और समुदाय के अतर्गत है या यह एक ऐसी शिक्षा है जिसे कुछ लेखक 'स्वभावत गैर-ईसाई' कहते है। दोनो ही दशाओ मे पूर्वाग्रहो से छुटकारा पाना है, परन्तु वे पूर्वाग्रह विरोधी ढग के है, पिछली दशा मे धार्मिक निरक्षरता के है, पहली दशा मे निरक्षर या बालधर्म के। दोनो ही दशा मे, या तो एक वास्तविक सकट उत्पन्न हो जाता है, या फिर

कोई शिक्षा नही हो पाती ।

(२) शैक्षिक सुविधाओ और चर्चों के कार्यक्रम का विस्तार सुधार की दूसरी दिशा है । रविवासरीय विद्यालयो के सगठन के अदर शैक्षिक कार्य के लिए ज्यादा समय देने के प्रयत्न उत्साहवर्धक नही रहे है । रविवार को एक घटे से ज्यादा समय के लिए बच्चो को एकत्र करना कठिन है, और रविवासरीय विद्यालय की शिक्षा को सप्ताह के अदर ले जाना तो और भी कठिन है । सबसे अधिक व्यावहारिक सफलता 'दैनिक अवकाश बाइबिल विद्यालयो' को मिली है जो माता-पिता और बच्चो दोनो मे ही प्रिय है । वे धार्मिक शिक्षक जो रिक्त समय की योजना को विकल्प के रूप मे स्वीकार किए हुए थे । अब आशा कर रहे है कि सप्ताह मे एक घटे की जगह उन्हे सप्ताह मे एक अपराह्न मिलने लगेगा, और तब वे, स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार, किसी एकमत की या अतर्मतीय धार्मिक शिक्षा के पर्याप्त केन्द्र बना सकेगे ।

(३) सुधार की एक तीसरी दिशा मे यह मानकर चला जाता है कि प्राथमिक विद्यालय, रविवासरीय विद्यालय या घर से सुधार की आशा करना बेकार है, और इस समस्या को मुख्यतया कालेजो मे सुलझाना चाहिए । पर इस स्तर पर समस्या का हल लगभग असभव है, कारण, कुछ तो परिस्थिति ही ऐसी होती है, और कुछ प्रतिद्वंद्वी व्यवसायो मे नियत्रण के लिए मुकाबला रहता है । न केवल सार्वजनिक कालेजो और विश्वविद्यालयो मे जहा कि धार्मिक शिक्षा देने की कानूनन मनाही है, अपितु प्रमुख व्यक्तिगत कला महाविद्यालयो तथा विश्वविद्यालयो मे भी इन दो मे अतर किया जाता है, एक तो धर्म के बारे मे शिक्षा जिसकी कई विभागो मे अनेक शाखाएं हो जाती है और जिसे शैक्षिक डिग्री के लिए मान्यता प्राप्त है और दूसरी धर्म की शिक्षा जिसे वैसी मान्यता प्राप्त नही है और परिणामत जो चर्च-प्रतिष्ठान, 'बाइबिल की गद्दी' और धार्मिक सस्थानो के रूप मे शिक्षा-सस्थाओ के क्षेत्र और पाठ्यक्रम के किनारे पर रहता है । हावर्ड मम्फोर्ड जोन्स ने इस स्थिति का वर्णन

वडे अच्छे रूप मे किया है

धर्म शब्द की अस्पष्टता के अन्तर्गत प्राय व्यावहारिक समझौते कर लिये जाते है। क्योकि यदि राज्य विश्वविद्यालयो को धर्मज्ञान सकाय (फैकल्टी ऑफ थियोलोजी) चलाने से मना भी कर दिया जाय, तो भी 'तुलनात्मक धर्म' के तो कोर्स किसी की स्थिति बिगाड़ते नहीं, न कोई अनुचित वात मनवाते है, वल्कि शायद सद्भाव ही वढाते है—अलबत्ता 'तुलनात्मक धर्म' की शिक्षा ने जहाँ-तहाँ उन्हीं कठिनाइयो को और वढा दिया जिन्हे कम करने की आशा इससे की जाती थी। इस प्रकार का कोर्स या तो नीतिशास्त्र के विवेकशील प्राध्यापक या दार्शनिक द्वारा दिया जा सकता है, या वह इतिहास या नृतत्व-शास्त्र के सग के रूप लिया जा सकता है, या फिर इसकी पढाई अँग्रेजी विभाग मे 'साहित्य के रूप मे वाइविल', या 'मानव जाति की महान वाइविलें' आदि के ढग पर हो सकती है। इसी प्रकार आचार-शास्त्र, समाज-शास्त्र, सामाजिक समस्याओ और साहित्य के कुछ अशो को वैसा नाम न दिये जाने पर भी धर्म की समस्या से सम्बन्धित समझा जा सकता है। ऐसे कोर्स विना ध्यान खींचे दो प्रकार से बहुत ज्यादा लाभ पहुँचा सकते हैं: वे परेशानी मे पडे छात्रो को सहायता देते है, दूसरे वे चर्चों को आश्वासन देते रहते हे कि अभी विश्वविद्यालय नास्तिकता के गढ नहीं वन गए हैं। पर तुलनात्मक रूप से पढाया गया धर्म वस्तुगत या अवैयक्तिक आधार का धर्म है, और व्यवहार तथा विचार मे उसका वैसा सीधा प्रभाव नहीं होता जैसा कि अनेक सम्प्रदाय चाहते है।

पूरी तरह से या अश मे, राज्य के खर्चे पर 'धार्मिक सलाहकार' रखने का एक दूसरा तरीका भी है: इस प्रकार का दयालु और निष्पक्ष अधिकारी विश्वविद्यालयो और सम्प्रदायो मे सपर्क-अधिकारी का काम करता है।

लेकिन सब मिलाकर यह नही कहा जा सकता कि अडर ग्रेजुएट छात्र अपनी परेशानियाँ धार्मिक सलाहकार के पास ले ही जाते हैं। एक तो इस

अधिकारी को सब व्यक्तियो के लिए सब कुछ बनना पड़ता है—या दूसरे शब्दो मे, उसे कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, यहूदी, एग्नास्टिक, और शेष सभी के प्रति बिल्कुल निष्पक्ष रहना पड़ता है। यह स्वय अपने अन्दर एक असभव कार्य है। दूसरे, यदि वह निष्पक्ष रहे तो भी, वह ज्यादा मे ज्यादा यही कर सकता है कि वह विद्यार्थी की समस्या को उसके पूरे सवेग के साथ उसके धर्म की दिशा मे ले जाय। फिर भी कई बार विद्यार्थी इसी अधिकारी से दूर रहना चाहते है। और अन्त मे यह बात भी धीरे से कह देनी चाहिए कि विशेषज्ञो के सकाय मे धार्मिक सलाहकार की स्थिति कोई अच्छी नहीं होती क्योंकि दार्शनिक और वैज्ञानिक मुकाबला बहुत तीव्र होता है, और अब तक उसके पद के लिए अच्छी प्रतिभावाले व्यक्ति सामने नही आये है। ऐसी दशा मे परेशान अडरग्रेजुएट यदि किसी प्रौढ के पास जाएगा भी तो सभावना यही है कि वह व्यक्ति सकाय (फैकल्टी) ही का कोई सदस्य होगा।

विश्वविद्यालय ने इस समस्या को ऊपर के इन दो प्रकारो से सुलझाने का प्रयत्न किया है।

विभिन्न मतो ने भी कुछ मित्रतापूर्ण'रास्ते निकाले है। उनमे से कुछ सबसे निकट के चर्च मे छात्रो के लिए एक विशेष पादरी की नियुक्ति करते हैं। दक्षिण मे विश्वविद्यालय के क्षेत्र के निकट अक्सर एक या एक से अधिक ऐसी इमारतें मिल जायेंगी जिनमे तथाकथित बाइबिल की गद्दियाँ स्थापित होती हैं। इसका मतलब यह है कोई विशेष सम्प्रदाय अपने ही एक अध्यापक को आश्रय दे रहा है जो उस सम्प्रदाय की इमारत मे बाइबिल, धर्म-शास्त्र या धर्म की शिक्षा देता है। यह शिक्षा काफी परिपक्व अवस्था की होती है जो छात्रो का ध्यान खींच सकती है और विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमो के साथ बौद्धिक स्तर पर मुकाबला कर सकती है। ये कोर्स पाठ्यक्रम से बाहर के होते है और जिस लगन से ये चलाए जाते हैं उसकी प्रशसा ही की जानी चाहिए क्योंकि कालेज का कोई श्रेय न मिलने पर भी ये अब तक चल रहे हैं।

दूसरी ओर विश्वविद्यालय अपने छात्रो को इतने ऊँचे बौद्धिक स्तर तक प्रशिक्षित करता है जिसे कि एक औसत दर्जे का चर्च या पादरी सन्तुष्ट नहीं कर सकता। विशेषज्ञ व्यक्तियो के द्वारा, चाहे वे कितने ही नीरस क्यो न हो, व्याख्यान दिये जाने के बाद, संभावना यही रहती है कि छात्रो को सामान्य धार्मिक उपदेश चाहे वह प्रोटेस्टेंट हो, या कैथोलिक या यहूदी असन्तोषजनक लगेगा। व्यावसायिक विचारको द्वारा प्रशिक्षण दिये जाने के बाद, रविवासरीय विद्यालय के अध्यक्ष की अस्पष्ट सी सद्भावना का कोई मूल्य नहीं मालूम पडता। अमरीका मे राज्य द्वारा सहायता दी जाने वाली उच्च शिक्षा की सस्थाओ के स्नातको की श्रद्धा को यदि बनाए रखना है तो इसके लिए विश्वविद्यालयो को नहीं अपितु चर्चो को बौद्धिक दृष्टि से सजीव बनना पड़ेगा। इक्के-दुक्के पादरी और चर्च इस बात को समझते हैं, लेकिन यह मानना पड़ेगा कि उनमे से अधिकाश इसे नहीं समझते।

चर्च या राजनीतिज्ञ चाहे इस समस्या को पूरी तरह समझ पाएँ या नही, बहुत से शिक्षाशास्त्री, क्योकि वे व्यावसायिक शिक्षक है, ऐसे है जो धर्म के बारे मे ज्ञान और धार्मिक ज्ञान के इस विरोध को मिटाना चाहते है। धर्म-शास्त्र की आधुनिक प्रवृत्तियाँ इस समस्या का हल खोजने मे सहायक हो सकती है। उदाहरण के लिए, एक प्रोफेसर ने इस प्रकार लिखा है, और अन्य बहुत से उससे सहमत होंगे

"कालेजो मे धार्मिक शिक्षा के लिए नियुक्त अधिकांश शिक्षक ऐसे है जिन्होने स्नातक-विद्यालयो से तब शिक्षा प्राप्त की थी जब धार्मिक सिद्धान्तो का रुख धर्मशास्त्रो की ओर नहीं हुआ था। इसलिए ईसाई विचार के अग्रगामी भाग और उनकी शिक्षाओ के बीच एक 'सास्कृतिक पिछडापन' रह गया है। और फिर दूसरे शास्त्रीय विभागो की राय यह है कि धर्म की शिक्षा मे भी वही निष्पक्षता तथा अवैयक्तिकता होनी चाहिए जो विज्ञान मे होती है। इस तरह यदि धर्म के विभाग के अध्यापक कुछ और करना चाहे तो भी उन्हे, अपने सहयोगियो की बात मानने के

लिए मुख्य तौर से ऐतिहासिक या तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है, और यह सब ऐसे समय मे हो रहा है जब कि तुलनात्मक धर्म मे रुचि रखने वाले योग्य धार्मिक अध्यापक मिलने कठिन हो रहे है।

स्पष्ट ही, धार्मिक शिक्षा का धर्म के वैज्ञानिक अध्ययन के साथ मेल बैठाने की समस्या सस्थागत पुनर्निर्माण की इतनी नही है जितनी कि बौद्धिक पुनर्निर्माण की। कोई कारण नही कि पूजा और सेवा के स्थानो के साथ-साथ शिक्षा की सस्थाओ मे भी धर्म का विकास बुद्धिमत्ता, श्रद्धा तथा युक्ति के साथ क्यो न किया जाय। शिक्षा की दृष्टि से भी धर्म का बडा महत्त्व हो सकता है यदि यह समझ लिया जाय कि यह सदा ही एक बुनियादी 'मानवीय विषय' रहा है। यदि यह मानवीय सभ्यता मे अपना बुनियादी भाग खो दे, तो अच्छी से अच्छी शिक्षा भी इसे बचा नही सकती। जब तक धर्म एक सार्वजनिक सेवा का काम है तब तक धार्मिक निरक्षरता एक सार्वजनिक बुराई रहेगी ही। धर्म के इस मानवीय दर्जे और शैक्षिक कार्य को न केवल धर्ममण्डलो का विरोध करने मे उत्पन्न हुई अज्ञानता से खतरा है, अपितु उन धर्मान्धो के ऊँचे अभिमान मे भी है जो अपने विश्वास की व्याख्या ऐसे ढग से नही कर पाते जिसका मेल सभ्यता मे मिल सके। धर्म के परलोकवाद का तभी तक सम्मान किया जायगा जब तक उसके द्वारा की जाने वाली इस ससार की आलोचना मे उद्धार करने की शक्ति होगी। दूसरे शब्दो मे, विद्यालय, चर्च और राज्य को सच्चे तौर पर परस्पर सहयोग करना चाहिए, और शक्ति या नैतिक अधिकार पर एकाधिकार पाने की कोशिश नही करनी चाहिए।

मिशन

विदेशी मिशन-क्षेत्रो मे हुए सस्थागत परिवर्तनो की विवेचना करना यहा असम्बद्ध और अप्रासगिक होगा। देश के मिशनो मे हुए परिवर्तनो के अलावा जिनसे हमारा सम्बन्ध है वे परिवर्तन है जो अमरीका के अन्दर मिशनरी भावना और सगठन मे हुए हैं। अमरीका की सभी कलीसिया प्रारम

मे मिशन-क्षेत्र ही थी, और रोमन कैथोलिक चर्च के लिए तो अमरीका १९०८ तक अधिकृत रूप से एक मिशन प्रदेश था।

यह तो अनिवार्य है कि देश के मिशनो और विदेशी मिशनो मे प्रतिस्पर्धा हो, यद्यपि मिशनरी शिक्षा आन्दोलन ने १९२१ से ही उनमे समन्वय कराने का प्रयत्न किया है। प्रोटेस्टेट लोगो के बीच विदेशी क्षेत्रो को एक शताब्दी तक ज्यादा लोकप्रियता, विस्तार और सहारा मिला। इन क्षेत्रो मे विशेषकर भारत, चीन और जापान मे काम करने का उत्साह और विनियोग अमरीकी आर्थिक और राजनैतिक स्वार्थो से कही बढकर रहा। अवश्य ही, जब धर्म-निरपेक्ष स्वार्थ और साम्राज्यवादी नीतियो ने अमरीकी मिशनो के लिए नये क्षेत्र खोल दिये, तो चर्च भी इस अवसर का लाभ उठाने मे चूके नही। लेकिन मिशनो की आम भावना के बारे मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्नीसवी तथा बीसवी शताब्दी मे भी सबसे अधिक लोकप्रिय वे ही प्रदेश रहे जहाँ 'अनीश्वरवाद' का सबसे व्यापक प्रचार था—अर्थात् भारत, चीन और 'अन्ध अफ्रीका' यद्यपि अनीश्वरवादिता की भयानकता को बढा-चढाकर ही यह लोकप्रिय अपील की गई थी, और मिशनरी आन्दोलनो के लिए आज भी की जाती है, तो भी यह कहना ठीक ही होगा कि मिशन-बोर्डो के बुद्धिमानी से नियोजित कार्यो के आगे यह धीरे-धीरे दब गई। प्रोटेस्टेट मिशनो का केन्द्रीकरण बढता गया जिसके परिणामस्वरूप मे १८९३ मे उत्तरी अमरीका की फॉरेन मिशस कान्फ्रेस, १९१० मे ऐडिनबरा कान्फ्रेस और १९२१ मे इटरनेशनल मिशनरी कौंसिल आयोजित हुई। इधर ससारव्यापी कैथोलिक मिशनो के लिए अमरीकी कैथोलिको की मदद भी बढती गई। इस सबसे मिशनरी गतिविधियाँ अधिक व्यवस्थित, रचनात्मक और बुद्धिमत्तापूर्ण हो गई है, और साथ ही जन-साधारण की पारम्परिक भावनात्मक रुचि भी कम नही हुई जिस पर कि अन्ततोगत्वा विदेशी क्षेत्रो का आधार बना हुआ है। लेकिन पिछले दो दशको मे, मिशन-बोर्डो के पूर्णतया सस्थागत काम और मिशनो के लिए भावनात्मक धार्मिक उत्साह, इन दोनो मे ही अनेक बडे सकट आये है।

पहला सकट १९२० मे आया। मिशनरी उत्साह और इसपर आधारित केन्द्रीकृत नियोजन की नाटकीय चरमसीमा 'इटर चर्च वर्ल्ड मूवमेट' (१९१९-१९२०) के रूप मे सामने आई। अमरीकी धार्मिक नेता जिन्होने प्रथम विश्वयुद्ध को बढाने मे मदद की थी और जो युद्ध ऋण लेने की विधियो मे परिचित हो गए थे, १९१८ मे मिलकर देश के नैतिक और आर्थिक स्रोतों को अधिक रचनात्मक ध्येय की ओर ले जाने पर विचार करने लगे। मैथोडिस्ट नेतृत्व के आधीन, बडी सख्या मे विभिन्न मतो वाले 'विश्व-आन्दोलनो' का सगठन किया गया, और १९१९ मे 'इटर चर्च वर्ल्ड मूवमेट' की ओर से एक विशाल आन्दोलन शुरू किया गया जिसका उद्देश्य "सयुक्त राज्य अमरीका तथा कैनाडा के धर्मोपदेशीय चर्चो की मिशनरी, शैक्षिक, और अन्य परोपकारी सस्थाओ द्वारा अपने सम्मिलित प्रयत्न से अपने वर्तमान सामान्य कार्यों का सर्वेक्षण करना और उनके लिए मनुष्य, धन और शक्ति के आवश्यक साधन जुटाना" था।

'इटर चर्च वर्ल्ड मूवमेट' के उद्देश्यो की घोषणा एक महत्वाकाक्षी और व्ययसाध्य योजना के रूप मे की गई। (प्रदर्शित सामग्री सख्या ४ देखिए)। बडे-बडे कार्यालय स्थापित किये गये और प्रोटेस्टेट चर्चों का काम एक बडे व्यापार के रूप मे सगठित किया गया। यह आन्दोलन अभी शुरू ही हुआ था कि इस पर युद्धकालीन योजनाओ के विरुद्ध उठी हुई प्रतिक्रियाओ का प्रतिकूल प्रभाव पडा और इसका दिवाला निकल गया। इसके एकाएक ठप हो जाने का कारण यह भी था कि बिशप फ्रासिस जे० मैक्कानेल की अध्यक्षता मे स्थापित इसकी एक समिति ने १९१९ की इस्पात हडताल पर एक बहु-प्रचारित रिपोर्ट प्रकाशित की थी जो निश्चित रूप से मजदूरो के पक्ष मे थी। इस आन्दोलन को सबसे ज्यादा चदा देने वालो मे से कुछ ने अवश्य ही इस प्रकार के 'विश्व' कार्य की कल्पना नहीं की थी।

तो भी, उदारवाद और सामाजिक सेवा की मिलीजुली प्रेरणा से मिशन-बोर्डों का सामान्य कार्यक्रम फैलता गया। आर्थिक मदी से पहले

भी गभीर आर्थिक कठिनाइयाँ सामने आई थी जब कि आर्थिक सहायता मिशनरी उत्साह का साथ नही दे पाई। १९२८ की जेरूसलम काग्रेस मे बुनियादी मसलो पर विचार-विनिमय हुआ और नीतिसम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गये। 'धर्म-निरपेक्षवाद' के सामान्य शत्रु को दृष्टि मे रखते हुए ईसाइयो से कहा गया कि वे सम्मिलित उद्देश्य की पूर्ति के लिए अन्य धर्मावलबियो से अपील करे, यद्यपि तब भी ईसाइयत की 'अद्वितीयता' और सच्चाई से इनकार नही किया गया। यहूदियो को भेजे जाने वाले मिशन पूर्णतया बन्द कर दिये गये और अन्तर्धर्म सगठनो की स्थापना की गई जिनमे मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बढाने की आशा थी। मोटे तौर पर, 'सभ्य बनाने वाले' मिशनो का स्थान अब 'धर्मोपदेश देने वाले' मिशनो ने लिया था। मिशन-क्षेत्र मे इस तरह की उदारता आने से, पूर्व मे शिक्षा, चिकित्सा, ग्राम तथा उद्योग सम्बन्धी सेवाओ का विस्तार हुआ। लेकिन रूढिवादियो को डर था कि कही धर्मोपदेशीय ईसाइयत बिल्कुल छूट ही न जाय, और इसलिए उन्होने बहुत विरोध भी प्रकट किया। १९३० मे जोन डी० रॉकफेलर की प्रेरणा और सहायता से जनता के कुछ लोगो ने 'लेमेस फॉरेन मिशनरी इक्वायरी' (Lay mens Foreign Missionary Enquiry) नाम की एक समिति स्थापित की जिसने यह पता करने के लिए कि विदेशी मिशनो मे ऐसा क्या कुछ है जिसकी सहायता करना जरूरी है बडे मिशन क्षेत्रो मे विशेषज्ञो के अनेक कमिशन भेजे। तथ्य हासिल करने वालो के प्रतिवेदन हार्वार्ड के प्रोफेसर विलियम अर्नेस्ट हाकिंग की अध्यक्षता मे नियुक्त एक मूल्याकन समिति के सामने रखे गए। 'रिथिंकिंग मिशस' के नाम से १९३२ मे प्रकाशित इसकी रिपोर्ट से उदार दृष्टिकोण का औचित्य पूरी तरह सिद्ध हो गया।

इस नीति के बारे मे जोरदार बहस होती रही है, विशेष तौर से तब से जब से कि यूरोपियन दार्शनिको के द्वारा, जो अमरीका को लाइलाज 'शक्तिवादी' बताते है, एक नया धर्मोपदेशवाद सामने रखा गया है। मिशनरी तरीको का पुनर्निर्माण करने मे व्यावहारिक रूप से ज्यादा सहायक अमरीकी

नेताओ के वे प्रयत्न रहे है जिनके द्वारा वे ईसाई धर्मोपदेशवाद मे पूर्वी धार्मिक विधियो (जैसे हिन्दू आश्रम और सामान्यतया ध्यान) को लाना चाहते थे। जोन सी० बैनेट के द्वारा एक ध्यान की स्थिति का सुझाव दिया गया है

केवल सामाजिक उपदेश ही लोगो को ईसाई सन्देश की ओर प्रवृत्त नहीं कर पायेंगे। लेकिन यह धारणा कि ईसाइयत सामाजिक रूप से अप्रासंगिक है उन्हे इस से दूर अवश्य रख सकती है। आने वाले समय मे ईसाइयत बहुत से मनुष्यो को अपनी ओर खीच सकती है क्योकि यह इहलौकिक तथा पारलौकिक दोनो है, क्योकि यह जहाँ लोगो को सामाजिक दशा को बदलने की प्रेरणा देती है वहाँ उनकी आन्तरिक गहरी आवश्यकताओ को भी पूरा करती है, क्योकि यह जीवन का एक ऐसा क्रान्तिकारी विश्लेषण सामने रखती है जो आर्थिक व्यक्तिवाद और साम्यवाद दोनो की भ्राति को दूर कर देता है। धर्मोपदेशवाद पर बल देने मे मुख्य कारण मेरा यह विश्वास है कि पिछले बीस वर्षों मे धर्म-शास्त्रीय उदारवाद की पृष्ठभूमि रखने वाले चर्चों मे ईसाई सन्देश की अद्वितीयता की एक अधिक निश्चित समझ आई है।

यहा पर प्रोफेसर बैनेट यह आशा कर रहे मालूम होते कि 'आर्थिक व्यक्तिवाद और साम्यवाद' का 'क्रातिकारी विश्लेषण' करने मे ईसाइयत पहले से अधिक अद्वितीय सिद्ध होगी।

द्वितीय महायुद्ध ने मिशनरी संस्थाओ के लिए सबसे गभीर सकट पैदा कर दिया, यह और भी गभीर हो सकता था यदि ऊपर लिखी हालतो ने, पूर्वी धर्म और संस्कृति के प्रति नया दृष्टिकोण पैदा न कर दिया होता। युद्ध ने आम जनता को पूर्व के बारे मे कुछ साधारण जानकारी दी। जिसने 'अनीश्वरवादियो' के प्रति उनकी विशेष भावनात्मक अनुभूति समाप्त-सी कर दी। इससे मिशनरी कार्य की बुनियादी प्रेरणाओ मे भी एक जबर्दस्त परिवर्तन आने की सभावना है।

जब आमने-सामने के सघर्ष और अन्य पाशविक कार्यों के रूप मे पूर्व

और पश्चिम का अप्रत्याशित मिलन हुआ तो मिशनरी कार्य का धार्मिक पहलू पीछे रह गया और धर्म-निरपेक्ष सहायता, भूमि-सुधार, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी युद्ध के पूर्व की प्रवृत्तियो पर अधिक बल दिया जाने लगा। अभी यह अनुमान लगाना कठिन है कि इसका परिणाम क्या होगा, आया मिशन और ज्यादा खुलेगे या बिल्कुल ही नही रहेगे। लेकिन ध्यान देने लायक मुख्य बात यह है कि मिशनरी सस्थाओ के साथ तारतम्य और समग्रता के बावजूद मिशनो की सारी धारणा मे ही आमूल परिवर्तन आ गया है।

वह बात जिस पर सबसे ज्यादा ध्यान जाता है कैथोलिक मिशनो के नवीकरण का है जिसमे अमरीकी कैथोलिको को एक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करना है। अभी हाल तक अमरीकी कैथोलिको का सारा ध्यान देश के अन्दर के मिशनो पर ही केन्द्रित था और विदेशी मिशनो की सक्रिय सहायता करने के लिए न तो उनके पास साधन ही थे और न रुचि। लेकिन १९११ मे जब कि 'मेरीनोल फादर्स' की स्थापना हुई कैथोलिको की मिशनरी गतिविधियाँ लगातार बढती रही है और वे प्रोटेस्टेट मिशनो की आम दिशा मे ही बढी है। १९२१ मे 'सेट कोलम्बन्स फॉरेन मिशन सोसायटी' ने अपना शिक्षालय खोला, और १९४३ मे 'एकेडैमिया फार मिशन स्टडी' ने सभी कैथोलिक शिक्षालयो मे मिशन कार्यक्रम की शिक्षा की व्यवस्था कर दी। अमरीकी दिलचस्पी के मुख्य मिशन क्षेत्र जापान, चीन, फिलिपाइन्स और दक्षिणी अमरीका है। कैथोलिक और प्रोटेस्टेट मिशनो के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत ही मित्रतापूर्ण है। सब मिलाकर, कैथोलिक लोग ईसाइयत की ओर धर्म-परिवर्तन पर ज्यादा बल देते रहे है, जैसा कि प्रोटेस्टेट उदारवाद से पहले करते थे। कैथोलिको के तरीके कुछ भिन्न है—वे उपदेश और शिक्षा मे कम और अनाथालय चलाने या अकाल मे सहायता देने जैसे परोपकार के कामो मे ज्यादा विश्वास करते है। लेकिन युद्ध के द्वारा उत्पन्न परिस्थितियो ने कैथोलिको को और धर्मो के बजाय 'अधार्मिकता' और नास्तिकता, अर्थात् साम्यवाद पर अपना ध्यान केन्द्रित करने को प्रेरित किया है। उनकी दृष्टि मे ससार को ईश्वरहीनता से बचाने

का काम सबसे महत्त्वपूर्ण है। प्रोटेस्टेट इस बात मे पूरी तरह सहमत नही है, तो भी उन्हे नई राजनैतिक परिस्थितियो और पूर्व मे बढती हुई 'धर्म-निरपेक्ष' भावना के अनुकूल बनाने के लिए अपने मिशनरी प्रोग्राम मे भारी परिवर्तन करना पडा है।

विदेशी मिशनो के बारे मे पुनर्विचार करने के परिणामस्वरूप देश के अन्दर के मिशनो की ओर तुरत ध्यान गया। लेकिन इस क्षेत्र मे भी पिछली आधी शताब्दी मे नाटकीय ढग से पूर्ण नवीकरण हो गया है। जहाँ कि पहले 'घर मे विदेशियो' (रेड इडियन, बाहर से आये व्यक्ति, अलग पडे हुए पहाडी प्रदेश और चर्च समुदायो) के काम को प्राथमिकता दी जाती थी, अब यह काम 'समाज कल्याण' या सामाजिक कार्य के अधिक विस्तृत कार्यक्रम के अधीन हो गया है। सामाजिक सेवा की धारणा भी अब पहले से अधिक विस्तृत हो गई है और उसमे अब मामूली परोपकार और स्वास्थ्य सेवा मे कही ज्यादा बाते शामिल हो गई है। परिणामत एक पूरी तरह शहरी पैरिश न केवल एक संस्थागत चर्च होता है अपितु वह धर्म-निरपेक्ष स्थानीय कल्याण-कार्य और बडे पैमाने की राष्ट्रीय संस्थाओ के साथ सहयोग भी रखता है। परिस्थितियो ने इन संस्थाओ को बाध्य कर दिया है कि वे पारम्परिक परोपकार के काम को पीछे छोडकर श्रम, निधि-निर्माण, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तथा अन्य ऐसी ही बातो पर ध्यान केन्द्रित करे जो आधी शताब्दी पहले धार्मिक संस्थाओ के काम के लिए सर्वथा आनुषंगिक समझी जाती थी।

इन सभी परिवर्तनो से पता चलता है, चाहे सिद्ध न होता हो कि मिशनो ने पूरी तरह संस्था का रूप ले लेने के साथ-साथ मिशनरी-कार्य के स्वरूप मे बहुत अन्तर आ गया है। ईसाई-मिशनरी संसार को तो ईसा के पास नही ला सके है, हा वे ईसाइयत को संसार तक अवश्य ले आये है। उन्होने मानवता की अनेक प्रकार से सेवा की है और संसार के कामो मे अपने भाग से ज्यादा ही अदा किया है। एक मिशनरी के अदर अब भी पहले की तरह मानव जाति का उद्धार करने की धार्मिक लगन होती है लेकिन वह इस लगन को

एक सच्चे कार्यकर्त्ता के रूप मे सेवा करके दिखाता है। वह एक अध्यापक, चिकित्सक, नर्स, कृषि-विशेषज्ञ या श्रम-नेता कुछ भी हो सकता है। एक पादरी के रूप मे भी (और अब मिशनरियो मे पादरी अल्पसख्या मे है) वह उपदेश देने के वजाय मनुष्यो की उन रूपो मे सेवा करता है जिन्हे गैर-ईसाई भी उपयोगी मानते है। इस प्रकार सस्थागत धर्म ने सिद्धातो के प्रचार के वजाय अपने व्यवहार द्वारा विद्रोही ससार के आगे भी अपना औचित्य सिद्ध कर दिया है, क्योकि वास्तव मे ऐसी सस्थाएँ वहुत ही कम है जो सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति क्रियात्मक वफादारी उत्पन्न करती है।

सवमे अधिक व्यग्यात्मक और ध्यान देन योग्य परिवर्तन अमरीकी यहूदी धर्म मे हुआ है। इस धर्म मे पहले कभी भी मिशन नही रहे और इसका सामाजिक कार्य परम्परागत रूप से स्थानीय और धर्म-निरपेक्ष रहा है। लेकिन अव इसके सामने इजराइल के रूप मे सबसे वडा मिशन-क्षेत्र है, और यहूदी राष्ट्र की सहायता करने की तीव्र भावना भी इसमे है। कट्टर जियोनवाद की ओर से सारे यहूदी धर्म को इजराइली वनाने का जो प्रयत्न किया जा रहा है वह ख्याली ही है, क्योकि अमरीकी यहूदियो मे से ज्यादातर अपनी दुहरी वफादारी वनाये रखने के वजाय इसके कि वे अपने को निर्वासित व्यक्ति माने। लेकिन सभवत आने वाले कुछ समय मे अमरीकी और इजराइली नेता एक-दूसरे के प्रदेश को मिशन-क्षेत्र मानते ही रहेगे।

विश्वव्यापी प्रवृत्तियाँ

यूरोपीय धार्मिक नेताओ ने यह वात आम तौर से देखी है कि अमरीकी 'श्रद्धा और सगठन' मे एकता लाने के वजाय कर्म और सेवा मे एकता लाने के लिए अधिक उत्सुक होते है। एक आम कार्यक्रम जिसने वीसवी सदी मे प्रोटेस्टेट नेताओ की कल्पना को सबसे ज्यादा उभारा है, वह है सब चर्चो मे उनकी श्रद्धा और पूजा मे विभिन्नता कायम रखते हुए समन्वय लाने के लिए प्रयत्न करना। शताब्दी के प्रारभिक वर्षो मे चर्चो मे एकता कायम करने के लिए 'सम्प्रदायवाद' पर तीव्र आक्रमण किया गया। कई महत्त्व-

पूर्ण सम्प्रदाय एक हो भी गए, लेकिन मिलकर वे और अधिक शक्तिशाली सम्प्रदाय बन गए। अलग-अलग चर्चों ने, यद्यपि जहाँ-तहाँ वे आपस में मिल गए हैं, काफी अच्छी अपनी ऐतिहासिक विशिष्टता बनाये रखी है यद्यपि उनका स्वरूप अब वह नही रहा है जो परम्परा से चला आता था। इस समय अमरीका में लगभग २५० स्वतंत्र धार्मिक संस्थाएँ हैं लेकिन केवल ५४ चर्चों की रिपोर्ट में उनकी सदस्य-संख्या ५०,००० से ज्यादा बतायी गई है, और दस लाख से ज्यादा सदस्यता वाले चर्चों की संख्या केवल १४ है। ये संस्थाएँ क्रम के अनुसार निम्नलिखित हैं रोमन कैथोलिक, मेथो-डिस्ट, सदर्न बैपटिस्ट, नेशनल बैपटिस्ट कन्वेंशन, यू० एस० ए०, नेशनल बैपटिस्ट कन्वेंशन ऑफ अमेरिका, प्रेस्बिटेरियन चर्च इन दि यू० एस० ए०, प्रोटेस्टेंट ऐपिस्कोपल, यूनाइटिड लूथर चर्च इन अमेरिका, डिसाइ-पल्स ऑफ क्राइस्ट, नार्दर्न बैपटिस्ट कन्वेशन, ईवैजेलिकल लूथरन सिनोड ऑफ ओहियो, कांग्रीगेशनल क्रिश्चियन, अफ्रीकन मैथोडिस्ट ऐपिस्कोपल और चर्च ऑफ जीसस क्राइस्ट ऑफ लेटर डे सेंट्स। अमरीका में यहूदियों की संख्या लगभग ४५ लाख है और इसमें ऐसे यहूदी भी शामिल हैं जो ज्यूडाइस्ट नहीं हैं।

सारे ईसाइयों को एक ही संस्था में मिलाने का प्रयत्न अब व्यवहार-रूप में छोड़ा जा चुका है। विशेष तौर पर कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट और यहूदियों के बीच की रेखाएँ तो अच्छी तरह निश्चित हो गई हैं और ये तीन दल अब धर्म-परिवर्तन का प्रयत्न किये बिना एक-दूसरे से सहयोग करने लगे हैं। सहयोग का उद्देश्य इस समय तो विरोध समाप्त करना है, लेकिन ज्यों-ज्यों 'धर्म-निरपेक्षवाद' से उनका संघर्ष बढ़ रहा है त्यों-त्यों सामान्य रुचि के रचनात्मक क्षेत्र भी सामने आ रहे हैं।

इन तीन बड़े धार्मिक दलों के अंदर संस्थागत संगठन में काफी प्रगति हुई है। यहूदियों के बीच कट्टरपंथी, रूढ़िवादी और सुधारवादियों के बीच की पारम्परिक रेखाएँ अब टूटने लगी हैं। इसका मुख्य कारण नाजियों द्वारा यहूदियों को सताये जाने की सामान्य समस्या और इजराइल के रूप में

एक मातृभूमि का निर्माण है। इन परिस्थितियो ने अमरीकी यहूदी धर्म मे दुहरी राष्ट्रीयता ला दी है एक ओर तो राष्ट्र के ऐतिहासिक विश्वास के रूप मे इजराइल के धर्म पर बल और दूसरी ओर अमरीका मे पैदा हुए यहूदियो के अमरीकी नेतृत्व पर बल।

रोमन कैथोलिक चर्च अवश्य ही सगठन मे एकता लिये हुए है। पर इसमे पहले जो काम स्थानीय या अतर्राष्ट्रीय ढग से होते थे वे अब राष्ट्रीय स्तर पर सगठित किये जाने लगे है। १९१९ मे बनायी गई 'नेशनल कैथोलिक वेल्फेयर कान्फ्रेंस' अपनी कई शाखाओ के साथ इस काम को बहुत तेजी के साथ कर रही है। लेकिन इस तरह की कई सस्थाएँ और भी है और इन सबमे पता चलता है कि इसके कार्यकर्त्ता दिनोदिन कितने व्यावसायिक होते जा रहे है।

रोमन कैथोलिक लोगो की ओर से कैथोलिक सीमा के बाहर अनौपचारिक मित्रता बढाने के जो भी प्रयत्न किये गए उनका परिणाम उत्साहजनक नही निकला। टॉमिस्ट और धर्म-निरपेक्ष दार्शनिको के बीच बौद्धिक सम्पर्क पहले से अधिक बढ गये है, यद्यपि उतने नही जितने कि यूरोप मे। सब मिलाकर कैथोलिक लोगो के लिए प्रोटेस्टेंट या ईस्टर्न ऑर्थोडॉक्स दलो के बजाय धर्म-निरपेक्ष लोगो या यहूदियो के साथ मित्रतापूर्ण आदान-प्रदान करना ज्यादा आसान है।

सबसे बडी समस्या प्रोटेस्टेट चर्चो की है और इन्होने ही कार्य मे एकता को बढावा देने का सबसे अधिक प्रयत्न भी किया है। इस शताब्दी से पहले की वाई० एम० सी० ए०, वाई० डब्ल्यू० सी० ए०, विद्यार्थी स्वयसेवक आदोलन, रविवासरीय विद्यालय सघ, क्रिश्चियन एडीवर मूवमेट और डब्ल्यू० सी० टी० यू० आदि अनेक सस्थाएँ ऐसी है जिनका किसी मत से सबध नही है और जिन्होने दो या अधिक मतो के अदर अधिकृत सघ बनाने का रास्ता खोल दिया है। केद्रित कार्य को आगे बढाने मे ऊपर कहे गए मिशन बोर्डो और धार्मिक शिक्षा परिषदो का प्रमुख हाथ था। दो प्रकार के स्थानीय सघ भी बहुत प्रभावशाली थे एक तो नगर या राज्य के चर्चो

के संघ और दूसरे निर्मतीय या अंतर्मतीय सामुदायिक चर्च। १९०८ में 'फेडरल कौंसिल ऑफ् दि चर्चिज ऑफ् क्राइस्ट इन अमेरिका' के निर्माण के साथ सहयोग के लिए एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन शुरू हो गया। उस समय भी यह ७५ प्रतिशत प्रोटेस्टेंट चर्च के सदस्यों का प्रतिनिधित्व करता था, और १९५० में 'नेशनल कौंसिल ऑफ चर्चिज' के रूप में इसके विस्तार के बाद लगभग सभी प्रोटेस्टेंट इसमें शामिल हैं।

प्रथम महायुद्ध के समय और औद्योगिक संबंधों को सुधारने के प्रारंभिक प्रयत्नों के समय बड़ी कठिनाइयाँ सामने आईं। लेकिन दो दशकों के अपने अनुभव के आधार पर, १९३२ में फेडरल कौंसिल ने अपनी गतिविधियों में अधिक अच्छा संगठन लाने के लिए और अपने उत्तरदायित्वों का और अच्छा निरूपण करने के लिए अपने विधान में कुछ परिवर्तन किए। इसने सारे स्थानीय संघों से अपने संबंध तोड़ लिए। साथ-ही-साथ इसने अपने आयोगों को अधिक स्थिरता और निश्चितता प्रदान की और उनके विशेषज्ञों का स्टाफ भी बढ़ा दिया। छान-बीन का काम, सामाजिक कार्य और मिशनरी काम के अलावा सहयोग की इन संस्थाओं की एक बड़ी सफलता यह भी थी कि उन्होंने चर्चों के बीच सौजन्य के सिद्धांतों का ब्योरा तैयार किया।

१९३८ तक फेडरल कौंसिल का सालाना बजट २५०,००० डालर का था जिसका केवल एक-चौथाई भाग सीधा सदस्यता से आता था, शेष धन विभिन्न स्रोतों से विशिष्ट उद्देश्यों के लिए एकत्र किया जाता था। इसकी सबसे अधिक सक्रिय समितियां इनके बारे में थीं: चर्चों की कौंसिल, धर्मोपदेशवाद और जीवन-सेवा, समाज-सेवा, अंतर्राष्ट्रीय न्याय, सद्भावना, जातियों के बीच में संबंध, नशाबंदी और ईसाई शिक्षा। एस० अर्नेस्ट जॉनसन के नेतृत्व में शोध और शिक्षा का विभाग खास तौर पर सक्रिय था।

प्रोटेस्टेंट लोगों के बीच विश्वव्यापी आंदोलन के विकास और 'ईसाइयत की एकता' स्थापित करने के लिए आयोजित कान्फ्रेंसों की शृंखला में

यह नही समझ लेना चाहिए कि इनसे विभिन्न धार्मिक सस्थाओ को कोई नुकसान हुआ है। यद्यपि कुछ सस्थाएँ आपस मे मिल गई है, अलग-अलग मतो का आम ढाँचा पहले से ज्यादा मजबूत है। दलबदी पर किये गए आक्रमणो ने हो सकता है कि अधिक मित्रतापूर्ण वातावरण बना हो, लेकिन अमरीकी धार्मिक सस्थाओ मे मत अभी भी आधारभूत है, और वास्तव मे वे चर्च भी जो एकता पर सबसे अधिक बल देते है हमारे धार्मिक बहुत्व मे एक और पेचीदगी पैदा कर देते हैं। डीन स्पैरी ने इस स्थिति को बहुत अच्छी प्रकार सामने रखा है

हमारे अमरीकी मत न तो अधिकार की आत्म-सतुष्टिपूर्ण आवाज उठा सकते है और न विरोध की ऊँची आवाज ही। अपनी स्वाभाविक अन्तर्दृष्टि के सत्य को खोए बिना चर्च के हर सदस्य को दूसरे दल की स्थिति के सत्य की सभावना को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसमे व्यावहारिक कठिनाई यह है कि बहुत कम व्यक्ति ऐसा करने की योग्यता रखते है। अधिकतर को यह अनुभव होता है कि ऐसा करने से वे राज्य के पक्ष द्वारा अपने विश्वासो को दब जाने दे रहे है। लेकिन एक दूसरे की ओर से उदासीन बने रहने से तो कुछ बनेगा नहीं। अपने सगठित धार्मिक जीवन मे इस मतवाद के आधार पर ही अमरीका ने इस समस्या की व्याख्या के लिए सबसे पूर्ण तथा स्वतत्र अवसर दिया है।

लेकिन अभी यह देखना बाकी है कि डीन स्पैरी जिसे 'अमरीकी मत-वाद' कहता है उसके आधार पर बडी-बडी धार्मिक सस्थाएँ जीने और जीने देने के लिए तैयार हो जायगी या नही। यह कोई छिपी हुई बात नही है। प्रोटेस्टेट विश्वव्यापिता कैथोलिकवाद के लिए एक चैलेज है और एकता मे शक्ति का अनुभव करने के साथ-साथ ईसाइयत के इन दोनो पक्षो मे तनाव बढता जा रहा है। जब तक सभी धार्मिक सस्थाएँ साम्यवादी नास्तिकता और उदारवादी धर्म-निरपेक्षवाद के विरुद्ध अपने सघर्ष मे एक हो सकती है, तब तक उनके धार्मिक भेद दबे रहेगे और वे पवित्रता की शक्तियो का प्रतिनिधित्व करेगी। लेकिन यह भी सभव है कि सयुक्त राज्य मे धार्मिक

युद्ध फिर शुरु हो जायें और स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के लिए एक बार फिर वैसी ही अपील आए जैसी कि 'फाउडिंग फादर्स' के दिनो मे आई थी।

इस बीच, विश्वव्यापिता वाले प्रोटेस्टेट और रोमन कैथोलिक दोनो ही बिना मतवाद या एकरूपता को उत्पन्न किये अपने धार्मिक भेदो को स्वीकार करने के लिए तैयार है। प्रोटेस्टेटिज्म अब अपने स्वभाव या सिद्धात मे केवल कैथोलिक विरोधी या विद्रोही नही रहा है। सार्वजनिक मामलो पर एकता से काम करने की आवश्यकता को इसने समझ लिया है, इस दृष्टि से यह धर्म-सस्थान मे शक्ति के केन्द्रीकरण के रोमन कैथोलिक नमूने के विरुद्ध लड रहा है। प्रोटेस्टेट चर्चो के सघीकरण के लिए दो प्रेरक है उन्हे अमरीकी जीवन की धार्मिक परम्परा मे बहुमत मे होने का गर्व है और वे एक सुसगठित अल्पमत को सामाजिक सदाचार, सैम्मीय नैतिकता, अन्तर्राष्ट्रीय सबध, श्रम-आदोलन और आम राजनीति मे कोई अधिकारपूर्ण भाग अदा करने नही दे सकते। अगर वे पूरी तरह सुरक्षित होते तो शायद वे कोई सम्मिलित मोर्चा बनाना पसद न करते, लेकिन बढते हुए धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष विरोध ने उन्हे पास-पास आने की व्यावहारिक आवश्यकता बता दी है। इस तरह, और सभी सस्थाओ के समान, चर्चो का सगठन भी भय, साहस और कर्म का समिश्रण है। इसके प्रारभिक जीवन मे कर्म की प्रधानता रही, लेकिन अब सघर्ष अनिवार्य और बढते हुए प्रतीत होते है।

हमे इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि उन मतवादी और फडामेटलिस्ट चर्चो ने भी जिन्होने विश्वव्यापिकता के बधुत्व मे शामिल होने से मना कर दिया था अब एक सघीय भावना आने लगी है। ऐसी अतर्मतीय एजेंसियो मे प्रमुख है 'अमेरिकन कौंसिल आफ क्रिश्चियन चर्चिज' जिसकी स्थापना १९४१ मे 'फेडरल कौंसिल ऑफ चर्चिज' के और 'इटरवर्सिटी फैलोशिप' के जो कालेज के विद्यार्थियो का एक फडामेंटलिस्ट सगठन है आधुनिकवादी तथा समाजवादी प्रभाव को दूर करने के लिए की गई थी।

धार्मिक प्रेस

धर्म मे आये हुए परिवर्तन का सबसे अच्छा सूचक १९०० से पहले के और अब के धार्मिक साहित्य (विशेषकर आवधिक साहित्य) मे पाया जाने वाला अतर है। यद्यपि धार्मिक पत्रिकाओ का प्रसार लगातार बढता रहा है, धर्म-निरपेक्ष पत्रिकाओ की वृद्धि के मुकाबले मे इसमे ह्रास हुआ है। इस सबध मे खोज करने वाले प्रोफेसर ए० मेक्कलग ली का कहना है कि चर्च का साहित्य जहाँ एक शताब्दी पहले आबादी के तीन-चौथाई भाग तक पहुँचता था वहाँ अब धर्म-निरपेक्ष दैनिक प्रेस के दसवे भाग तक ही पहुँचता है। लेकिन इन आपेक्षिक परिमाणात्मक ह्रास से कही अधिक महत्त्वपूर्ण वह परिवर्तन है जो धार्मिक प्रकाशनो की पाठ्यवस्तु के स्वरूप मे आ गया है। मैथोडिस्ट मत के 'क्रिश्चियन एडवोकेट' (सबसे बडा प्रोटेस्टेंट साप्ताहिक, वितरण ३,४०,०००) और क्रिश्चियन हेराल्ड (लगभग वही वितरण-सख्या) मे १९०० के मुकाबले कम-से-कम तीन गुना धर्म-निरपेक्ष सामग्री अधिक है, और महीने मे ४,३४,००० प्रतियो मे छपने वाला एक अग्रणी कैथोलिक पत्र 'एक्सटेंशन', प्रोफेसर ली के शब्दो मे, अपनी बनावट और पाठ्यवस्तु मे धर्म-निरपेक्ष 'सेटरडे ईवनिंग पोस्ट' से बहुत ज्यादा मिलता है। इनसे भी अधिक ध्यान 'कामन वील', 'अमेरिका', 'दि क्रिश्चियन सेन्चुरी', 'क्रिश्चियैनिटी एड सोसायटी' जैसे पत्रो पर जाता है जो धार्मिक क्षेत्रो मे अपने-अपने राजनैतिक और सामाजिक समाचारो और विचारो के लिए पढे जाते है। और इन सब के ऊपर 'क्रिश्चियन साइंस मानीटर' है, जिसने पत्रकारिता के लिए एक ऊँचा मानदड कायम किया है। सक्षेप मे, चर्चो के पत्र और पत्रकार सासारिक मामलो पर—शायद धार्मिक दृष्टि से—विचार करने मे धर्म-निरपेक्ष पत्रकारो के साथ प्रतिस्पर्धा कर रहे है, लेकिन जिस रुचि को वे अपील करते है वह प्रचार कर पूर्व धार्मिक प्रेस द्वारा उत्पन्न करने वाली और भक्ति की भावना जगाने वाली रुचि से सर्वथा भिन्न है। और रुचि का यह परिवर्तन पादरी

मे जन-साधारण की ओर का परिवर्तन नही है, क्योंकि पादरी लोग स्वय ही इस परिवर्तन को लाने मे अगुआ बन गए है।

धार्मिक चर्चा गोष्ठी (लॉबी)

यह कहने की आवश्यकता नही कि यदि अमरीकी लोगो को धर्म मे निहित स्वार्थ राजनैतिक प्रभाव डालने वाले दल के रूप मे सगठित न होता तो यह प्रजातत्रीय राजनीति मे कारगर नही हो सकता था। राजनैतिक दबाव डालने वाले दलो के रूप मे धार्मिक सस्थाओ का विकास पिछले तीस वर्षो की एक ध्यान देने योग्य घटना है। किसी विशेष उद्देश्य से बनाये गए धार्मिक सगठन तो एक शताब्दी पहले भी थे, धार्मिक लोगो द्वारा दासता-विरोधी, अभियान, शराब-बन्दी लीग और शाति-सगठनो के रूप मे कानून बनवाने के प्रयत्न किये गए। लेकिन हाल मे दो मुख्य उद्देश्यो को लेकर स्थायी गोष्ठियो का विकास हो गया है एक तो धार्मिक सस्थाओ के कानूनी हको की रक्षा करना, और दूसरे उन धार्मिक प्रयत्नो को धार्मिक स्वीकृति देना, जिनका प्रभाव चर्च के सदस्यो की अतरात्मा तथा आदर्शो पर पडता है। पहले प्रकार मे वे दफ्तर आते है जिनका काम किसी दल-विशेष के स्वार्थो की रक्षा तक सीमित रहता है। दूसरे प्रकार की एजेंसिया अधिक साधारण है और अनेक प्रकार के विषयो पर विधि-निर्माण मे दबाव डालती है और यही खासकर बीसवी सदी की उपज है।

पहली बडी चर्चागोष्ठी की स्थापना १९२० मे नेशनल 'कैथोलिक वेल्फेयर कान्फ्रेंस' के द्वारा हुई थी जो प्रथम महायुद्ध मे आनुषगिक रूप से सबद्ध गतिविधियो को चलाने के लिए बनायी गई 'नेशनल कैथोलिक वार कौंसिल' के अनुकरण पर काम कर रही थी। 'नेशनल कैथोलिक वेल्फेयर कान्फ्रेंस' का न केवल कानूनी विभाग बल्कि सभी विभाग राजनैतिक कार्य के लिए सगठित किये गए है। वाशिगटन मे उनका ७५० व्यक्तियो का स्टाफ है और उसके द्वारा बिशप लोग, जिनके सारे नियत्रण मे कौंसिल रहती है, जहाँ चाहे वहाँ धार्मिक दबाव तुरन्त और व्यवस्था के साथ

डाल सकते है ।

लगभग उसी समय जब कि कैथोलिक सामाजिक कार्य के लिए सगठन बना रहे थे, मैथोडिस्ट लोग वाशिगटन मे मद्य-निषेध के लिए बनाये गए अपने कार्यालय की गतिविधियो का विस्तार कर रहे थे, जिसका उद्देश्य "नैतिक कानून के सार्वजनिक उल्लघन का स्पष्ट विरोध करना" था । इनके स्टाफ के अब लगभग पच्चीस सदस्य है जो 'मेथोडिस्ट फॉरेन मिशन बोर्ड' के वाशिगटन स्थित कार्यालय के स्टाफ के साथ सहयोग करते है । साथ-साथ मिलकर वे " . और भ्रष्ट करने वाले साहित्य, पतित करने वाले मनोरजन, लाटरी तथा जुए के अन्य प्रकारो" को दबाने का, अतर्राष्ट्रीय सबधो मे ईमाइयत लाने का और आमतौर पर सार्वजनिक आचार सुधारने का प्रयत्न करते है ।

मुख्य अतर्मतीय प्रोटेस्टेट एजेसी वाशिगटन कार्यालय है जिसकी स्थापना 'फेडरल कौसिल ऑफ चर्चिज' के द्वारा १९४५ मे हुई थी । यह आने वाले बिलो के बारे मे नेशनल कौसिल को रिपोर्ट देती है और "वाशिगटन मे सपर्क कायम करने के सही रास्ते" सुझाती है । प्रोफेसर एवरसोल की एक सक्षिप्त रिपोर्ट के अनुसार,

> कौसिल या इसकी प्रबध समिति द्वारा मार्च १९४४ से मार्च १९४८ के बीच मे साठ से ज्यादा प्रस्ताव और बयान पास किये गए । इन बयानो मे बडे विस्तृत प्रकार के विषय शामिल किये गए जिनमे से कुछ ये है . व्यापार समझौते, चर्च और राज्य का अलगाव, विदेशो मे सकट-कालीन सहायता, सीनेटर बिल्बो के विरुद्ध लगाये गए आरोपो की जाँच का समर्थन, युद्ध के बंदी, जापानी अमरीकियो के दावो का चुकाया जाना, विस्थापित व्यक्ति, ग्रीस और तुर्की को सहायता, पूरा रोजगार, शिक्षा के लिए सघीय सहायता, नागरिक अधिकार, धार्मिक सस्थाओ की जनगणना, खाद्य और कृषि, सयुक्त राष्ट्र आदि !

प्रोटेस्टेट लोगो के लिए मुकाबले के प्रवक्ता है 'नेशनल चर्च लीग आफ अमेरिका', 'दि नेशनल एसोसिएशन ऑफ इवैजैलिकल्स' और

'अमेरिकन कौंसिल ऑफ क्रिश्चियन चर्चिज' ।

सामान्य कार्यो को बढावा देने के लिए धार्मिक चर्चा-गोष्ठियां अवश्य ही धर्म-निरपेक्ष चर्चा-गोष्ठियो के साथ सहयोग करती है और विधि-निर्माण पर प्रभाव डालने के लिए वे चर्चा-गोष्ठियो द्वारा काम में लाये जाने वाले सभी उपाय काम मे लाती है ।

साराश

हमारी शताब्दी के पहले आधे भाग मे धार्मिक जीवन कहाँ तक सगठित और सस्थागत हो गया है यह बताने के लिए शायद पर्याप्त से अधिक कहा जा चुका है । अब हम उन सामान्य परिणामो को सक्षेप में देखेगे जिनका सुझाव इस सर्वेक्षण से मिलता है ।

१ और चाहे यह कुछ भी हो, धर्म अमरीका के सबसे बडे व्यापारो मे से है । तकनीकी दृष्टि से यह एक बिना लाभ का —परोपकारी व्यापार है । लेकिन आमतौर पर उपयोगी मानी जाने वाली सेवाओ के लिए पूंजी और श्रम मे इसका विनियोग अपार है । इसकी ये सेवाएं कई धर्म-निरपेक्ष सगठनो के समानान्तर चलती है और ये तकनीकी ढग से प्रशिक्षित व्यवसायी व्यक्तियो द्वारा चलायी जाती है जिनमे से अधिकतर साधारण लोग होते है । इसके पास विशाल सपत्ति है जिसका प्रबन्ध यह ज्यादा और ज्यादा व्यापारिक ढग से करता है ।

२ यद्यपि धार्मिक सस्थाओ के बीच की प्रतिस्पर्धा पूरी तरह भूतकाल की चीज नहीं बन गई है, इस धार्मिक गति-विधि के मुख्य उद्देश्य धर्म की दिशा मे अब उतने नहीं है जितनी कि धर्म-निरपेक्ष नगरो और सामाजिक समस्याओं की दिशा मे । तात्पर्य यह कि चर्च अब केवल सार्वजनिक पूजा के साधन ही नहीं रह गए है, वे अब धर्म-निरपेक्ष अर्थ मे सक्रिय काम कर रहे है । ऐसे काम को चर्च आवश्यक रूप से धार्मिक मानते है । दूसरे शब्दो मे इस तरह का धर्म मठवाद के विपरीत है, यह धार्मिक जीवन बिताना चाहने वाले लोगो को ससार के काम के बीच मे

ही पवित्रता के साथ रहने को बाध्य करता है। इस तरह के धर्म को ससार से पीछे हटना, पलायन का माध्यम, बचकानापन या नाशकारी नही माना जा सकता। लाखो लोग इसमे सक्रिय रूप से व्यस्त रहते है।

३ धर्म एक व्यापक सस्था है। शिक्षा, चिकित्सा, राजनीति, व्यापार, कला——सबके साथ इसका सबध हे, कुछ भी इसकी पकड के परे नही है। जीवन के कुछ क्षेत्रो से धर्म को दूर रखने के प्रयत्न ऐसे ही विफल हुए हे जैसे कि पहले सरकार और विज्ञान के बारे मे हुए थे। किसी भी काम को धार्मिक ढग से किया जा सकता है, और धार्मिक चिता से कोई भी चीज परे नही है। वे दिन चले गए जब आत्मा की मुक्ति एक स्पष्ट रूप से स्वतत्र कार्य था। चर्च और राज्य के अलगाव ने धर्म और राजनीति अलग नही हो जाते, जैसे कि विद्यालय और थियेटर के अलगाव से शिक्षा और कला अलग नही हो जाती। कुछ ऐसी सस्थाएँ है, जिनमे धर्म, सरकार, शिक्षा और कला भी है, जो किसी भी क्रिया या विचार को एक विशेष प्रसग या अनुशासन दे देती है। ऐसी सर्वव्यापी सस्थाएँ ही सस्कृति के बुनियादी स्वरूपो का निर्धारण करती है और जीवन को एक सभ्य रूप देती है। धर्म का प्राय यह दावा रहता है कि वह जीवन को पूर्ण रूप मे देखता है जबकि दूसरी सस्थाओ का दृष्टिकोण एकागी रहता है। इस बात पर अवश्य ही शका की जा सकती है, लेकिन यह निश्चित हे कि निकट अतीत की तुलना मे अब धर्म सरकार की तरह सारे जीवन पर प्रभाव डालता है या डालने की कोशिश करता है। यह बात सच है कि धर्म हमारी सभ्यता के उस तरह केन्द्र मे नही है जैसे कि इसके व्यावसायिक सेवक रखना चाहेगे, लेकिन यह व्यापक है और सभी वर्गो तक पहुँच रहा है तथा हमारी सभी रुचियो तथा कलाओ पर प्रभाव डाल रहा है।

नैतिक पुनर्निर्माण

व्यवहार मे धार्मिक चेतना

अमरीका की धार्मिक चेतना मे बुनियादी परिवर्तनो पर विचार करने से पहले आइए हम उन विधियो मे आये परिवर्तनो को देखे जिनके द्वारा धार्मिक सगठन अपनी नैतिक शक्ति का उपयोग करते है। सन् १९०० तक के पारम्परिक विधियो का आधार पादरियो तथा घर मे निकट सहयोग था। उनका मुख्य उद्देश्य बच्चे को "अच्छे और बुरे का ज्ञान" देना, धार्मिक विधि-निषेध के प्रति सवेग तथा ईश्वर के प्रति भय और प्रेम की भावना उत्पन्न करना था। ईश्वर मे तथा व्यक्ति की आत्मा के दिव्य नियम मे बच्चो का-सा विश्वास उत्पन्न करने की यह प्रक्रिया तभी सभव हो सकती थी जब घर मे आदतन धार्मिक रीति-रिवाजो का पालन किया जाता, पुरोहित द्वारा नियमित उपदेश दिये जाते, किसी धार्मिक समुदाय मे विधिवत् प्रवेश कराया जाता तथा समय-समय पर अपराध-स्वीकृति, धर्म-परिवर्तन पश्चाताप तथा दैवी करुणा का विश्वास दिलाने के द्वारा सदस्य की धार्मिक निष्ठा को उभारा जाता। धार्मिक चेतना को आकार देने के इस आम नमूने का सभी युगो और स्थानो के लोगो द्वारा अनुसरण किया गया है।

इस शताब्दी के प्रारम्भ मे यदि अमरीकी नमूने मे कोई खास बात थी तो यह कि उसमे धार्मिक शिक्षको द्वारा किशोरावस्था पर ध्यान केन्द्रित किया गया। धर्म-पालन किये जाने वाले विधि-विधानो की पहले से ही बहुत अधिक उपेक्षा होने लगी थी, बच्चो की धार्मिक शिक्षा दिनोदिन सक्षिप्त और बेकार सी होती जा रही थी, लेकिन प्रथम धार्मिक प्रवेश (कम्यूनियन) से लेकर प्रौढावस्था तक देश के युवको की बहुत ही गौर

सवेगी भावनाओ को उभारा जाता था। युवक सगठनो का पनपना आसान है क्योकि किशोर तो किसी भी चीज के लिए इकट्ठे हो ही जायँगे, और जब वे एक बार इकट्ठे हो जायँ तो फिर उन्हे किसी भी उद्देश्य के लिए लगाया जा सकता है, खास तौर से जबकि उनसे भक्ति, आत्म-त्याग, वफादारी और प्रेम के नाम पर अपील की जाय। सगठित धर्म की शक्तियो ने जब यह अनुभव किया कि बच्चो पर उनका नियत्रण शिथिल पडता जा रहा है तो उन्होने युवको को नियत्रित करने के अवसर का लाभ उठाने की पूरी कोशिश की। युवको के सभी तरह के समाज (जिनमे से कुछ का वर्णन पिछले अध्याय मे किया गया है) पनपने लगे। इन आम समाजो के अतिरिक्त कुछ विशेष दल भी थे जिनमे कि बहुत ही तीव्र धार्मिक अपील की जाती थी। विदेशी मिशनो के लिए तैयार किया जाने वाला विद्यार्थी स्वय सेवक दल इसी प्रकार का था।

इधर तो उदार तथा आधुनिक धार्मिक सगठनो मे पारम्परिक और रूढिवादी धार्मिक अनुशासन का स्थान 'धार्मिक शिक्षा' लेती जा रही थी और उधर धीरे-धीरे धार्मिक नैतिकता का मतलब भी धर्म-परिवर्तन के बजाय परिवर्तन के बाद प्रौढ व्यक्ति के धार्मिक जीवन से होता जा रहा था। इस तरह बीसवी शताब्दी मे धार्मिक सगठनो मे प्रौढो के ऐसे अनेक सगठन बने जो उनकी नैतिक तथा सामाजिक समस्याओ को सुलझाते थे। ये सगठन यद्यपि उनकी समस्याओ को धार्मिक दृष्टिकोण से देखते थे फिर भी धर्म-निरपेक्ष परोपकारी सगठनो के साथ उनका सहयोग रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मुख्य बल सही या गलत के भाव को उत्पन्न करने की धार्मिक समस्या से हटकर इस बात पर आ गया कि दैनिक व्यवहार के उन नैतिक मसलो को कैसे तय किया जाय जिनके बारे मे न केवल धर्मपतियो के अपितु विद्वानो के भी मतभेद थे। अब नैतिक उपदेशो का स्थान विचार-विनिमय ने ले लिया, धार्मिक आदेशो के स्थान-पर पैनी बहस होने लगी तथा धर्म-शास्त्रीय उपदेश के स्थान पर सामाजिक प्रचार होने लगा। सिद्धात रूप से तो कुछ अवश्य ही पारम्परिक तथा

आधुनिक हो सकते है और व्यवहार मे भी बच्चो तथा युवको पर पारम्परिक धार्मिक अनुशासन चलता ही है और धर्म-परिवर्तन भी कभी-कभी होते रहते है, लेकिन अब सगठित धर्म के वर्तमान उद्देश्य धर्म-निरपेक्ष शिक्षा और दुनियावी मामलो के अधिक पास आ गये है। नैतिक मसलो के बारे मे "ईश्वर की इच्छा का उपदेश देना' आज उतना आसान नही है जितना कि पचास साल पहले था। अब तो नैतिकता स्वय ही समस्या-मूलक हो गई है और 'टैन कमाडमेंट्स' तथा स्वर्णिम नियम पर न तो धर्म ही आश्रित रह सकता है और न नैतिक सिद्धात। चाहे यह युक्ति-सगत हो या नही, धार्मिक आचार-शास्त्र मे तर्क का स्थान अधिक होता जा रहा है। इस प्रकार विधि तथा वस्तु दोनो की ही धार्मिक चेतना मे क्रातिकारी परिवर्तन आ गया है जिसने कि इसे सामाजिक नैतिकता के मसलो के अधिक पास ला दिया है और आत्मा की मुक्ति का सबध समाज के मामलो से कर दिया है। आइए अब हम इस पुनर्निर्माण के मुख्य पहलुओ पर विचार करे। प्रारभ हम उनसे करेगे जिनका सबध पिछली शताब्दी की व्यक्तिवादी दया तथा परोपकारी भावना मे था।

धार्मिक सामाजिक सस्थाएं

मुक्ति-सेना (Salvation Army) अपने नाम और स्वरूप दोनो से ही हमे उन्नीसवी शताब्दी की देन है। बीसवी शताब्दी से दो दशक पहले यह अमरीका मे इगलैंड से आयी थी और पहले इसे 'बावेरी मिशन' का एक अग माना जाता था। उसका काम भूले-भटको की आत्माओ को जीतने से पहले उनके शरीरो को आश्रय देना था। यह अपने को एक धर्मोपदेशक सगठन मानती है।

मुक्ति-सेना का आध्यात्मिक उद्देश्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रारभ मे इसकी स्थापना सर्वसाधारण को धार्मिक प्रकाश देने के लिए हुई थी। अब भी इसका प्रारभिक और स्थायी उद्देश्य गीत, शब्द और कार्य के द्वारा धर्म-आस्था के पुनर्जीवन देने वाले सदेश को सामने रखना

है । सामाजिक सेवा का काम पूरक काम है ।

लेकिन अब यह एक बडी परोपकारी सस्था बन गई है । बीसियो तरह से यह समाज के काम आती है, जिसका सहारा इसे आर्थिक अथवा अन्य रूप मे मिलता रहता है । युद्ध के दिनो मे यह सिपाहियो और नागरिको दोनो के लिए एक बडी सेवा-सस्था थी । अब यह पुराने सामान के स्टोर, होटल, काम-दिलाऊ-दफ्तर, खेतो की बस्तियाँ, श्रमिको और बच्चो के लिये घर, दिवसकालीन शिशु केन्द्र लडको के क्लब, स्त्रियो की गृह-सभा, सैनिको के नागरिक जीवन मे फिर से स्थापित करने का कार्य, और गदी बस्तियो को सुधारने आदि का काम करती है । इस प्रकार यह सार्वजनिक अधिकारियो और निजी सामाजिक एजेसियो द्वारा किये जाने वाले सामाजिक कार्य की पूरक के तौर पर उपयोगी ढग से सहायता करती है । धर्मोपदेश की प्रेरणा से कही अधिक महत्त्वपूर्ण इसका व्यावहारिक सिद्धात है ।

वह सिद्धात इस प्रकार है, ईसाइयत और सेवा को पर्यायवाची माना जाता है । कोई व्यक्ति रविवार को धार्मिक सभा मे जा सकता है, लेकिन यदि वह औरो की या सारे सगठन की स्पष्ट सहायता के रूप मे अपने विश्वास का प्रदर्शन करने को तैयार नही है तो उसे एक अच्छा सिपाही नही माना जाता । इसलिए मुक्ति-सेना चाहती है कि लोग इसकी कल्याण-सेवा को भावना मे आकर भीख दे डालना न समझे, बल्कि इसे शान्तिमय प्यार या व्यवहार मे ईसाइयत माने । मुक्ति-सेना का उद्देश्य 'पूर्ण मनुष्य' को स्थायी रूप मे नवजीवन देना है ।

सिद्धात मे मुक्ति का इसका भाव धर्मोपदेश सबधी है, व्यवहार मे, यह पूरी तरह सामाजिक है, और 'सद्भाव उद्योग' के सामान्य सिद्धात पर काम करती है । मुक्ति-सेना की व्यावहारिक समझ की नकल पर चलते-से अमरीकी शहरो मे चर्चो ने सद्भाव उद्योग की शाखाएँ स्थापित की है । इनमे पुराने सामान के स्टोर चलाने के साथ-साथ गृह-सेवा भी शामिल होती है ।

वाई एम सी ए और वाई डब्ल्यू सी ए बीसवी सदी मे युवको के लिए धार्मिक क्लब के रूप को छोडकर सामान्य सामुदायिक सगठन बन गए है, और अब सभी आयु और सभी वर्गो की आवश्यकता को पूरा करते है। वे होटल, व्यायामशाला, प्रशिक्षण-कोर्स, व्याख्यान, सगीत-सभा, विचार-गोष्ठी और ग्रीष्मकालीन शिविर चलाते है। विदेशी मिशनो के कार्य-क्षेत्र, कालेज तथा सेना के स्थानो मे इनका शक्तिशाली सगठन है। वे जहाँ कही भी काम करते है अपने साथ धार्मिक सेवा अवश्य उनके साथ रहती है। लेकिन आम तौर से उनकी धर्म-निरपेक्ष सेवाओ के मुका-बले मे यह कम ही दिखाई पडती है। और ज्यादा ध्यान देने लायक बात यह है कि इन दोनो प्रकार की सेवाओ मे अधिक अतर करने पर वे बुरा मानते है। यहूदी सामुदायिक केन्द्रो के रूप मे वाई एम एच ए और वाई डब्ल्यू एच ए की वृद्धि की कहानी भी कुछ इसी प्रकार की है। कैथोलिक युवक-सगठन अनेक प्रकार की गति-विधियो और सेवाओ का आयोजन करते है जो कि केवल इस रूप मे अप्रत्यक्ष तौर पर धार्मिक मानी जा सकती है कि वे चर्च के कार्य को अधिक विस्तृत बनाती है।

अभियानो की एक शृंखला

नशा-निषेध के लिए चलाये गए हाल के धार्मिक आदोलनो के नाट-कीय परिणामो से हरेक परिचित है। कम-से-कम आधी शताब्दी तक 'दि नेशनल टेम्परेन्स सोसायटी', 'दि डब्ल्यू सी टी यू', 'दि एंटि सैलून लीग' और 'दि प्रोहिबिशन पार्टी" ने जिनमे से सभी धार्मिक सस्थाओ द्वारा शुरू की गई थी, मदिरा-गृहो को बद करने के लिए अपना आदोलन जारी रखा। स्थानीय नशाबदी या फिर नगर और काउटी के चुनावो मे 'स्थानीय विकल्प' की वजह से इसे सफलता भी मिली। चर्चों के अन्दर नशा-निषेध के लिए चलाये गए सतत आदोलन और कभी-कभी मदिरा-गृहो के विरुद्ध प्रदर्शन किये जाने के कारण ही यह सफलता सभव हो सकी थी। [illegible] के विरुद्ध अभियान, जो [illegible] पहले

से चला आ रहा था, बीसवी सदी के नशाबंदी कानून के साथ एक करके माना जाने लगा। १९०७ और १९१७ के बीच नशाबंदी के पक्ष की भावना और मत देने के अधिकार ने यह सभव बना दिया कि राज्य भी नशाबंदी की ओर कदम उठा सके। परिणामत इस दशक मे लगभग तीन चौथाई राज्यो मे नशाबंदी लागू हो गई। दक्षिण और पश्चिम मे यह आदोलन सबसे प्रबल था। राज्यो की इस ओर प्रवृत्ति और युद्ध की आपत्कालीन दशा का लाभ उठाकर, चर्चा-गोष्ठियो के रूप मे काम करती हुई नशाबंदी की शक्तियो ने १९१७ मे सघीय सविधान मे अठारहवाँ सशोधन पास करवा ही दिया जो १९३३ मे ही जाकर हटाया जा सका। १९१७ मे नशबंदी की विजय, और विशेषकर १९३३ मे इसकी पराजय ने सभी नैतिक समस्याओ के प्रति जिनमे नशाबंदी भी शामिल है धर्म के दृष्टिकोण मे बहुत गभीर परिवर्तन कर दिए है। पहली बात तो यह है कि वे धार्मिक संस्थाएँ और समुदाय जो पूरी तरह नशाबंदी का समर्थन करते थे अब इस बारे मे अलग-अलग राय रखते है। दूसरे, नैतिक कानून बनाने की प्रभावशालिता और अनिवार्य नशाबंदी के नैतिक मूल्य मे जो विश्वास पहले था, इस अनुभव से वह अब हट गया है। तीसरे नशाबंदी की समस्या, जो पहले सबसे अलग थी, इसके द्वारा अब दूसरे नैतिक आदर्शों विशेषकर स्वतत्रता, शिक्षा, उत्तरदायित्व, समग्रता और कानून के प्रति सम्मान के साथ जोड दी गई है। इसका नतीजा यह हुआ है कि अब न केवल नशा-निषेध के बारे मे अपितु आम तौर पर सभी सद्गुणो के बारे मे एक यथार्थवादी और आपेक्षिक दृष्टिकोण से काम लिया जाता है। जो यह पहले सभव नही था क्योकि धर्म नैतिकता के बारे मे कोई समझौता करने को तैयार नही था। निरपेक्षवाद की पहली मनोवृत्ति, जिसे अब आम तौर पर 'आदर्शवाद' कहा जाता है और जिसमे इस विश्वास का व्यवहार-पक्ष आता था कि भलाई और बुराई की शक्तियो के बीच सघर्ष का नाम ही नैतिकता है, अब समाप्त होती जा रही है। इसका स्थान धीरे-धीरे यह धारणा लेती जा रही है कि विभिन्न नैतिक सम-

स्याओं को व्यावहारिक ढंग से सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए, न कि आक्रामक ढंग से। बहुत से धार्मिक व्यक्ति तो अब भी नैतिक मूल्यों के संघर्ष संबंधी सिद्धांतों में विश्वास छोड़ने को तैयार नहीं होंगे, और न समझौते के आचार शास्त्र को मानेंगे, लेकिन व्यवहार में निंदा के बजाय उनका अधिक ध्यान 'युद्ध-नीति' पर रहता है। धर्म-निरपेक्ष नैतिकवादियों की तरह बहुत से धार्मिक व्यक्ति भी कानूनन नशाबंदी का विरोध करने वाले लोगों के इस तर्क से सहमत हो गये थे कि मदिरालयों को शराब बेचनेवाली दूकानों के रूप में बदलकर लोगों की शराब पीने की आदत छुड़ायी जा सकेगी, या फिर शराब पर टैक्स लगाने से वे लोग रुक जायेंगे जो नशाबंदी कानून से नहीं रुक पाए थे। इस प्रकार वे इस संशोधन के हटाये जाने को एक अस्थायी हार न मानकर नशा-निषेध के आंदोलन के एक बिलकुल नये प्रकार की शुरुआत मानने को तैयार हो गये थे। धार्मिक जनसाधारण का एक बड़ा अल्पमत अब नशा-निषेध के बारे में अरस्तू की तरह यह मानने को तैयार है कि हमें पियक्कड़ तो नहीं बन जाना चाहिए, पर साथ ही अच्छी तरह खाने-पीने में कोई नुकसान भी नहीं है। लेकिन बहुमत की धारणा अब भी यही है कि न केवल शराब पीने की आदत अपितु शराब को ही पूरी तरह खत्म कर देने से ही नैतिक आदर्श की प्राप्ति हो सकेगी। इस बीच बहुत से धार्मिक नेता 'अल्कोहलिक्स एनोनिमस' जैसे दलों के अर्ध-धार्मिक तरीकों का भी अध्ययन कर रहे हैं और धार्मिक संगतियों को अधिक आकर्षक बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ भी हो, राष्ट्रीय नशाबंदी की असफलता ने धार्मिक नेताओं को बाध्य कर दिया है कि वे मर्यादा लाने के और अधिक मर्यादित उपायों पर विचार करें।

विश्वशांति स्थापित करने के प्रयत्नों के परिणाम से भी कुछ ऐसा ही निष्कर्ष निकलता है हालांकि वह पेचीदा कुछ ज्यादा है। युद्ध-निरोध के प्रयत्न तो बहुत पुराने हैं और उन्होंने इस शताब्दी में भी महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया है। इनमें से एक है हिंसा के कार्यों का जनसाधारण की आवाज

पर विरोध और दूसरा है शांतिपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को बढ़ावा देने के लिए बनायी गई विभिन्न चर्चों की सभाएँ। पिछले दो दशकों तक, अंतरात्मा की आवाज पर विरोध करने वाले आमतौर उन धार्मिक संस्थाओं तक सीमित थे जिन्होंने शस्त्र न धारण करने का व्रत अपने धार्मिक कर्त्तव्य का अभिन्न अंग बना लिया है। अमरीका में इनमें से कुछ प्रमुख संस्थाएँ निम्नलिखित हैं 'दि सोसायटी ऑफ फ्रेंड्स', 'दि मोरेवियंस', 'दि मैननाइट्स' 'दि डूकर्स एंड ब्वैक फेल्डर्स', 'जेहोवाज विटनेसिज (रसैलाइट मिल्लिएनियलिस्ट्स)'। महात्मा गांधी के व्यक्तिगत प्रभाव के साथ वेदांत मिशन ने भी अहिंसा और आत्मिक शक्ति में विश्वास दृढ़ किया है, हालाँकि यह कुछ अजीब बात है कि थियोसोफिस्ट लोगों में ऐसा नहीं हुआ।

प्रथम महायुद्ध में अंतरात्मा की आवाज पर विरोध करने वाले इन लोगों को कुछ कानूनी संरक्षण दिया गया, लेकिन जब यह पता चला कि इनमें से कुछ संस्थाओं के अधिकांश सदस्य जर्मन हैं तो लोग इनके खिलाफ भड़क उठे। अंतरात्मा की आवाज पर विरोध करने वाले ऐसे लोगों पर तो कोई ध्यान ही नहीं दिया गया जो किसी संगठन के सदस्य नहीं थे, किन्तु अपने व्यक्तिगत धार्मिक विश्वासों के आधार पर युद्ध का विरोध कर रहे थे। लेकिन युद्ध के बाद, विशेषकर जब इस बात का खूब प्रचार किया गया कि किस प्रकार शस्त्र-निर्माताओं के गुट युद्ध करवाना चाहते हैं, तो धार्मिक शांतिवाद का व्यापक प्रसार हुआ। परिणामस्वरूप सभी चर्चों में अंतरात्मा की आवाज पर विरोध करने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत बढ़ गई। बहुत-सी अग्रणी चर्च-संस्थाओं ने आम तौर से युद्ध को एक पाप बताकर उसकी निंदा की। जब अमरीका द्वितीय महायुद्ध में शामिल हुआ तो सरकार को अंतरात्मा की आवाज पर विरोध करने वालों के साथ कहीं ज्यादा उदार बर्ताव करना पड़ा। १९४० के 'सेलेक्टिव सर्विस एक्ट' में चर्च की सदस्यता का आवश्यक होना हटा दिया गया और 'धार्मिक शिक्षा और विश्वास के कारण' "किसी भी रूप में

युद्ध मे भाग लेने" का विरोध करने वाले व्यक्तियो का भी सम्मान किया जाने लगा। नागरिक सार्वजनिक सेवा-शिविरो के सात हजार शान्तिवादियो मे से दो-तिहाई का ही ऐतिहासिक 'शाति चर्चो' मे सबध था। वास्तव मे मध्य पश्चिम मे क्वेकर लोगो की सख्या मे कमी होने का एक बडा कारण यह भी था कि मेथोडिस्ट और प्रोटेस्टेट चर्चों मे भी अब शातिवाद का प्रचार होता जा रहा था। नागरिक शिविरो मे ८ प्रतिशत मेथोडिस्ट थे, ३ प्रतिशत जेहोवाज विटनेस, और ६ प्रतिशत अन्य किन्ही चर्चों से सबध रखने वाले थे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि क्वेकर लोग युद्ध के प्रयत्नो मे अपेक्षाकृत सहयोग करने को तैयार थे। उनमे से ज्यादातर नागरिक सेवाओ मे काम करना चाहते थे लेकिन कुछ शस्त्र उठाने को भी तैयार थे। पर सबसे अधिक प्रभावशाली थे कुछ पादरी, जिन्होने सोच लिया था कि वे कभी युद्ध को 'आशीर्वाद' नही देगे, और जो सघर्ष के अत तक अपनी स्थिति पर कायम रहे।

अमरीकी प्रोटेस्टेटो की एक पूरी पीढी के लिए युद्ध पापपूर्ण है या नही, यह बात एक व्यक्तिगत नैतिक समस्या बन गई। कैथोलिक और यहूदियो के लिए तो इसमे नैतिक सघर्ष की कोई बात थी ही नही, क्योकि उनमे से बहुत ही कम लोग शातिवादी थे। अमरीकी कैथोलिक नेताओ ने युद्ध के प्रयत्नो का यहाँ तक कि स्पेनिश-अमेरिकन युद्ध मे भी साथ दिया है। अमरीकी यहूदी पहले महायुद्ध मे ऐसे अमरीकी नागरिको के तौर पर लडे जिनके लिए प्रजातत्र एक धार्मिक परम्परा था, और दूसरे महायुद्ध मे वे अमरीकी और यहूदियो के तौर पर लडे जिनके लिए हिटलर के आतक समाप्त करना एक विशेष कर्त्तव्य था। उन प्रोटेस्टेट अन्तरात्माओ मे जिन्होने एक ईसाई शातिपूर्ण निरपेक्षवाद का समन्वय प्रजातत्रीय नागरिक नैतिकता से करने का प्रयत्न किया है एक तीव्र नैतिक सघर्ष बढता हुआ दिखाई दे रहा है। प्रथम महायुद्ध मे बहुत-से पादरियो ने अपने प्रेस्बिटेरियन प्रेजिडेट वुडरो विल्सन के अनुसार "ससार को प्रजातत्र के लिए सुरक्षित बनाने" के उस प्रयत्न को एक पवित्र कार्य और

नैतिक अभियान माना था, लेकिन उस सघर्ष मे सफलता न मिलने से प्रोटेस्टेट लोगो मे बहुत अपमान और पश्चात्ताप की भावना फैली। 'युद्धतत्र' के विरुद्ध इस वैमनस्य की पराकाष्ठा १९३० मे आयी जब एक अतर्राष्ट्रीय शस्त्रास्त्र गिरोह के भडाफोड होने का सीधा परिणाम यह हुआ कि अमरीकी मध्यस्थता के लिए विधान नियम बनाना पडा। अब तो वे लोग युद्ध को कभी भी पवित्र नही मानेगे। लेकिन तो भी द्वितीय महा-युद्ध को अधिकाश प्रोटेस्टेट लोगो ने (थोडे सघर्ष के बाद) एक पवित्र कर्त्तव्य मान ही लिया। १९४१ के ग्रीष्मकाल मे न्यूयार्क के एग्लो कैथो-लिक बिशप मैनिग ने बडी गभीरता से कहा, "एक अमरीकी, एक ईसाई और एक ईसाई चर्च के बिशप की हैसियत से बोलते हुए, मै कहता हूँ कि एक जाति के तौर पर इस सघर्ष मे भाग लेना हमारा कर्त्तव्य है।" लेकिन तब बहुत ही कम लोग उससे सहमत होने को तैयार थे। ऐपिस्कोपै-लियन लोगो को भी ऐसा कथन धक्का पहुँचाने वाला था, और बहुत से प्रोटेस्टेट लोगो ने तो इसे धर्म-निदक बात माना। पर साल-दो-साल बाद ही अधिकाश उसके साथ सहमत हो गए। केवल कुछ ने ही आतरिक सघर्ष जारी रखा जिनमे से एक 'क्रिश्चियन सेन्चरी' का शातिवादी सम्पादक क्लेटन डब्ल्यू मॉरिसन भी था। पर्लहार्बर के बाद उसने लिखा "हमारा देश युद्ध मे लगा है। इसका जीवन दाँव पर है। यह हमारी आवश्यकता है एक अनावश्यक आवश्यकता, इसलिए एक अपराध-पूर्ण आवश्यकता। हमारा सघर्ष, यद्यपि आवश्यक है, पवित्र नही है। ईश्वर हमे लडने का आदेश नही देता। उसके द्वारा दिया जाने वाला दड हमने अपने ही हाथो लिखा है, और वह यह है कि हम अपने भाइयो को काटे और उनसे काटे जायँ। हमारा विश्वास है कि यह दड बिल्कुल नरक के समान है।" पर बहुमत तो ज्यादा आत्म-तुष्टि से 'लिविग चर्च' के सम्पादक के साथ यह प्रार्थना कर रहा था, 'हम सदा यही चाहे कि ईश्वर हमारे पक्ष मे न हो, अपितु हम ईश्वर के पक्ष मे हो, ताकि अन्त मे विजय उसी की हो।" यह प्रार्थना ईसाइयो के बीच पारम्परिक है। लेकिन

इस पर धर्म-निरपेक्ष आचार-शास्त्री केवल मुस्कराकर ही रह जायेंगे।

जहाँ तक शांति स्थापित करने के लिए सगठित योजना बनाने का प्रश्न है, उन्नीसवीं सदी मे इस काम मे पहल सगठित धर्म-सस्थाओं के बजाय धर्म-निरपेक्ष मानवतावादियो ने ही की। कुछ प्रोटेस्टेंट लोगो ने भी, जिनमे से ज्यादातर वामपक्षी थे, इनके साथ सहयोग किया। लेकिन बीसवीं सदी मे शांति-सभाओ मे और 'न्यायपूर्ण तथा स्थायी' आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते कराने मे चर्च ज्यादा और ज्यादा रुचि लेने लगे। उन्होने 'लीग ऑफ नेशन्स' का उत्साह से साथ दिया, और १९४२ मे ओहियो मे उन्होने 'न्यायपूर्ण तथा स्थायी शांति के आधार' पर एक प्रभावशाली वक्तव्य तैयार किया, जो वास्तव मे सयुक्तराष्ट्र सघ की स्थापना के लिए एक कदम था। 'मनुष्य के अधिकारो की घोषणा' को बढ़ावा देने मे कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट लोगो ने यहूदियो का साथ दिया है। आम तौर पर इस देश की धार्मिक शक्तियाँ राजनीति और युद्ध और शांति की समस्या मे अधिकाधिक रुचि ले रही है, शांति तथा युद्ध के साधनो के लिए भी वे यथार्थवादी योजनाएँ बनाने मे धर्म-निरपेक्ष सस्थाओ के साथ सहयोग कर रही है, चाहे धर्म-शास्त्र की दृष्टि से वे इन व्यावहारिक नीतियो के साथ मेल बैठा पाये या नहीं।

जहाँ प्रोटेस्टेंटो का ध्यान तो नशाबंदी और शांति की नैतिक समस्या पर रहा है, उधर कैथोलिको का ध्यान सेक्स की नैतिकता, 'सार्वजनिक मर्यादा' और 'परिवार की सुरक्षा' पर रहा है। सार्वजनिक मर्यादा आंदोलन थियेटर तथा सिनेमा पर निगाह रखता है। इसी आंदोलन के परिणामस्वरूप १९३४ मे 'नेशनल लीजन आफ डिसेंसी' की स्थापना हुई। स्थानीय राजनैतिक दबाव तथा हॉलीवुड के स्वामी सेन्सरशिप द्वारा कैथोलिक चर्च स्टेज और पर्दे पर सही अश्लीलता तो रुकवा ही देता है, साथ-ही-साथ, जहा तक हो सके, ऐसे चर्च-विरोधी नाटक आदि भी नहीं होने देता जिनसे लोगो की धार्मिक भावनाओं को ठेस लग सकती हो। उदाहरण के लिए न केवल स्टेज और सिनेमा मे बल्कि साहित्य

और पत्रकारिता मे भी धर्म-निंदा को बुरा माना जाता है। यहाँ तक कि दार्शनिक नास्तिकता और राजनैतिक नास्तिकता की भी निंदा इस आधार पर की जाती है कि धर्म को सार्वजनिक सुरक्षा मिलनी चाहिए। उनकी दृष्टि से धर्म-निरपेक्षवाद अनैतिक तथा अधार्मिक है। अधिकांश ईसाइयों और यहूदियों का यह विश्वास है कि नैतिकता को धार्मिक समर्थन की आवश्यकता है, यद्यपि कुछ यहूदी और मानवतावादी ऐसा नही मानते। ऐसे ही आधार पर कैथोलिक अधिकारी सार्वजनिक पुस्तकालयों और स्कूलो से कैथोलिक विरोधी पुस्तकें हटवाने का औचित्य सिद्ध करते हैं। उनमे से कुछ कम-से-कम सिद्धांत रूप मे, 'झूठे' धर्म के सेंसर किये जाने को सार्वजनिक सेवा मानेंगे वैसे ही जैसे कि कुछ प्रोटेस्टेंट मानते है कि कैथोलिक चर्च एक सार्वजनिक खतरा है। दूसरी ओर यहूदी धर्म-निरपेक्ष या सार्वजनिक रूप से शामीवाद (सेमिटिज्म) के विरोध को धार्मिक रूप से सताना मानकर उसकी निंदा करते है। लेकिन आमतौर पर छोटे धर्म जब एक-दूसरे को बुरा-भला कहते है तो ऐसा वे धार्मिक आधार पर ही करते है न कि सार्वजनिक मर्यादा के। उदाहरण के लिए, 'दि पब्लिकेशन कमिटी आफ क्रिश्चियन साइंस' जो इस प्रकार के साहित्य पर सतर्क निगाह रखती है तथा निजी रूप मे सेंसर भी करती है, इस बात को खुले तौर पर मानती है कि ऐसा वह 'क्रिश्चियन साइंस' के गलत ढंग से पेश किये जाने को रोकने के लिए करती है। लेकिन कोई विश्वास जितना शक्तिशाली होता जाता है उतना ही वह अपने आपको सार्वजनिक कल्याण के साथ एक समझने लगता है। इसलिए बड़े-बड़े ईसाई चर्च एक गंभीर और कठिन नैतिक स्थिति मे है। स्पष्ट ही वे सामाजिक सेवा के बहुत से काम कर रहे है और उन्हे आम जनता का समर्थन भी प्राप्त है, इसलिए स्वभावत वे समझने लगते है कि वे अनिवार्य है। और क्योंकि उन्हे कोई व्यक्तिगत हित के लिए बदनामी नहीं सकता नहीं कर सकता, वे अपने कल्याण और सार्वजनिक व्यवस्था तथा शांति को एक समझने लगते है। यह एक सार्वभौम कमजोरी है और

केवल अति प्राकृतिक कृपा से ही दूर की जा सकती है। लेकिन इसने यह आवश्यक कर दिया है कि सम्सामयिक नैतिकता के लिए धार्मिक विश्वास और सार्वजनिक सुरुचि के पारस्परिक सबध को ज्यादा स्पष्ट तौर से समझा जाय। न तो कट्टर एकीकरण और न ही कट्टर अलगाव पर आज उतना विश्वास होता है जितना पहले हुआ करता था।

इसी प्रकार सेक्सीय नैतिकता, सतति नियमन, और तलाक के मामलो ने यह सवाल उठा दिया है कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की चिकित्सा सबधी समस्याओ और परम्परागत रूप से धर्म से सबद्ध नैतिक समस्याओ मे क्या सबध होना चाहिए। कैथोलिक स्थिति तो इस बारे मे कट्टर है और स्पष्ट है किसी भी नैतिक ममले के हल के लिए धार्मिक स्वीकृति की आवश्यकता है। क्योकि चर्च अधिकृतरूप से यह मानता है कि आवेग (विशेषकर विलास), विवाह और सतति-उत्पादन की समस्याएँ नैतिक समस्याएँ है, इसलिए यह समय-समय पर 'अन्तरात्मा के मामलो' के मार्ग-दर्शन के लिए अधिकृत घोषणाएँ करता रहता है। १९५१ मे जब पोप ने कुछ चिकित्सा सबधी निर्णयो, विशेषकर शिशु जन्म के कुछ कठिन मामलो के बारे मे घोषणा की तो उन पर अमरीका मे व्यापक विचार-विनिमय और टीका-टिप्पणी हुई।

१९४३ मे कैथोलिक लोगो ने फ्रास के अनुकरण पर 'कैना कान्फेस मूवमेंट' नामक आदोलन चलाया जिसमे नव विवाहित दम्पतियो के साथ विवाह और पितृत्व की समस्याओ पर विचार-विनिमय करने के लिए सम्मेलन आयोजित की जाती थी। उन दम्पतियो को दी जाने वाली सलाह का सार औपचारिक रूप से इस प्रकार बताया गया है "हमारे आदोलन की सरक्षिका 'वर्जिन मेरी' ने कैना के विवाह के अवसर पर कहा था 'वह करो जो ईश्वर तुम्हे करने के लिए कहे', इसी के अनुसार यह आदोलन विवाहित व्यक्तियो के सामने सृष्टि के रचयिता का यह भाव रखता है कि उसने पुरुष और स्त्री का निर्माण करके वृद्धि करने के लिए कहा है।"

रूढिवादी यहूदी धर्म और फडामेटलिस्ट ईसाइयत मे नैतिक अधिकार का भाव इतना स्पष्ट नही किया गया है। उदारवादी प्रोटेस्टेटो और यहूदियो को लचकीलेपन के लाभ तथा हानिया दोनो ही प्राप्त है। कही तो वे समझदारी के विचार से रूढिवादी बन जाते है, और जब वे जनसाधारण को बुद्धिमानी से कोई रास्ता दिखाना चाहते है तो उनके पादरी दूसरे व्यावसायिक सलाहकारो की राय मानने लगते है। इसके अनुसार चिकित्सा-व्यवसाय के लोग जिसे समझदारी की बात मानते है उसे ये पादरी 'सही और नैतिक' मानकर आशीर्वाद देते है। इन प्रोटेस्टेट और उदार धार्मिक क्षेत्रो मे चिकित्सक की नैतिक सलाह और धार्मिक नैतिक नुस्खे के बीच अपेक्षाकृत कम सघर्ष हुआ है, जबकि मानवतावादियो और सुधारवादी यहूदियो की आचरण सबधी सास्कृतिक सभाओ मे यह प्रयत्न रहा है कि वे चिकित्सा-व्यवसाय के साथ-साथ चल सके।

इन सब परिवर्तनो का परिणाम यह निकला है कि चिकित्सा-व्यवसाय, विशेषकर मनोविश्लेषक, और पादरियो के व्यवसाय अपनी सामान्य समस्याओ के कारण पास-पास आ गये है। चिकित्सा-व्यवसाय के लोग अब नैतिक मूल्यो के बारे मे विचार-विनिमय करने को और विशेष धार्मिक अनुशासनो के चिकित्सा सबधी मूल्य को स्वीकार करने के लिए अधिक उत्सुक है। दूसरी ओर पादरी भी धर्म-निरपेक्ष मनोविश्लेषण के तत्वो को समझने और उसके ज्ञान का उपयोग खुले या छिपे तौर पर, अपने पास आये व्यक्तियो को सलाह देने मे करने के लिए अधिक उत्सुक है। नैतिक समस्याओ के ये दोनो दृष्टिकोण अब पास-पास आ गए है और अब धीरे-धीरे, चाहे अस्पष्ट रूप से ही सही, यह माना जाने लगा है कि पाप और भ्रान्ति की यदि सभी नही तो अधिकाश समस्याएँ स्वास्थ्य की समस्याएँ भी है। 'मुक्ति' का भाव भी अब उतना ही अस्पष्ट हो गया है जितना कि 'मानसिक स्वास्थ्य' या 'सामाजिक स्वास्थ्य' का, और आज ये सभी शब्द नैतिक मूल्यो और आचार-शास्त्र के साथ इतने निकट रूप से जुड़े

हुए है जितना कि पादरी लोग या मनोविश्लेषक भूतकाल मे मानने को तैयार नही थे ।

बडी नैतिक समस्याओ मे से जिसे अभी हाल मे धार्मिक समुदायो मे गभीरता से लिया गया है वह है अतर्जातीय सबधो की समस्या, और खासकर नीग्रो चर्च और चर्चो मे आने वाले नीग्रो लोगो की समस्या । १९२० मे फेडरल कौसिल ने नीग्रो लोगो के लिए 'कानूनी न्याय' और 'क्रियात्मक भ्रातृत्व' के कार्यक्रम का प्रस्ताव किया था, इसने जातीय उच्चता के विचार को बुरा बताया, और धीरे-धीरे अपने कार्यक्रम मे 'लिंचिग' और जातियो मे विभेद करने के विरुद्ध कानून बनवाना भी शामिल कर लिया ।

बडे प्रोटेस्टेट सम्प्रदायो (विशेषकर मेथडिस्ट और बैप्टिस्ट) के लिए जो कि उत्तरी तथा दक्षिणी शाखाओ मे अधिक निकट के सबध बनाना चाहते थे जाति की समस्या बहुत परेशानी मे डालने वाली थी, और रोमन कैथोलिक भी इस समस्या का जल्दी ही सामना नही कर पाये थे । लेकिन जल्दी या देर से सभी धार्मिक सस्थाओ को इसका सामना करना ही पडा । १९३४ मे न्यूयार्क शहर मे इस स्थिति का सामना करने के लिए 'दि कैथोलिक इटररेशल कौसिल' और 'सेटर ऑफ न्यूयार्क' की स्थापना हुई । अपने प्रकाशन 'दी इटररेशल रिव्यू' के द्वारा इसका प्रभाव काफी व्यापक हुआ है । प्रोटेस्टेंट लोगो ने वर्ण-भेद हटाने मे प्रयोग के तौर पर अनेक 'अतर्जातीय धार्मिक भ्रातृमडलो' की स्थापना की है । नीग्रो लोगो की दशा मे जाति-समस्या भिन्न है, और यह जातीय पक्षपात की समस्या से ज्यादा पेचीदा है, क्योकि एक शताब्दी के दौरान मे नीग्रो चर्चो ने अपने ही प्रकार की पूजा और आत्मिकता का इतना विकास कर लिया है कि उन्हे अपनी धार्मिक सेवा पर गर्व तथा सतोष का अनुभव होता है, और अब आम तौर पर यह माना जाता है कि उन्होने समाज के आध्यात्मिक जीवन मे और खास कर अमरीकी सस्कृति मे अपना योग-दान दिया है । इसलिए यह बात महत्त्व की है कि जाति-विभेद खत्म करने

के जल्दबाजी के तरीको द्वारा इस सच्चे रचनात्मक काम को नुकसान न पहुँचाया जाय। कृत्रिम विभेद और कृत्रिम एकता दोनो से ही बचना चाहिए। तो भी यह सभव है, जैसा कि हाल के प्रयोगो और प्रवृत्तियो से पता चलता है, कि नीग्रो चर्चो के धार्मिक मूल्य को कम किये बिना अन्तर्जातीय सामाजिक बधनो को तोडा जा सके। इस सबध मे हमारा ध्यान जातिभेद पर काबू पाने के लिए उत्तर और दक्षिण मे युवको द्वारा दिये गए नेतृत्व की ओर जाता है। मनोवृत्ति मे क्रातिकारी-सा परिवर्तन आ गया है, लेकिन यह कहना कठिन है कि इसमे से कितना धार्मिक प्रेरणा के कारण है। तो भी यह निश्चित है कि धार्मिक युवक सगठनो ने ठोस काम किया है। पूर्वीय जातियो के साथ सबधो का धार्मिक पहलू भिन्न प्रकार का है और पूर्व के साथ अतर्धार्मिक भ्रातृत्व स्थापित करने मे विशेष प्रगति नही हुई है। तो भी दूसरे महायुद्ध के दौरान मे और उसके बाद विस्थापित जापानियो की चर्चो ने जिस ढग से हिफाजत तथा परवाह की है उसके लिए उन्हे श्रेय दिया ही जाना चाहिए।

सामाजिक सदेश

अमरीकी धर्म मे सबसे अधिक दूर व्यापी और प्रकट रूप से स्थायी नैतिक पुर्ननिर्माण तथा कथित 'सामाजिक सदेश' के रूप मे हुआ है। कैथोलिकवाद, यहूदी धर्म और प्रोटेस्टेटवाद के प्रभावशाली वर्गो तथा चर्चो मे इसका बहुत असर है। यह सामाजिक आचार-शास्त्र के आधार पर धर्म के पुर्ननिर्माण करने की प्रक्रिया की चरम परिणति का प्रतिनिधित्व करता है जिसका दिग्दर्शन हम करते रहे है और जिसे पूरे औचित्य के साथ 'आज की धार्मिक क्राति' कहा जा सकता है। इसका मुख्य भाव यह है कि मनुष्य जाति का सामूहिक रूप से उद्धार या मोक्ष और सामाजिक व्यवस्था का पुर्ननिर्माण धर्म का अतिम लक्ष्य है। इस सदेश के, जो कि यूटोपियन समाजवाद जितना ही पुराना है, वर्तमान उग्र रूप का प्रचार अमरीका मे उन्नीसवी शताब्दी मे हो चुका है। इसने धर्मशास्त्र की दृष्टि

से सब से अधिक उग्र शायद बड़े हेनरी जेम्स का सिद्धांत था, जो कहता था कि जैसे आदम मे व्यक्तिगत रूप मे सारे मनुष्यो का ईश्वर से पतन हुआ है, इसी प्रकार दिव्य मानवजाति मे सब मनुष्यो का उद्धार सामूहिक रूप से होगा।

इस शताब्दी के पहले चौथाई भाग मे इस सामाजिक सदेश का शिक्षण और प्रचार चर्चों और शिक्षालयो मे अल्प मत के द्वारा ही किया जाता था, और जन साधारण के बजाय पादरी लोग इसमे कही अधिक उत्साह दिखाते थे। और हालाँकि इस शताब्दी के पहले दशक मे सामाजिक सेवा के लिए केन्द्रीय मडल स्थापित करने मे एक चर्च की दूसरे चर्च के साथ प्रतिस्पर्धा होती थी, इन मडलो की गति-विधियो और घोषणाओ के प्रति स्थानीय चर्चो और पादरियो के बहुमत ने कोई ज्यादा उत्सुकता नही दिखायी। यद्यपि यूरोपियन कैथोलिको के बीच पोपओ का एक सामाजिक सदेश लम्बे समय से सामाजिक कार्य का आधार रहा था, अमरीकी पादरियो ने इस पर तब तक कोई ध्यान नही दिया जब तक कि अमरीकी बिशपो ने १९१९ मे ऐसा करने के लिए नही कहा, और तब भी दस साल बाद तक इसके बारे मे कोई प्रतिक्रिया नही हुई।

'मुक्ति' के व्यक्तिवादी और पारलौकिक विचार पर पहली चोट वैयक्तिक सद्भाव को अपील करने के द्वारा तथा अपनी ही मुक्ति के बारे मे चिन्ता करने को आध्यात्मिक स्वार्थ बताने के द्वारा की गई। बीसवी सदी के प्रारभिक भाग के स्वभाव की यह विशेषता थी कि उसमे अपने बजाय औरों की अधिक चिन्ता की जाती थी। इसलिए आम तौर से यह माना जाने लगा कि भलाई करना ही ईश्वर को प्यार करने का रास्ता है। वाई० एम० सी० ए०, वाई०, डब्ल्यू० सी० ए० तथा अन्य युवक सगठनों के केन्द्र मे यही सिद्धात काम कर रहा था। व्यक्तिवाद के गढ़ प्रिंसटन प्रेस्बिटेरियन्स के बीच भी नैतिक वातावरण मे परिवर्तन दिखाई देने लगा था। उदाहरण के लिए १९०९ मे धर्म-शास्त्र के विद्यार्थियो के सामने एक प्रभावशाली साधारण व्यक्ति की तरह बातें करते हुए

वुड रो विल्सन ने कहा था .

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मुझे तो व्यक्तिवाद के सच्चे आधार के अलावा चर्च या समाज मे भविष्य की कोई उज्ज्वल झलक नहीं दिखाई देती। पादरी को चाहिए कि वह ईसाइयत का उपदेश मनुष्यों को करे न कि समाज को। उसे मुक्ति का उपदेश व्यक्ति को करना चाहिए क्योंकि हम एक-एक करके ही प्यार कर सकते है, और प्यार ही जीवन का नियम है।

लेकिन १९१४ मे अपनी राजनैतिक 'नयी स्वतत्रता' के साथ उसने एक सामाजिक सदेश को भी कुछ सावधानी से स्वीकार कर लिया। 'शक्तिशाली ईसाइयत' पर वाई० एम० सी० ए० के सामने बोलते हुए उसने कहा

जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं ईसाइयत के बारे मे इस रूप मे नहीं सोचता कि वह वैयक्तिक आत्माओ के उद्धार करने का साधन है। ईसा इस ससार मे औरो को बचाने के लिए आया था न कि अपने आप को, और कोई आदमी तब तक सच्चा ईसाई नहीं हो सकता जब तक कि वह लगातार यह न सोचे कि कैसे वह अपने भाई को ऊपर उठा सकता है, कैसे वह मनुष्यजाति को प्रकाश दे सकता है, कैसे वह उस क्षेत्र मे जिसमे कि वह रहता है पुण्य को सद्व्यवहार का नियम बना सकता है।

लेकिन जितनी कि विल्सन ने कल्पना भी नही की थी, ईसाई सामाजिक सदेश जल्दी ही उससे भी आगे चला गया। १९०७ मे प्रो० [illegible], रोचेस्टर [illegible], ने जो कि उस समय न्यूयार्क मे 'बैप्टिस्ट सेमिनरी ऑफ रोचेस्टर' मे और पहले न्यूयार्क शहर मे क्रियात्मक सामाजिक कार्य मे लगे रहे थे अपनी पुस्तक 'क्रिश्चियनिटी एंड दि सोशल [illegible]' प्रकाशित की। इस पुस्तक ने प्रोटेस्टेंट लोगों के बीच सदेश के सामाजिक रूप के प्रति धार्मिक कल्पना और साहस का उभार दिया। [illegible] [illegible] के वायदों को समाज की भाषा मे [illegible] [illegible] [illegible] पृथ्वी पर लाने का रूप देने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को एक नया और [illegible] स्वरूप प्रदान किया। [illegible]

सदेश ने शीघ्र ही सब जगह सुधार के लिए जोश पैदा कर दिया। प्रो० रोशेन बुश के समान ही अन्य प्रोटेस्टेट धार्मिक नेता भी हुए जिन्होने सामाजिक सदेश को अधिक यथार्थवादी तथा उग्र समाज-शास्त्री रूप दिया तथा इससे बूर्जुआ उदारवाद की झलक मिटाने की कोशिश की। ऐसे नेताओ के प्रयत्न से न केवल बडे चर्चो के केन्द्रीय प्रशासनिक बोर्ड तथा सस्थाएँ लेकिन छोटे बडे पादरी भी "सामाजिक व्यवस्था को ईसाइयत पर लाने' के काम मे सक्रिय रूप से लगा दिये गए।

१८८५ के 'पिट्सबर्ग प्लेटफार्म' मे सुधारवादी रब्बियो ने कुछ सकोच के साथ घोषणा की कि "हमारा कर्त्तव्य समाज के वर्तमान सगठन की विषमता और बुराइयो से उत्पन्न समस्याओ को न्याय और पवित्रता के आधार पर हल करने के महान कार्य मे भाग लेना है।"

लेकिन इसके बाद से तो अमरीकी यहूदी धर्म की तीनो शाखाओ ने सामाजिक न्याय के बारे मे जोरदार घोषणाएँ की है।

१९१९ मे कैथोलिक भी सामाजिक पुनर्निर्माण के काम मे पूरी तरह जुट गए। १९२० मे 'दि नेशनल कैथोलिक वेल्फेयर कान्फ्रेंस' का सगठन किया गया जो इस समय देश मे धार्मिक सामाजिक कार्य की सब से शक्तिशाली और केंद्रीय रूप से सगठित सस्था है। इसके आठ मुख्य विभाग हैं जो विभिन्न क्षेत्रो मे काम कर रहे है। औद्योगिक सम्बन्धो के क्षेत्र मे, जहा कि कैथोलिको की शक्ति विशेष रूप से रही है, कैथोलिक श्रमिक आदोलन १९३२ से चलता आ रहा है। यह 'दि कैथोलिक वर्कर' के नाम से एक पत्रिका भी निकालता है जिसकी ६५,००० प्रतियाँ छपती हैं।

१९४६ मे प्रोटेस्टेट, यहूदी और कैथोलिक सम्मिलित रूप से 'आर्थिक न्याय की घोषणा' करने मे सफल हो सके। इस घोषणा का प्रभाव इन दलो द्वारा उन्नीसवी सदी मे किये गए सभी कार्यों से ज्यादा हुआ। इसी बीच (डा० फैलिक्स एडलर की प्रेरणा से) न्यूयार्क तथा अन्य शहरो मे 'आचारिक सास्कृतिक सभाएं' बनने लगी जिनमे विभिन्न

धर्मों के या किसी भी धर्म को न मानने वाले ऐसे व्यक्ति एकत्र होने लगे जो धार्मिक तथा व्यावहारिक रूप से एक सामाजिक आचार को बढ़ावा देना चाहते थे। इन सभाओं ने उदार अमरीकी मतों में सामाजिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम के आगे धार्मिक मतभेदों को दबा देने की प्रवृत्ति को और उग्र रूप दिया। ईसाई समाजवादियों की तरह उन्होंने भी इस सिद्धांत पर ज़ोर दिया कि एक सामाजिक व्यवस्था के बारे में निर्णय किसी अवैयक्तिक परख की बजाय इस बात से करना चाहिए कि वह व्यवस्था कैसे मनुष्य पैदा करती है।

आर्थिक मसलों पर धार्मिक विचार और कार्य ने क्या रुख अपनाया है यह बताना आसान नहीं है क्योंकि इसमें उतनी ही विभिन्नता है जितनी धर्म-निरपेक्ष विचार और क्रिया में। फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि धर्म-निरपेक्ष अंतरात्मा का प्रतिबिंब चर्चों पर भी पड़ा है, यद्यपि इस बारे में न तो वे पूरी तरह नेता ही रहे हैं और न अनुयायी ही। चर्च समझने लगते हैं कि सामाजिक न्याय के मामलों में वे मनुष्यों के सामाजिक नेता हैं, जबकि चर्च विरोधी व्यक्ति सोचते हैं कि चर्च लाइलाज रूप से रूढ़िवादी हैं। चरम सीमा के इन दोनों ही सामान्यीकरणों में से कोई भी सही नहीं है। हालांकि सामाजिक सुधार के नेताओं के बीच कुछ पादरी या धर्म से प्रेरित व्यक्ति हमेशा रहे हैं, चर्चों का मुख्य कार्य सदा न सुधरे हुए लोगों के प्रवक्ता के रूप में रहा है। एक औसत अमरीकी के सही और गलत के भाव को यदि किसी ने धर्म-निरपेक्ष पत्रकारिता और थियेटर ने, सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसरों से और और राजनैतिक दलों के आंदोलनों से बढ़कर सवेगी शक्ति दी है तो वे धार्मिक संस्थाओं की वेदिका और प्रेस ही हैं। सुधार लाने में चाहे उनका ज्यादा हाथ न हो, लेकिन वे सुधार की आवश्यकता को बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से सामने रखते हैं।

सामाजिक संदेश के प्रारंभिक दिनों से पूंजीवाद और लाभ के लिए [illegible] उद्योग चलाने की प्रवृत्ति की निन्दा पर बल दिया जाता था।

उद्देश्य यह था कि अतर्वैयक्तिक सहयोग, मानवीय समान और भ्रातृत्व तथा पारस्परिक सेवा की भावना को अपील करने के द्वारा आर्थिक व्यवस्था को मानवीय बनाया जाय। लालच को एक बहुत बड़ी बुराई बताया गया। मानवीय भ्रातृत्व की स्थापना इस सदेश का केन्द्रीय सिद्धात था। वर्ग-भेद की चेतना को छुआ नही गया था, उल्टा वर्गों का विचार ही धार्मिक आदर्शों को अप्रिय था। यहाँ तक कि अमरीकी समाजवाद की धर्म-निरपेक्ष शक्तियो को भी वर्ग-अपील को अपनाना और मार्क्सवादी विश्लेषण के विदेशीपन को ध्यान मे रखना पडता था। ईसाइयो और यहूदियो के बीच सामाजिक न्याय के आदर्शों की कल्पना कानून के अवैयक्तिक रूप मे नही अपितु व्यक्तिगत अधिकार और आवश्यकताओ के रूप मे की गयी थी। इसलिए सामाजिक सुधार के कार्यक्रम को सरकार पर उतना आधारित नही किया गया जितना कि मालिको और कर्मचारियो के बीच श्रमिक के कल्याण की भावना के विकास पर। इसी प्रकार व्यापार और श्रम-सघो का समर्थन सामूहिक रूप मे सौदा करने वाली और और वर्ग सघर्ष बढानेवाली सस्थाओ के रूप मे नही अपितु रक्षा और भलाई करने वाली सस्थाओ के रूप मे किया गया। रोशेन-बुश ने भी, जो उन्नीसवी सदी के यूरोपियन सुधारवादियो की अपेक्षा कम आशावादी था 'ईश्वर के राज्य' की कल्पना मानवीय प्रेरको मे एक क्रांति लाने के रूप मे की थी। १९०७ मे उसने लिखा

यदि किसी ऐसी व्यवस्था का आविष्कार करना हो जिसके द्वारा मानवीय समाज मे लालचीपन को जान-बूझकर बढावा मिल सके तो हमारी अपनी व्यवस्था से बढकर और कौन-सी ऐसी व्यवस्था होगी? प्रति-स्पर्धा वाले वाणिज्य ने स्वार्थ को ऊचा उठाकर उसे एक नैतिक सिद्धात का दर्जा दे दिया है। यह उन मनुष्यो को भी बहुत कठोर बना देता है जो अन्यथा बडे नम्र तथा दयालु मित्र और पडोसी है।

चर्च को चाहिए कि वह प्रतिस्पर्धा वाले और साम्यवादी सिद्धातो के नैतिक मूल्यो के अतर को समझने मे जनता की सहायता करे और

साइयत के नाम पर धार्मिक उत्साह का सगठन करे ।

१९१२ मे रोगेनबुग ने फिर लिखा "मनुष्यो के ऊपर चीजो को तरजीह देना एक खतरनाक, व्यावहारिक भौतिकवाद है । ईश्वर के ऊपर धन के देवता को स्थान देना ही मूर्तिपूजा का वह रूप है जिसके विरुद्ध ईसा मसीह ने हमे चेतावनी दी है"

१९३२ मे "फेडरल कौंसिल आफ चर्चिज" ने एक बयान मे कहा, "ईसाई अतरात्मा को तो पूर्ण सतोष तभी होगा जब निजी लाभ के उद्देश्य के स्थान पर पारस्परिक सहायता और सद्भाव का उद्देश्य व्यवहार मे लाया जाय ।"

अमरीकी कैथोलिको ने भी यही बात कही कि सामाजिक व्यवस्था को मानवीय बनाना चाहिए, लेकिन उन्होने प्रेरणा के बजाय नियत्रण पर अधिक बल दिया । किसी भी न्यायपूर्ण और उपकारी सामाजिक व्यवस्था के लिए जीवन निर्वाह के लायक वेतन और वस्तुओ का उचित मूल्य आवश्यक है, और इन्हे प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा और 'आर्थिक प्रभुत्व' को 'उचित तथा निश्चित सीमाओ के अदर रखना चाहिए' कैथो-लिको ने ही, प्रोटेस्टेटो से बढकर समानता पर जोर दिया । वे चाहते थे कि प्रबध मे सहकारिता तथा साथ-साथ भागीदार बनने के द्वारा मिलकि-यत का प्रजातत्रीय वितरण हो ।

लेकिन आमतौर पर 'आर्थिक प्रजातत्र' को बढावा देने के लिए सभी धार्मिक दलो मे एकता थी । इस आर्थिक प्रजातत्र से उनका मतलब एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था से था जिसमे सघर्ष या चरम सीमा की प्रति-स्पर्धा के स्थान पर पारस्परिक सहयोग से काम होगा । इसका मतलब उस राष्ट्रीयकरण या 'राज्य के पूंजीवाद' से नही था जो उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध के समाजवादियो के उत्साह का मुख्य विषय रहा था । वास्तव मे इसका कोई विशेष कार्यक्रम नही था क्योकि इसका उद्देश्य राजनैतिक नही था । यह इतना विस्तृत अवश्य था कि मजदूरो को उद्योगो मे स्थान मिल सके, लेकिन इतना निश्चित भी नही था कि इनके द्वारा मजदूरो

को सुधार के कार्यक्रम का समर्थक बनाया जा सके। चर्चों पर, विशेषकर प्रोटेस्टेंट चर्चों पर, बहुत बार बुर्जुआ होने का आरोप लगाया जाता था और कहा जाता था कि वे न केवल श्रमिकों के प्रति उदासीन है बल्कि पूरी तरह प्रभुतावाले वर्ग के साधन बने हुए है। सामाजिक सदेश को तो जनसाधारण को यह विश्वास दिलाना था कि उसे इसकी भलाई की चिता थी, और धार्मिक सस्थाओ के माध्यम से काम करने के लिए श्रमिकों को निमत्रित करना था। जब १९३४ मे 'कांग्रीगेशनलिस्ट' नेताओं ने सामाजिक कार्य के लिए अपनी परिषद् का सगठन किया तो उन्होंने यहाँ तक कहा कि ससार के काम के लिए चर्च का भी बलिदान कर देना चाहिए "हमे यह विश्वास है कि एक युद्धहीन, न्यायपूर्ण और भ्रातृत्वपूर्ण ससार के निर्माण के काम मे अपने आपको खो देने मे ही चर्च अपने आप को पा सकेगा। इसी से एक ऐसा जीवन लाने के काम मे हम अथक परिश्रम के साथ अपने आपको लगा रहे है जिसमे सब मनुष्यों को शांति, सुरक्षा और समृद्धि मिल सकेगी।

'डिप्रेशन' के दिनो मे 'कांग्रीगेशनलिस्ट' के साथ बाकी प्रोटेस्टेंट चर्चों (प्रेस्बिटेरियन और ऐपिस्कोपालियन) ने भी जिनके साधारण सदस्य राजनीतिक दृष्टि से अनुदारवादी थे, एक 'राष्ट्रीय पश्चात्ताप' की लहर आगे चलायी। इससे 'न्यू डील' का पूरा समर्थन तो नही किया गया, पर हाँ, इससे यह पता अवश्य चलता था कि उनकी अतरात्मा मे कुछ खटक मौजूद थी और वे नियोजन तथा सामाजिक सुरक्षा योजनाओ के किन्ही रूपो को स्वीकार करने के लिए उत्सुक थे। लेकिन मजदूर वर्ग को की जानेवाली इन ऊपर-ऊपर की और अस्पष्ट अपीलो का प्रभाव धीरे-धीरे कम होने लगा और फिर इस उद्देश्य की पूर्ति मे ठोस योगदान करने के लिए चर्चों को राजनीतिक अखाडे मे उतरना पडा। उन्होने ऐसा किया और परिणाम वही हुआ जो होना था। आदोलन की नैतिक एकता समाप्त हो गयी लेकिन वह आर्थिक काम-काज मे सचमुच लग गया। पहले बनाये गए आदर्शों के आधार पर हर कांग्रीगेशन (सघ) के अदर आर्थिक निरा-

जन और श्रम सगठन के व्यावहारिक मुद्दो पर बहस होने लगी और उनका मूल्याकन किया जाने लगा। विश्वास और हितो के तीव्र मतभेदो के कारण चर्चो मे स्थानीय तथा राष्ट्रीय रूप मे हलचल मचने लगी।

सघीय चर्च परिषदे तथा राष्ट्रीय गोष्ठियाँ तथा पादरी लोग भी जब इस प्रकार कुछ प्रभावशाली जनसाधारण के मुकाबले 'समाजवाद' के अधिक निकट आ गए तो १९३७ मे 'चर्च लीग ऑफ अमेरिका' की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य "नये सामाजिक सदेश को धर्म के क्षेत्र मे" बढने से रोकना था। इसने "राष्ट्र भर मे पादरियो के समुख उन सामान्य लोगो के दृष्टिकोण को रखने की कोशिश की जो कि वास्तव मे चर्च के आधार थे और देश के निजी उद्योग-व्यवस्था मे जिन्होने बहुत कुछ दाँव पर लगा रखा था"। इसके अनुसार उन्होने ऐसे पादरियो, अध्यापको तथा अन्य सामाजिक नेताओ के प्रभाव को विफल करने की कोशिश की जो बडे पैमाने पर इस धारणा को स्वीकार करते जा रहे थे कि मुनाफे का विचार या मुनाफे के उद्देश्य से व्यापार करना कोई बुराई की बात है। धार्मिक विचारो के व्यापारियो के अदर अधीरता के चिह्न प्रगट हो रहे थे। उनका विचार था कि पादरी लोग ऐसे क्षेत्र मे प्रवेश कर रहे है जिनका उन्हे अनुभव नही है। उन्होने 'फेडरल कौसिल' को तथा आम पादरियो को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वे अपने विचारो को अपने-अपने चर्चो के अधिकृत आदेशो के रूप मे प्रस्तुत न करें। इस बात का उन्होने स्वागत किया कि चर्चो को चर्च बने रहने मे ही सतोष रहे, वे राजनीति या व्यापार के ब्यौरो का निर्देश किये बिना ही पश्चात्ताप और सुधार के उपदेश देते रहे।

तो भी सामाजिक आदोलनो के लिए बने आयोग और परिषदे धर्म निरपेक्ष जीवन के विभिन्न मुद्दो को अपने धार्मिक वर्गो मे ले आने तथा ठोस नैतिक मुद्दो को उभाडकर सामने रखने के काम मे आगे बढती गई है यद्यपि उन्हे अपने द्वारा सिफारिश की गई विशिष्ट नीतियो के लिए

आम समर्थन पाना असभव ही जान पडता है। चर्च की वेदियाँ, रवि-वासरीय विद्यालय तथा वाई० एम० सी० ए० इस प्रकार अमरीकी चेतना को स्पष्ट करने के विचार-स्थल बन गए। इसी बीच सामाजिक सदेश के नेता आपसी विचार-विनिमय के लिए इकट्ठे हुए, और बजाय राज-नीतिज्ञो की तरह एक अनाक्रामक प्लेटफार्म बना लेने के उन्होने सच्चे नैतिकतावादियो की तरह ऐसी नीतियो पर पहुँचने की कोशिश की जिनका वे समर्थन कर सकते थे। इसके परिणाम स्वरूप 'फेडरल कौसिल' ने १९३२ मे 'चर्चो के सामाजिक आदर्शो' को नये सिरे से बनाया। (प्रद-र्शन सामग्री सख्या ७)

सिद्धान्तो को विशिष्ट रूप मे फिर से बनाने के साथ-साथ राष्ट्रीय परिषद् ने अनेक अनुसधान तथा खोज की योजनाएँ भी चलायी है। इनमे "ईसाइयत के सिद्धातो को आर्थिक जीवन मे लागू करने" पर एक अध्य-यन भी शामिल है जिसे राकफेलर फाउडेशन के द्वारा भी चलाया जा रहा है। इसके निर्देशक श्री चार्ल्स पी० टाफ्ट के अनुसार अध्ययन की जाने वाली मुख्य समस्या यह पता करना है कि सामूहिक आर्थिक सगठन और शक्ति की वृद्धि का प्रभाव नैतिक उत्तरदायित्वो और नीतियो पर किस प्रकार पडता है।

यद्यपि अधिकृत समर्थन नही था, तो भी 'नेशनल कैथोलिक वेल-फेयर कौसिल', 'दि फेडरल कौसिल आफ दि चर्चिज आफ क्राइस्ट' और 'सिनागाग कौसिल आफ अमेरिका' ने १९४६ मे सयुक्त घोषणाएँ की जिनसे पता लगता है कि अमरीका की धार्मिक चेतना के स्पष्टीकरण ने सामाजिक सुधार के सामान्य सिद्धातो को अभिव्यक्ति देने की दिशा मे १९३० से पर्याप्त प्रगति की है। और इस बात के ठोस प्रमाण है कि जन साधारण तथा विधान सभाओ की चेतना पर केन्द्रीय, अधिकृत धार्मिक सगठनो के रुख का काफी प्रभाव रहा है।

इस सामान्य नैतिक आधार के अलावा विभिन्न धार्मिक प्रेस और गोष्ठियो ने विशिष्ट आर्थिक और राजनैतिक सुधारो को आगे बढाने की

चेष्टा की है। इस तरह कैथोलिको ने कई तरह की सहकारी संस्थाओ को शुरू किया है, और अभी हाल मे, पोप के 'समूहवाद' और इटली तथा पुर्तगाल के अभिषदवादी प्रयोगो के प्रभाव मे आकर उन्होने ऐसी 'आर्थिक परिषदो' की स्थापना पर बल दिया है जो राष्ट्र के मुख्य हितो और कार्यो मे सामूहिक रूप से तालमेल बैठाएँगी, लेकिन साथ ही प्रत्येक को यथासंभव प्रजातंत्र और स्वायत्तता तथा सबको एक केन्द्रित नियोजन का माध्यम प्रदान करेगी। इसी तरह २० नवम्बर, १९४८ को अपनी घोषणा (प्रदर्शन सामग्री संख्या ८) मे अमरीकी बिशपो ने सामान्य हित के लिए सहयोग की स्थायी एजेंसियो के रूप मे पूंजी और श्रम के स्वतंत्र संगठन का समर्थन किया। उन्होने प्रत्येक उद्योग मे और सामान्यतया सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था मे पूंजी और श्रम के अविकृत प्रतिनिधियो के बीच स्वतंत्र रूप से संगठित ऐसे सहयोग का भी समर्थन किया जिस पर सरकार का निरीक्षण तो हो पर नियंत्रण न हो। स्वतंत्र रूप से संगठित सहयोग की इन विभिन्न एजेंसियो को 'आक्यूपेशनल ग्रुप,' 'वोकेशनल ग्रुप' या अभी हाल मे 'इण्डस्ट्री कौंसिल' आदि विभिन्न नामो से पुकारा गया है। ब्रिटेन के 'गिल्ड सोशलिज़्म' की तरह के इस वितरणवाद या अभिषदीय बहुत्ववाद द्वारा राज्य के पूंजीवाद और दलो की तानाशाही के अधिकारतंत्र का बचाने का इरादा किया जा रहा है। ईसाइयो के संगठन ने संतुलित अर्थ व्यवस्था, सबके लिए आर्थिक समता और सुरक्षा, निजी एकाधिकार को तोड़ने तथा बैंक, परिवहन, संचार-व्यवस्था और खनिज-क्षेत्रो पर सार्वजनिक स्वामित्व के लिए आर्थिक नियोजन पर बल दिया है। प्रोटेस्टेंट लोगो ने मिलाकर रूप मे 'सामाजिक कल्याणकारी राज्य' का नाम न लिया; लेकिन उन्होने किसी निश्चित प्रोग्राम से साथ अपने आपको बांध नही लिया है। तो भी, उन्होने उद्योग मे स्त्रियो और बच्चो के बचाव के लिए कानून बनाने के काम को हाथ मे लिया, जिसे कैथोलिक नही करना चाहते रहे थे।

सामाजिक सदेश पर पुनर्विचार

राजनैतिक अखाडे मे धार्मिक सगठनो का इस प्रकार उतर आना इतना सफल हुआ कि इससे परेशानी पैदा होने लगी। आदोलन के विचार-पूर्ण तथा उत्तरदायित्वपूर्ण नेताओ को आशका होने लगी कि सगठित धर्म के परिणाम क्रान्तिकारी हो जाएँगे। ये आशकाएँ और भी वास्तविक तब हो गई जब यह पता चला कि कुछ नेता क्रातिकारी परिवर्तनो का वस्तुत स्वागत कर रहे थे। क्या ईसाई चर्चो का स्थान एक ईसाई सामाजिक व्यवस्था ले लेगी? अगर नही, तो ऐसे 'राज्य' मे चर्च कौन सा विशिष्ट पार्ट अदा करेगे? क्या धार्मिक समाजवाद धर्म-निरपेक्ष समाजवाद से भिन्न होगा? पीछे की घटनाओ के क्रम ने इन बहुत कुछ काल्पनिक प्रश्नो के अप्रत्याशित उत्तर दिये है। 'डिप्रेशन', तानाशाही और महायुद्ध ने अमरीका मे भी राजनैतिक सुधार को इतना पेचीदा बना दिया है कि स्वय सुधारको को भी भ्राति होने लगी है। उदार-वादियो को विशेषकर निराशा हुई जब उन्होने पाया कि अधिकार की माँग बढती जा रही है। जनसाधारण ने पादरी वर्ग से शिकायत के स्वर मे कहा "मामलो को राजनैतिक रूप से पेचीदा मत बनाओ, लेकिन नैतिक अधिकार को सरल बना दो।" और युवक लोग अध्यापको को बताने लगे कि "कौन-सी बात कैसे है।" अधिकारवादी इस सार्वजनिक प्रपच का इतना फायदा उठा रहे थे कि सामाजिक बने धर्म के अमरीकी नेताओ के सामने सबसे तीव्र और तात्कालिक समस्या यह हो गई कि बिना अधिकारवादी बने अधिकार का प्रयोग कैसे किया जाए।

पृथ्वी पर ईश्वर के राज्य का उपदेश देने वालो को धीमे-धीमे यह बात स्पष्ट हो गई कि उस राज्य के अदर एक खास तरह के दिव्य या पवित्र समाज के लिए स्थान होगा। सघो के बडे समुदाय मे यह एक ऐसा समुदाय होगा जिसका प्रमुख कार्य दिव्य इल्हाम का सरक्षक और प्रवक्ता बने रहना होगा। और अब वे समुद्र पार से बार-बार आती हुई आवाज़ को मन से सुनने लगे "चर्च को चर्च ही रहने दो"।

कैथोलिको के लिए इस स्थिति से कोई समस्या पैदा नही हुई क्योंकि वे सिद्धान्त और व्यवहार दोनो मे किसी भी नैतिक विषय पर अधिकार के साथ बोलने के लिए तैयार थे। लेकिन सामाजिक सन्देश के प्रोटेस्टेंट उन्नायको के लिए एक परेशानी पैदा हो गई। सभी विविध अमरीकी चर्च पवित्र चर्च कैसे हो सकते थे ? उनके लिए चर्च का सैद्धान्तिक पत्र सामाजिक सन्देश का एक आवश्यक अग बन गया, और यह सैद्धान्तिक समस्या धार्मिक अधिकार के साथ प्रजातत्र का मेल बैठाने की व्यावहारिक समस्या बन गई। इलहाम के प्रति भी एक सर्वथा नए खोजपरक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी। इसे धर्मशास्त्रियो के एक वर्ग ने पूरा किया जिसने, एच० रिचार्ड नीबर के शब्दो मे कहा "इलहाम हमारे धार्मिक विचारो का विकास न होकर उनका सतत परिवर्तन है।" चाहे यह सतत इलहाम के द्वारा सतत् परिवर्तन का प्रोटेस्टेंट दृष्टिकोण रहा हो जिसे स्वीकार किया गया, या फिर कार्डिनल न्यूमैन का यह उदार कैथोलिक दृष्टिकोण कि इलहाम मे भी विकास होता है, दोनो ही दशाओ मे निरपेक्ष अधिकार का एक लचकीला भाव मिल गया जिसने चर्चो को इस योग्य बना दिया कि वे अपने दिव्य कार्य से चिपके रह सके और साथ ही साथ प्रजातन्त्रीय समाज के नैतिक प्रयोगो मे भी भाग ले सके। इस तरह अब ईश्वर की आवाज उन चर्चो मे भी सुनी जा सकती थी जो अधिकारवाद के विरुद्ध थे।

सार्वदेशिक आन्दोलन तथा केन्द्रीकृत धार्मिक अधिकार के लिए उत्साह के बावजूद चर्च वाले बहुत से अमरीकियो ने चर्च के 'कांग्रीगेशनल' भाव को बनाए रखा। कोई भी अमरीकी चर्च वास्तव मे एक स्थानीय समाज है जिसके सदस्य इसमे अन्य किसी भी ऐच्छिक समाज की तरह शामिल होते है। इस तरह धर्म-निरपेक्ष सस्थाओ के बीच [illegible] के एक विशिष्ट प्रकार के रूप मे इसका स्थान है, और इसका दावा सिवाय एक तात्त्विकी पवित्रता के और किसी चीज का नही है। विशेष तौर पर सामाजिक सन्देश के नेता इस बात के लिए उत्सुक थे कि ईसाई

चर्च को समाज या संस्कृति का एक अविच्छिन्न अंग माना जाए न कि संसार के वीराने मे चीखती हुई एक अति प्राकृतिक आवाज। लेकिन केवल सम्प्रदायवादी होने के नाम पर यूरोप के चर्चवादी धर्मशास्त्रियों द्वारा इनकी आलोचना की जा रही थी। एफ० अर्नेस्ट जान्सन ने, जिसे इस आलोचना का शिकार सबसे अधिक बनना पड़ा, इसे अच्छी तरह व्यक्त किया है

तुम अपने चर्च से ऐसे ही शामिल होते हो जैसे अपने वतन मे। लेकिन चर्च को ऐसा नही समझा जा सकता। इसकी सदस्यता तो परिवार की सदस्यता के समान है। तुम अपने परिवार को छोड अवश्य सकते हो पर इससे इस्तीफा नहीं दे सकते। यहाँ साम्प्रदायिक चर्च का सामना 'एकत्रित' चर्च—विश्वास करने वालो के ऐच्छिक समाज से हो रहा है। अमरीका मे चर्च का यह पिछला भाव ही अधिक प्रचलित है।

डॉ० जान्सन ने इस मुद्दे का सीधा सामना किया और सामाजिक सन्देश के अपने पुन परीक्षण मे चर्च के अधिकार के प्रश्न का एक अमरीकी हल सामने रखा

चर्च मे विशिष्ट बात यह है कि यह एक ऐसा समुदाय है जिसमे मनुष्य जीवन के हर पहलू के मूल्यांकन की प्रक्रिया मे भाग लेते हैं, एक निरपेक्ष आदेश के प्रकाश मे अपने जीवन पर अपनी समझ के अनुसार आध्यात्मिक निर्णय पर पहुँचते है, अपने शासन के लिए सामूहिक नैतिक मानदण्ड निर्धारित करते है और सामूहिक पूजा मे अपने सम्पूर्ण अनुभव को एक बनाते है। इन सभी समुदायो मे अधिकार का सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है, क्योंकि यह सिद्धान्त कहता है कि समृद्ध परम्परा की पृष्ठभूमि मे संचालित वैयक्तिक अनुशासन के सम्मिलित अनुभव के रूप मे समूह-चिन्तन, समूह-आकाक्षा और मूल्यो के समूह-परीक्षण का महत्त्व सर्वाधिक है। एकान्त मे व्यक्ति द्वारा प्राप्त की गई किसी भी चीज से यह सामूहिक जीवन श्रेष्ठ है। धार्मिक समुदाय की प्रामाणिकता की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि सामूहिक जिज्ञासा और साधना के

द्वारा श्रेष्ठ धार्मिक अनुभव—अपने से ऊपर उठने से प्रेरणा मिलती है। ईसाई सम्प्रदाय के इस महान् आदर्श का कि "जहाँ भी दो-तीन आदमी मेरे नाम पर इकट्ठे हैं, मैं वहाँ हूँ"—और क्या अर्थ हो सकता है? समुदाय कोई मिल जाने का भाव नहीं है। केवल जोड़ से यह नहीं बनता। मानवीय सम्बन्धों में यह कोई विशिष्ट ही चीज है।

उनका कहना है कि "सच्चा पैगम्बरपन प्रतिनिध्यात्मक होता है।" दूसरे शब्दों में एक प्रजातन्त्रीय समाज में चर्च उतना ही प्रामाणिक है जितना अधिक पूर्ण रूप से वह अन्य संस्थाओं से बढ़कर समुदाय में जीवन की प्रक्रिया को अपनाता है। चर्च को पवित्र एकत्व के प्रतीक की घोषणा से कुछ बढ़कर करना चाहिए, इसे एक सामूहिक उदाहरण इस बात का रखना चाहिए कि किस प्रकार अनुभव के द्वारा एक पूर्ण समुदाय दिव्य उल्लास का साक्षी हो सकता है।

चर्च के पैगम्बरवादी कार्य की इस पुनर्व्याख्या के समानान्तर ही उसके पादरी सम्बन्धी कार्य की पुनर्व्याख्या भी सामने आई। लूथर द्वारा घोषणा किए गए पादरी-पद के प्रजातन्त्रीकरण ने 'डिसाइपिल्स', '[illegible]' तथा 'क्रिश्चियन आर्टिस्ट्स' जैसे 'सामान्य' चर्चों को छोड़कर प्रोटेस्टेंटों के बीच पादरियों की आवश्यकता को बहुत कम कर दिया था। लेकिन हाल की विश्व पीड़ा के साथ यह भाव जगा कि जिस तरह और अस्पताल [illegible] के समुदाय हैं, उसी तरह धार्मिक संगठन [illegible] के समुदाय हैं। चर्च समाजीकृत पश्चात्ताप है। दूसरे महायुद्ध के दौरान [illegible] भारी श्रोताओं के सम्मुख बोलते हुए, [illegible] ने स्वीकार किया

शायद अगली आधी सदी के इतिहास में नैतिक पिछड़ापन ही हमारे भाग में आएगा क्योंकि हमने अपने समय में '[illegible]' में अपने लिए कोई स्थान नहीं प्राप्त किया होगा। ऐसा लगता है कि हमारे समय के बारे में यह बात [illegible] सच होगी। उनके बिना [illegible] का मूल्य [illegible] हम लोगों के लिए कुछ भी नहीं

होगा जो अत्याचार की आग मे परखे जा चुके हैं।

सामूहिक पश्चात्ताप और पुनरुद्धार के लिए कष्ट सहन के इस सिद्धान्त की प्रासगिकता को यहूदी समुदायो ने प्रकट तौर पर समझा। कैथोलिको ने तो अपने पूजा-कार्य और चिह्नो के बीच क्रूस को केन्द्रीय स्थान दिया ही था, अब प्रोटेस्टेंट मत के उदार लोग भी धार्मिक आचार मे आत्म-त्याग के आदर्श को आवश्यक मानने के बारे मे उनसे सहमत थे और आमतौर पर हाल मे अमरीका मे इस बात को समझा गया है कि चर्च किस प्रकार ऐतिहासिक सातत्य के भाव को—सतो से समागम और जीवितो के मृतको से, विशेषकर शहीदो से सम्बन्ध के द्वारा—विशिष्ट रूप से पनपा सकता है इस प्रकार चर्च समाज के अन्दर धर्म सम्बन्धी एक विशिष्ट गुण पैदा कर रहे हे जिससे ईश्वर की उपस्थिति, सार्व-भौमिकता तथा पवित्रता के बारे मे एक रहस्यात्मक भावना उत्पन्न होती है।

इन विभिन्न उपायो के द्वारा सामाजिक सन्देश को आधुनिक घटनाओ के अनुरूप ढाल लिया गया है, और आमतौर पर इसके प्रारम्भिक आदर्श-वादी समाजवाद का स्थान इस यथार्थवादी विचार ने ले लिया है कि सामाजिक पुनर्निर्माण के सामान्य कार्य मे धर्म क्या योगदान कर सकता है।

धर्म-निरपेक्ष सामाजिक कार्य से हटकर समाज मे आत्मा के उद्धार सम्बन्धी कार्य पर चर्च के फिर आ जाने के बारे मे प्रोटेस्टेंट धर्मशास्त्री आम तौर यह कहते है कि वह 'सामाजिक सन्देश' तो इस सदी के चौथे दशक मे ही समाप्त हो गया था और नव्य-रूढिवादी धर्मशास्त्र की वृद्धि वास्तव मे एक नए सामाजिक सन्देश को प्रकट करती है। इसी-लिए हमे 'सामाजिक सन्देश के बाद का सन्देश' और 'सामाजिक सन्देश का अन्त' के बारे मे पढने को मिलता है। ऐसे वाक्यांश वास्तव मे भ्रामक है, क्योकि यद्यपि यह सच है कि सिद्धान्त रूप से और आदर्शरूप से ईसाइ-यत के सामाजिक आचार मे उग्र परिवर्तन हुआ है, लेकिन चर्चों के

क्रियात्मक सामाजिक कार्य मे एक आम सातत्य रहा है। 'सामाजिक सन्देश पर पुनर्विचार' वाक्यांश शायद अधिक सही हो, क्योंकि समाज को ईसाई बनाने के मूलभूत उद्देश्य आज पहले से भी ज्यादा गहरे है, और ईसाई राजनीति पहले किसी भी समय से ज्यादा यथार्थवादी है। इसलिए साधारण पाठक को यह अनुमान करने मे सचेत रहना चाहिए कि उदारवाद के विरुद्ध धर्मशास्त्रीय प्रतिक्रिया का तात्पर्य व्यावहारिक राजनीति मे प्रतिक्रिया से है, बल्कि इसके विपरीत, चर्चों के कार्यक्रम आज पहले के 'बुर्जुआ समाजवाद' के मुकाबले अधिक उग्र और पेचीदे है।

इस शताब्दी के अन्दर अमरीका मे धर्म मे हुए नैतिक पुनर्निर्माण के बारे मे जो सामान्य सिद्धान्त इस अध्याय के प्रारंभ मे दिया गया है उसकी पुष्टि शायद ऊपर दिए गए ऐतिहासिक ब्यौरे से हो गई होगी। चिन्ता का केन्द्र अब आत्मा को बचाने से हटकर समाज को बचाना, अति-प्राकृतिक कृपा या दया से हटकर आर्थिक और राजनैतिक उपायों द्वारा सामाजिक उद्धार के लिए कार्य करना, धार्मिक पुनर्जीवन से हटकर सामाजिक पुनर्निर्माण और नैतिक तुष्टि से हटकर नैतिक आलोचना हो गया है।

अतिप्राकृतिक अतिसामाजिक सन्देश

धार्मिक उदारवाद के इस धर्म-निरपेक्षीकरण तथा समाजीकरण का दो प्रकार की अन्तश्चेतनाओं द्वारा विरोध होना ही था। एक तो इनके द्वारा जिनका विश्वास 'समाज के पुनर्निर्माण' मे नही है [illegible] और दूसरे उनके द्वारा जो सम्पूर्ण सामाजिक सन्देश को बुर्जुआ [illegible] का [illegible] समझते है। जब ये दोनो प्रकार के विरोध सम्मिलित हो [illegible] होता है, तो परिणामस्वरूप धार्मिक विरोध के इन आलोचकों का स्वरूप ऐसा हो गया जो सामाजिक रूप से प्रतिक्रिया-वादी है। सामाजिक सन्देश के विरोध के [illegible] और [illegible]-

ल्दीय आशा के चर्च उठ खडे हुए। इन चर्चों को समाजशास्त्रियो द्वारा आमतौर पर 'कम अधिकार वालो के चर्च' कहा जाता है, लेकिन हमे उनका गलत रूप न पेश करने के लिए सावधान रहना चाहिए। समाज-विज्ञान और सैद्धान्तिक राजनैतिक शिक्षा की दृष्टि मे उन 'ईवेंजलिस्टिक' चर्चो के सदस्य अपेक्षाकृत निरक्षर और शिक्षा की दृष्टि मे 'कम अधि-कार प्राप्त' है, लेकिन ये लोग धनी तथा निर्धन दोनो प्रकार के हैं, और उनमे से अधिकाश 'निम्न मध्य' वर्ग मे है जहाँ कि अधिकाश अम-रीकी किसी न किसी रूप मे होते ही है। धनी व्यापारियो ने ऐसे आन्दोलनो, उनके प्रेसो, स्कूलो और मोर्चो मे पैसा लगाया है। मार्क्स-वादियो द्वारा बडी आसानी से उन पर लोगो को 'अफीम' खिलाने का दोष लगाया जा सकता था। अगर यह बात न होती कि वे स्वय भी वही 'अफीम' खा रहे है, और किसी आर्थिक लाभ की योजना के बजाय धार्मिक विश्वास से कार्य कर रहे है। वे आमतौर से ऐसे 'पके हुए' आदमी है जिनका अमरीकी सर्वहारा वर्ग के सभी लोगो के साथ यह विश्वास है कि ससार वास्तव मे बहुत कुटिल और बुरा है और यह तब तक ऐसा ही रहेगा जब तक कि ईश्वर इसे अन्तिम रूप मे नष्ट न कर दे। ससार को बचाने का कोई इरादा है ही नही। मनुष्य का धार्मिक कर्त्तव्य है कि वह इस ससार से और इसकी घृणित बुराइयो से भागे। विरोध और पलायन की यह मनोवृत्ति अपने आपको ढीला छोड देने की मनोवृत्ति नही है। तीखे यथार्थवादी अनुभव और सामान्य समझ की की जाने वाली अपीले इसमे मिली रहती है। जब अमरीकी निर्धन लोग धर्म की ओर मुडते है, जैसा कि उनमे से अधिकाश के साथ होता है, तो वे शान्ति मे आस्था की ओर नही अपितु अपने साथियो के अन्दर की आस्था के विरुद्ध विद्रोह की ओर मुडते है। 'हमारा ईश्वर मे विश्वास है' का एक दिखावटी पहलू भी सदा रहा है। ऊपर से उद्धार तो होगा पर ऊपर बैठे लोगो से नही। हालाकि सामाजिक सन्देश ने आराम से रहने वाले लोगो की चेतना पर अधिकार कर लिया है, उसका प्रभाव

इस सर्वहारा वर्ग में अपेक्षाकृत कम हुआ है, जो, कम से कम अमरीका में, अर्थशास्त्र के बारे में निराशावादी और राजनीति से बहुत भिन्न रहा है।

नैतिक आचारवादिता आज पहले से बढ़कर औरों को बुरा बताने का आन्दोलन बन गई है। इसकी दृष्टि में मनुष्य और समाज दोनों अनैतिक हैं, और धर्म मानवीय साधनों और सामाजिक प्रसन्नता से बढ़कर किसी चीज में विश्वास का नाम है। शिक्षित ईसाई आचारवादियों में, जिनकी संख्या देश के बजाय विदेश में अधिक है, लोकप्रिय नेता कीर्कगार्ड और उनामुनो जैसे भ्रान्ति से निकले व्यक्ति हैं जो ईसाई राज्य और सामाजिक व्यवस्था को ईसाई बनाने के सम्पूर्ण विचार का ही मजाक उड़ाते हैं। एक ईसाई से संसार में आराम से रहने की आशा नहीं की जाती। और आचारवादी यहूदियों में तो, यदि यह विशेषण उनके साथ लगाया जा सके, समाज को ईसाई बनाने के विचार को व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से ही देखा जाता था, और अब वे उनकी आवाज सुनते हैं जो निराशा में "मसीहा के भक्त यहूदी धार्मिकों की ओर जाने के बजाय अपने यहूदी मुहल्लों में वापिस जाओ" चिल्ला रहे हैं। लेकिन आमतौर पर 'कम अधिकार प्राप्त लोगों के चर्च' निराशा पर आधारित न होकर इस आशा पर आधारित होते हैं कि इस संसार के समाप्त करने से पूर्व ईश्वर, अपने ही समय और प्रकार से, एक ऐसा 'राष्ट्र' उत्पन्न करेगा जिससे संसार में शान्ति का राज्य छा जाएगा और जिससे सब नर और [illegible] संसार की भूमिका बन जाएगी। इसे हम 'न्यू डील' विश्वास की, जो कि अमरीकी नैतिकता में एक गहरा [illegible] है, एक अतिप्रकृतिवादी व्याख्या कह सकते हैं।

[illegible] सेंट मत के [illegible] नीति [illegible] [illegible] [illegible] जीवन [illegible] [illegible] [illegible] उदाहरण के लिए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ही है, १९०६ मे १९ राज्यो मे ६,६०० सदस्यो वाले १०० चर्च थे। १९२६ मे ४७ राज्यो मे इसके ६३,००० सदस्यो वाले १,४०० चर्च थे, और १९४१ मे ४८ राज्यो मे इसके २,७०,००० सदस्यो वाले ३,००० चर्च थे।

सहस्राब्दवादी उपदेशक, चार्ल्स टी० रसेल के, जिसने कि उन्नीसवी शताब्दी मे निकट भविष्य (१९१४) मे ईसा के दुबारा आने की घोषणा की थी, अनुयायी 'जियाल्स वाच टावर सोसायटी' कुछ थोडे पर आस्था-वान् लोगो का समूह है। पहले ये लोग 'रसेलाइट बुकलेट्स' और (१८७९ मे शुरु की गई) अपनी पत्रिका 'वाच टावर' की कुछ हजार प्रतियाँ बाँटते थे। लेकिन १९००–१९१० के बीच इस सोसायटी ने अपनी 'स्टडीज इन स्क्रिप्चर्स' की लाखो प्रतियाँ बाँटी और अब यह 'वाच टावर' की हर पक्ष मे ६,००,००० प्रतियाँ बाँटती है।

१९१४ मे एक आठ घटे का चलचित्र 'फोटो–ड्रामा ऑफ क्रिएशन' दिखाया गया। १९१९ मे आठ हजार 'पादरियो' या 'साक्षियो' ने एक सभा मे 'ईश्वर और उसके राज्य का अधिकाधिक प्रचार' करने पर सहमति प्रकट की। १९११ मे उन्होने अपना नाम 'जिहोवाज विट-नेस' (जिहोवा के साक्षी) रख लिया। १९४६ मे क्लीवलैंड की एक सभा मे सम्मिलित ८०,००० साक्षियो ने एक और पत्रिका 'अवेक!' (जागो) चलाई। इसी बीच रेडियो के बढते हुए प्रसारणो के कारण ब्रुकलिन मे डब्ल्यू बी. बी आर रेडियो की स्थापना हुई। इस पूरी तरह आधुनिक उपायो द्वारा जेहोवा के साक्षियो ने, ईश्वर अपना राज्य किस प्रकार ला रहा है उस बात की अपनी व्याख्या की घोषणा कर दी है। (प्रदर्शन सामग्री सख्या ९ देखे)। सोसायटी के सभापति के शब्दो मे इस धर्म प्रचार के सारांश मे यह स्पष्ट हो जाएगा कि उस प्रकार के प्रचार का एक ओर से तो धर्म-निरपेक्ष घटनाओ और बातो से और दूसरी ओर ईश्वरी राज्य की उदारवादी व्याख्या मे कितना रोचक सम्बन्ध है।

१८८० मे ही जिहोवा के साक्षियो ने घोषणा कर दी थी कि १९१४ मे बाइबिल की भविष्यवाणी के अनुसार 'अधार्मिक लोगो के ससार' का नाश हो जाएगा। उस साल एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र से लडाई हुई। सभी साक्षी समझते थे कि ईसा के दुबारा आने और ससार के अत का मतलब इस प्रत्यक्ष पृथ्वी के आग मे जल जाने से नहीं था बल्कि इस 'वर्तमान बुरे ससार' पर शैतान के अप्रतिहत शासन के अत और स्वर्ग मे राजा के रूप मे ईसा के राज्याभिषेक से था। वह राज्य कोई पृथ्वी का राज्य नहीं है, वह पृथ्वी पर की किसी राजनैतिक सरकार या सरकारो के समूह मे न तो है ही और न कभी मिल सकता है। ईसा ने कहा था, "मेरा राज्य इस ससार का नहीं है", (जोन १८ : ३६) तो भी, उस स्वर्गिक राज्य का पवित्र शासन पृथ्वी पर उतरेगा और ईश्वर की इस प्रार्थना का उत्तर लाएगा . "पृथ्वी पर तेरी इच्छा ऐसे ही पूर्ण हो, जैसे कि स्वर्ग मे।"

सबसे अधिक मार्के की बात जिहोवा के साक्षियो का यह विश्वास है कि ईश्वर का राज्य स्थापित हो चुका है, निकट है और अपना काम कर रहा है। लगातार चल रहे दर्दो और दु खो को ध्यान मे रखते हुए कइयो को यह अजीब सा मालूम देता है। तो भी, धर्मशास्त्रो मे पुराने ससार के शासन से ईश्वरीय राज्य के शासन की ओर परिवर्तन के बारे मे कहा गया है , यह एक ऐसा समय होगा जब ईसा 'अपने शत्रुओ के बीच मे राज्य करेगा' जबकि दुष्ट शैतान पृथ्वी के दु खो को बढाता जाएगा।

न केवल 'मनुष्य की बुद्धिमत्ता ईश्वर की निगाह मे मूर्खता है', अपितु मनुष्य की सारी सस्थाओ को भी निश्चित रूप से ' [illegible] [illegible] मार्ग पर किया गया चलन जाना है। इस युग की [illegible] [illegible] कोई राय नही सकता। इस सदी के [illegible] को ये साक्षी ऐसे [illegible] आक्रमण' के रूप मे देखते है जो आसानी से टाला जा सकता है। साहित्य [illegible] है कि यद्यपि इतिहास मे ईसाई [illegible] [illegible] आंदोलन रहा है लेकिन इन सभी

पर शैतान का यहाँ तक अधिकार हो गया है कि वे अपने मौलिक उद्देश्य से विपरीत बात कहने लगे है। धर्मों के बारे मे यह बात खासकर सच है" ये साक्षी बाइबिली प्रथा के रूप मे प्रौढो को बपतिस्मा देते है और 'मेमोरियल सपर' मनाते है। शेष सभी धार्मिक रीति-रिवाज केवल अन्धविश्वासपूर्ण मान्यताएँ है।

रक्षक ईश्वर मे भोली श्रद्धा के इन बहुत 'आधुनिक' पुनरुत्थानो मे एक सबसे अधिक चरम सीमा का और शिक्षाप्रद 'फादर डिवाइन पीस मिशन' है। इसको स्थापित हुए केवल तीस वर्ष हुए है, लेकिन यह हजारो नीग्रो और अनेक श्वेतो को श्रद्धा और शान्ति के एक ऐसे साहचर्य मे ले आया है जो जितना पवित्र है उतना ही रूढिभिन्न भी। इसके सदस्य एक नया जीवन जीते है, उन्हे नई सुरक्षा और शान्ति मिलती है और उनके नए नाम होते है—वे 'स्वर्ग' मे रहने वाले 'देवदूत' होते है। उनके 'कम्यूनियन' भोजन वास्तव मे भोज होते है। और दिव्य माता और माता के साथ उनका जीवन वास्तविक भगवत्कृपा मे साझा होता है। (प्रदर्शन सामग्री सख्या १० देखे) 'दि न्यू डे' के शीर्षक से छपे आन्दोलन के इतिहास से हम नीचे का उद्धरण यह दिखाने के लिए रख रहे है कि इस प्रकार का क्रान्तिकारी धार्मिक समाज पारस्परिक चर्चों के सामाजिक कार्यक्रम के जानबूझकर विरुद्ध है।

यह मान लिया गया है कि दिव्य पिता मे विश्वास रखने वालो ने अपनी सेवाएँ पवित्र कार्य के लिए, बिना मुआवजे के निश्शुल्क दी हैं।

यह भी मान लिया गया है कि 'पीस मिशन्स' के सह-कार्यकर्त्ता और प्रतिनिधि हमारे चेतन विश्वासो के अनुसार पूरी तरह ईश्वर में आस्था रखने के लिए तैयार हैं।

इसलिए सक्षेप मे, न तो हम समाज कल्याण के कार्य मे रहेंगे और न आगे सहायता ही माँगेगे। हम बीमा नहीं करवाएगे और जो इस समय है उसे हम इसलिए छोड देंगे ताकि हम अपने सम्पूर्ण हृदय, आत्मा और मन को उस ओर लगा सकें जिस ओर कि हम परिवर्तित हुए हैं—

हम कोई भी मुआवजा न ही लेंगे और बीमा नहीं कराएँगे। हम बुढ़ापे की पेंशन, बीमा, भूतपूर्व युद्ध-सेवियों की पेंशन और मुआवजा लेने से मना कर देंगे। यह सब इसलिए नहीं किया गया है कि यह उन पर धार्मिक बन्धन है बल्कि इसलिए कि यह उनके धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध है।

अभी हाल में निकले धर्म-सन्देशों के ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जो उदारवाद के सामाजिक सन्देश के तो तीव्ररूप से विरुद्ध हैं, पर तो भी उनसे पता चल जाता है कि वे आजकल भी सामाजिक अवस्थाओं के प्रति प्रतिक्रिया के रूप हैं। उनको केवल प्रतिक्रियावादी, असन्तोष, या पलायन के उपाय कहकर टाल देने से काम नहीं चलेगा। धर्मशास्त्र या दर्शनों के रूप में उपहास योग्य प्रतीत कराने के लिए उनके कुछ अन्य चिह्न भले ही हों, पर ये सन्देश भी, अपने अधिक पढ़े पडोसियों के समान, नवीन, आधुनिक विश्वास हैं जिनमें समसामयिक नैतिक समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता झलकती है।

प्रदर्शन-सामग्री

प्रदर्शित सामग्री संख्या २
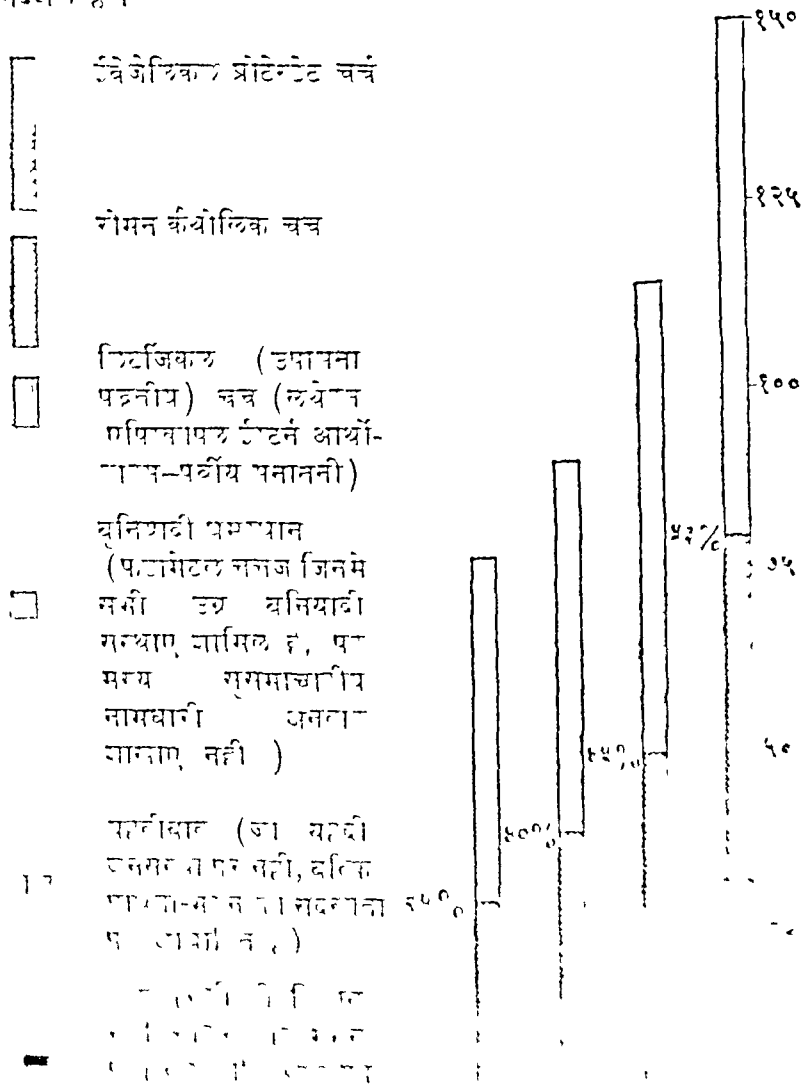
१९०४ में बताये गए नये जीवन के चिह्न

थियोडोर टी० मजर, के 'एसेज फॉर दि डे' (१९०४) पृष्ठ ३० मे उद्धृत ।

आम जनता का प्रभाव इस समय उपदेशको और चर्चों पर बहुत अधिक हे । जो लोग पूर्व स्थापित सिद्धान्तो के बीच मे रहते और सोचते हे उनके बजाय जन-साधारण पर शक्तिशाली आन्दोलनो का प्रभाव कही अधिक पडता है । आत्मा पवन के समान हे, और वह खुले मे सबसे अधिक स्वतत्रता से विचरती हे । परिणामत आज चर्चों मे ऐसे परिवर्तन हो रहे हे जिनकी जानकारी स्वय चर्चो को नही हे या जिनका वे तिरस्कार कर रहे हे । यगमन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन, दि क्रिश्चियन यूनियन, दि क्रिश्चियन एडीवर सोसाइयटी, दि ब्रदरहुड ऑफ सेण्ट एड्रूज, दि एपवर्थ लीग, दि बैपटिस्ट यूनियन, दि स्टुडेट वॉलटियर मूवमेट, दि ब्रदरहुड आफ एड्रूज एड फिलिप, दि गर्ल्स फ्रेड्ली सोसायटी, दि किंग्स डॉटर्स और उसी तरह की अन्य आम सस्थाओ की आलोचना करने मे पूर्व आलोचक को दुबारा सोच लेना चाहिए । इन सगठनो के सामने एक विचार और एक आन्दोलन हे । चाहे वे कितने ही भद्दे और तुच्छ क्यो न प्रतीत हो और चाहे वे कैसी ही गल्तियाँ क्यो न करे, वे उन चर्चों से ज्यादा बुरे नही रहेगे जिनसे वे निकले हे लेकिन जिन्हे वे छोड नही रहे । अगर उनमे उत्साह और समूह मे रहने की भावना जरूरत से ज्यादा हे तो भी वे अनजाने मे चर्चों की अल्पता और नीरसता के विरुद्ध विरोध प्रकट कर रहे है । तरुणावस्था की वृत्ति के साथ वे जीवन मे एक कार्य-क्षेत्र तलाश कर रहे है ।

प्र० सा० संख्या ३

एक कैथोलिक अमरीकी नागरिक की हैसियत से अलफ्रेड ई० स्मिथ का सिद्धांत

१९२७ और १९२८ में बहु-प्रचारित 'एटलांटिक मथली' (मई, १९२७) के पृष्ठ ७२८ में उद्धृत।

मैं अपने सिद्धान्त को एक अमरीकी कैथोलिक के रूप में सामने रख रहा हूँ। मैं रोमन कैथोलिक चर्च के विश्वास और व्यवहार के अनुसार ईश्वर की पूजा में विश्वास करता हूँ। मैं अपने चर्च की संस्थाओं का यह अधिकार नहीं मानता कि वे संयुक्त राज्य के संविधान या इस देश के कानूनों के लागू करने में बाधक बनें। मैं सब मनुष्यों के लिए अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता में विश्वास करता हूँ और मानता हूँ कि कानून के सामने अधिकार के तौर पर, न कि किसी विशेष कृपा के तौर पर, सब चर्च, सम्प्रदाय और विश्वास बराबर हैं। मैं चर्च और राज्य के पूर्ण अलगाव में विश्वास करता हूँ और चाहता हूँ कि संविधान के उस नियम का पूरी तरह पालन किया जाय कि कांग्रेस किसी धर्म की स्थापना या उसका स्वतन्त्र पालन करने से रोकने के बारे में कोई कानून नहीं बनाएगी। मैं विश्वास करता हूँ कि किसी भी चर्च की किसी सभा को यह अधिकार नहीं है कि वह देश के कानून के बारे में किसी भी तरह का कोई नियम बनाए। चर्च के लिए सिर्फ उसके ही द्वारा बनाए जा सकते हैं जिनसे उसके अपने सदस्यों के अधिकारों का निर्धारण होता हो। मैं मानता हूँ कि सार्वजनिक विद्यालय अमरीकी स्वतन्त्रता के आधारस्तम्भ हैं। मैं मानता हूँ कि हर माता-पिता को अपने बच्चे के बारे में यह निर्णय करने का अधिकार होना चाहिए कि वह सार्वजनिक विद्यालय में पढ़े या उसके अपने [illegible] द्वारा चलाए जाने वाले किसी धार्मिक स्कूल में। [illegible] [illegible]

द्वारा क्यो न की जा रही हो, सबको विरोध करना चाहिए। और मैं ईश्वर के सामान्य पितृत्व के अधीन मनुष्य के सामान्य भ्रातृत्व मे विश्वास करता हूँ।

प्र० सा० संख्या ४

धार्मिक विद्यालय और सांस्कृतिक बहुत्ववाद के लिए एक रबी का तर्क

'ज्यूइश एजुकेशन' (१९४९ पृ० ४०-४३) मे प्रकाशित जोजेफ एच० लुकस्टीन के लेख 'रिलिजन एण्ड पब्लिक स्कूल्स' से उद्धृत।

धर्म के बारे मे कट्टर व्यक्ति और धर्म तथा सार्वजनिक विद्यालय के प्रति उसकी मनोवृत्ति का समाधान कर देने के बाद भी इस समस्या का अन्त नही हो जाता। एक दूसरी तरह का कट्टर व्यक्ति भी है जिसकी स्थिति का भी समर्थन नही किया जा सकता। पहले प्रकार का कट्टर व्यक्ति धर्म को सभी सार्वजनिक शिक्षा-सस्थाओ मे घुसेडना चाहता है जब दूसरे प्रकार का चाहता है कि हर अमरीकी बच्चे को केवल एक ही प्रकार की धर्म-निरपेक्ष शिक्षा दी जाय।

इस तरह के दृष्टिकोण के प्रति केवल एक ही प्रतिक्रिया है यह अपने इरादो मे प्रजातत्रीय है पर परिणामो मे सर्वाधिकारवादी होगा। 'हर बच्चा सार्वजनिक विद्यालय' मे का नारा इतना ही लचर है जितना कि 'हर कैथोलिक बच्चा कैथोलिक स्कूल मे' का समानातर नारा। सास्कृतिक बहुत्ववाद अमरीकी सस्कृति का एक विशिष्ट पहलू है। सस्कृति के एकात्मक भाव को हमने बहुत पहले ही छोड दिया है, और इसके साथ सब सस्कृतियो को घुला-मिलाकर एक बनाने का विचार भी समाप्त हो गया है। ईश्वर न करे कि अमरीका के करोडो लोग एक ही साचे मे ढाले जाय। यह कल्पना करना भी मूर्खता मालूम पडती है कि यहूदी, कैथोलिक, प्रोटेस्टेट, श्वेत, पीले, काले, बाहर से आए और यही के मूल निवासी, ये सभी लोग मानो एक बडे कडाह मे डाल दिये जाय

जिसमे वे एक या दो पीढी तक पकते रहे और तब जो खाद्य तैयार हो वह शत-प्रति-शत अमरीकी हो। यह नुस्खा सर्वाधिकारवाद के लिए है न कि सबको अपने अन्दर रखने वाले अमरीकी प्रजातन्त्र के सास्कृतिक बहुत्ववाद के लिए। जहाँ तक ईसाइयो और यहूदियो के अन्त धर्मक्षेत्रीय विद्यालयो का सम्बन्ध है, हमे इन्हे अमरीकी सस्कृति की स्वतत्रता का सूचक तथा अभिव्यजक ही मानना चाहिए। अपने देश के अन्दर सास्कृतिक विभिन्नता को बनाये रखने का यह एक साधन है, और यह आशा दिलाता है कि इस विभिन्नता से सारी अमरीकी सस्कृति मे समृद्धि और सुन्दरता आयेगी।

प्र० सा० संख्या ५

आर्थिक गिरावट से पहले की मिशन की ऊँची योजनाएँ (१९१९)

'इटर चर्च वर्ल्ड मूवमेंट' का प्रस्ताव है :

(१) हर स्थान और विषय के दृष्टिकोण से चर्च द्वारा किये जाने वाले ससार भर के काम का पूरी तरह विश्लेषण किया जाय जिससे उपेक्षित क्षेत्र का पता चल सके, वर्तमान महत्त्वपूर्ण काम को शक्ति मिल सके, अनौचित्यपूर्ण काम हटाये जा सके और सभी सस्थाओ और कार्यकर्त्ताओ मे सहायतापूर्ण सबध स्थापित किए जा सके।

(२) सारे देश का ध्यान खीचने के लिए सुनिश्चित तथ्यो के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र मे एक लगातार आन्दोलन किया जाय, और, यदि सभव हो तो उन करोडो लोगो की सुप्त भावनाओ को जगाया जाय जो ससार की सेवा के लिए ईसा की पुकार से अछूते रह गए है।

(३) औद्योगिक सम्बन्ध, परोपकार, धर्मोपदेश, और शिक्षा मे चर्च का सहकारी नेतृत्व किया जाय ताकि चर्च इन क्षेत्रो मे अपने उत्तरदायित्वो को अच्छी प्रकार निभा सके।

(४) चर्च और मिशन के काम के लिए कार्यकर्त्ताओ को भर्ती करने

का आन्दोलन चलाया जाय।

(५) इस समय की परिस्थितियों द्वारा देश और विदेश में जिस प्रकार के प्रयत्न की माँग की जा रही है उसके लिए पर्याप्त धन इकट्ठा करने की सम्मिलित अपील की जाय।

प्र० सा० संख्या ९

ईसाई जनसाधारण के मिशन के बारे में पुनर्विचार (१९३२)

'विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग' की अध्यक्षता में 'लेमैंस फॉरेन मिशन इन्क्वायरी' द्वारा स्थापित जाँच कमीशन की १९३२ में 'रिथिंकिंग मिशंस' के नाम से प्रकाशित रिपोर्ट।

हमारा विश्वास है कि अब वह समय आ गया है जब कि मिशन के शैक्षिक तथा अन्य परोपकारी काम को सीधे धर्मोपदेश के संगठित उत्तर-दायित्व से मुक्त कर देना चाहिए। हममें बिना उपदेश किये भी दान देने की क्षमता होनी चाहिए और सामाजिक सुधार के लिए गैर-ईसाई संस्थाओं के साथ सहयोग करने के लिए तैयार रहना चाहिए, और हम पूर्व की किस प्रकार सहायता करें इस बात को तय करने में पूर्व को ही पहल करने देनी चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि हमें अदृश्य सफलता में ज्यादा विश्वास रखकर काम करना चाहिए। हमारी संस्थाओं की शक्ति बढ़ाए बिना भी यदि ईसाई सेवा की भावना पूर्व में फैल जाय तो इसे भी हमें अपना लाभ ही मानना चाहिए। बिना व्याख्या किये गए प्रतीकों की भाषा से यथासम्भव दूर रहने का जनसाधारण का जो विशेषाधिकार है उसका प्रयोग हम ईसाइयत के सन्देश को फैलाने के अपने प्रयत्न में करना चाहते हैं। हम वर्तमान समय में यह आवश्यक समझते हैं कि ईसाइयत आम अनुभव और विचारों के साथ निकट सम्पर्क स्थापित करे। विशेष-कर पूर्व को सम्बोधन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम अपनी बात ऐसे शब्दों में कहें जिन्हें ईसाई सिद्धान्तों के इतिहास से पूरी-तरह अपरिचित व्यक्ति भी समझ सकें।

भविष्य मे जो मिशनरी बाहर जाएँ उन्हे चाहिए कि वे अपनी मत-वादी विचारधारा यही छोड कर एक बनी हुई ईसाइयत और विश्वव्यापी चर्च के लिए काम करने जाये। आवश्यकता वास्तव मे इससे भी ज्यादा की है। हमे कोई ऐसा रास्ता खोज निकालना चाहिए जिससे विभिन्न सम्प्रदाय अपनी तग दीवारोसे बाहर आकर ईसाइयत के विश्वव्यापी प्रसार के लिए सहयोग कर सके। यह काम देश मे भी उतना ही आवश्यक है जितना विदेश मे। ईसाइयत को चुनौती देने वाले कामो को पूरा करने के लिए सबकी समिलित बुद्धिमानी और साधनो की आवश्यकता पडेगी। इससे अमरीका का भी उतना ही सबध है जितना कि उन देशो का जहाँ मिशन का काम हो रहा है। विदेशो मे मिशनरियो द्वारा शुरू किया गया कोई भी कार्य तब तक पूरा नही हो सकता जब तक अमरीका के चर्च मिलकर इस आध्यात्मिक काम मे उनकी सहायता नही करते।

हमारी सिफारिश है कि चीन, जापान और अमरीका मे सैद्धान्तिक शिक्षालयो की सख्या बहुत कम कर दी जाय और प्रशिक्षण का स्वरूप भी बहुत बदल दिया जाय, ताकि उन व्यावहारिक, सामाजिक और मानवीय कामो पर बल दिया जा सके जो कि एक आत्मिक नेता के सामने वर्त्तमान समय मे शहर तथा गाँव के वास्तविक जीवन मे सामने आते है। इन देशो मे जिन व्यक्तियो को आत्मिक नेता बनना है उनके आतरिक जीवन को और गहरा बनाने के ज्यादा प्रयत्न किये जाने चाहिए। अपने कार्यकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देने में शिक्षालयो का उद्देश्य ईसाई जीवन के विचार और सेवा के सर्वव्यापी और आधारभूत तत्त्वो को खोजना और प्रस्तुत करना होना चाहिए, और प्रशिक्षण का सम्प्रदायिक पहलू गौण रहना चाहिए।

प्र० सा० संख्या ७

चर्चों के सामाजिक आदर्श (१९३२)

१९१२ की अपनी घोषणा के दुहराव के तौर पर 'फेडरल कौंसिल ऑफ चर्चिज' द्वारा प्रकाशित।

१ सपत्ति की प्राप्ति और उपयोग के बारे में सामाजिक भलाई का ईसाई सिद्धान्त व्यवहार मे लागू करना। सृजनात्मक और सहकारी भावना को आगे सट्टेबाजी और लाभ के उद्देश्य को दबाना।

२ सबकी भलाई के लिए वित्तव्यवस्था और आर्थिक प्रक्रियाओ का सामाजिक नियोजन और नियत्रण।

३ आत्म-सपोषण के अवसर के लिए सबका अधिकार , धन का अधिक विस्तृत और न्यायपूर्ण वितरण, कम से कम जीवन-निर्वाह योग्य वेतन, और इसके ऊपर उद्योग और कृषि की पैदावार मे श्रमिक का उचित भाग।

४ शहरी और देहाती दोनो प्रकार के श्रमिको का श्रम की हानि-जनक अवस्थाओ, और काम करते हुए लगनेवाली चोटो और बीमारियो से बचाव।

५ बीमारी, दुर्घटना, बुढापे मे अभाव और बेरोजगारी के लिए सामाजिक बीमा।

६ उद्योग की उत्पादकता मे वृद्धि के साथ-साथ श्रम के घटो मे कमी, सप्ताह मे कम से कम एक दिन के लिए काम से छुट्टी, आगे और भी छोटे सप्ताह की सभावना।

७ स्त्रियो के काम की दशाओ का ऐसा विशेष नियत्रण जिसमें उनकी परिवार की और समाज की भलाई का आश्वासन मिल सके।

८ सामूहिक मोलभाव और सामाजिक कार्य करने के लिए सगठित होने का कर्मचारियो और मालिको का बराबर अधिकार, उस अधिकार के उपयोग में दोनो की सुरक्षा, समाज की भलाई के काम करने का दोनो का उत्तरदायित्व, किसानो तथा अन्य दलो मे सहकारी तथा दूसरे सगठनो को प्रोत्साहन।

९ बाल-श्रम का निषेध, हर बच्चे की सुरक्षा, शिक्षा आध्यात्मिक विकास और स्वस्थ मनोरजन के लिए पर्याप्त अवसर।

१० पवित्रता के मानदण्ड की दृष्टि से परिवार की सुरक्षा, विवाह,

घर बसाने और पितृत्व के लिए शिक्षा द्वारा तैयारी ।

११ विधि-निर्माण, अर्थ-व्यवस्था, यातायात साधन और किसान के द्वारा खरीदी जानेवाली मशीनरी तथा अन्य सामान की तुलना मे कृषि-उत्पादनो के मूल्य-निर्धारण द्वारा उसके साथ न्याय ।

१२ इस समय शहरी आबादी द्वारा लाभ उठाये जाने वाले प्राथमिक सास्कृतिक अवसरो और सामाजिक सेवाओ का देहाती परिवारो तक विस्तार ।

१३ नशीली चीजो से होनेवाले सामाजिक, आर्थिक और नैतिक अपव्यय से व्यक्ति और समाज का बचाव ।

१४ उद्धार के ईसाई सिद्धान्त को अपराधियो पर भी लागू करना, दड-व्यवस्था, सुधार के उपाय तथा उनसे सबद्ध सस्थाओ और फौजदारी न्यायालयो की कार्य-विधि मे सुधार।

१५ सबके लिए न्याय, अवसर और समान अधिकार, जातिगत, आर्थिक और धार्मिक दलो मे पारस्परिक सद्भाव और सहयोग ।

१६ युद्ध-निषेध, शस्त्रास्त्रो मे कमी, सब विवादो को शातिपूर्ण ढग से तय करानेवाली अतर्राष्ट्रीय सस्थाओ के साथ सहयोग; एक सह-योगी विश्व-व्यवस्था का निर्माण ।

१७ स्वतत्र वाणी, स्वतत्र सभा और स्वतत्र प्रेस की मान्यता और उन्हे बनाये रखना, सत्य की खोज के लिए आवश्यक स्वतत्र बौद्धिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहन ।

प्र० सा० सख्या ८

कैथोलिक सामाजिक कार्य के सिद्धान्त

सामाजिक सिद्धान्तो की यह घोषणा उस बयान का एक अग है जो रोमन कैथोलिक चर्च के अमरीकी बिशपो ने 'कर्म मे ईसाई' विषय पर २० नवम्बर, १९४८ को दिया था ।

मानवीय जीवन ईश्वर मे केन्द्रित है । जीवन को ईश्वर मे केन्द्रित

न कर सकना ही धर्म-निरपेक्षवाद है—जो कि, जैसा हमने पिछले साल संकेत किया था, हमारे ईसाई और अमरीकी जीवन के ढंग को सबसे भयकर खतरा है। हम केवल इसकी व्याख्या और बुराई करने के द्वारा ही इस खतरे का सामना नहीं कर सकते। जीवन के पहलू में जहाँ दैनिक मनोवृत्तियाँ नियामक तत्त्व है—घर मे, विद्यालय मे, काम पर और नागरिक राजनीति मे—इसके विनाशक प्रभाव को हटाने के लिए रचनात्मक प्रयत्न की आवश्यकता है। क्योकि जैसा मनुष्य होता है, मानव समाज की सब संस्थाएँ भी वैसी ही बन जाती है।

नैतिक नियमो पर आधारित ईसाई सामाजिक सिद्धान्त आर्थिक गति-विधियो के विकास मे संघर्ष के बजाय सहयोग और दबाव के बजाय स्वतत्रता की माँग करते है। सहयोग भी संगठित होना चाहिए—सबकी भलाई के लिए संगठित, स्वतत्रता व्यवस्थित होनी चाहिए—सबकी भलाई के लिए व्यवस्थित।

आज श्रम का आंशिक संगठन है—लेकिन सब अपने स्वार्थ के लिए। शायद कुछ बड़े पैमाने पर पूँजी और प्रबंध का भी संगठन है—लेकिन वह भी अपने स्वार्थ के लिए। सामाजिक व्यवस्था के ईसाई दृष्टिकोण से हमें जिस चीज की तुरंत आवश्यकता है वह है सामान्य हित के लिए बनायी गई पूँजी और श्रम की स्थायी सहयोग संस्थाएँ। यह देखने के लिए कि यह संगठन सामान्य हित के अपने उद्देश्य को भूल न जाय, सार्वजनिक हित की जिम्मेदार रक्षक के तौर पर सरकार का भी इसमे भाग होना चाहिए। लेकिन यह भाग प्रेरणा देने, मार्ग दिखाने और नियंत्रण करने का होना चाहिए, न कि सब पर छा जाने का। यह पूरी तरह हमारे संघीय संविधान के अनुकूल है जो सरकार को न केवल 'न्याय स्थापित करने' का अपितु 'सबके हित को बढ़ाने' का अधिकार देता है।

आर्थिक जीवन के संगठित विकास के लिए कैथोलिक सामाजिक दर्शन के पास एक रचनात्मक कार्यक्रम है। लुई तेरहवें द्वारा बनाये गए सामाजिक सिद्धान्तो को पुन स्थापित करते हुए पोप पायस ग्यारहवें ने

इस कार्यक्रम की मोटी रूपरेखा १७ वर्ष पहले सामने रखी थी। उस रचनात्मक कार्यक्रम के अनुसार हम प्रत्येक उद्योग और सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था मे पूंजी और श्रम के अधिकृत प्रतिनिधियो के बीच स्वतत्र रूप से सगठित सहयोग की वकालत करते है। इस पर सरकार का निरीक्षण तो रहना चाहिए पर नियत्रण नही।

स्वतत्र रूप से सगठित सहयोग की इन एजेसियो को व्यावसायिक समूह या उद्योग परिषद् आदि विभिन्न नाम दिये गए है। सामाजिक 'एन्साइक्लिकल्स' (प्रचार-पत्र) के अमरीकी कैथोलिक छात्रो ने इन्हे उद्योग परिषद् कहना पसन्द किया है और वे चाहते है कि हमारी आर्थिक व्यवस्था आर्थिक प्रजातत्र के इसी ईसाई-अमरीकी रूप की ओर विकसित हो। यह विकास तभी सभव है जब अथक परिश्रम और अध्ययन द्वारा, न्याय और परोपकार की भावना के साथ, सम्पत्ति के न्याय-सगत हितो और श्रम के न्याय-सगत हितो की रक्षा की जाय ताकि सबकी भलाई हो सके।

प्र० सा०सख्या ९

'जेहोवाज़ विटनेस' का भविष्यवाणी पूर्ण निर्णय

'रिलिजन इन दि ट्वेण्टिएथ सेंचुरी' मे प्रकाशित 'जेहोवाज विटनेस इन माडर्न टाइम्स' के शीर्षक से दिये गए नेता एन० एच० नौर के बयान से लिया गया; सम्पादक वर्घिलियस फर्म (१९४८) पृ० ३८९।

यह धर्म-युद्ध कोई पार्थिव सेनाओ और सिद्धा-तो के बीच का सघर्ष नही है, अपितु यह एक ऐसा सघर्ष होगा जिसमे स्वर्ग की अदृश्य सेनाएँ आकर लडेगी। अन्त मे जेहोवा ईश्वर और उसके राजा ईसा मसीह की विजय होगी, शैतान और उसके दैत्यो का नाश होगा, पृथ्वी से सारी बुराइयो और बुरे लोगो का सफाया हो जायगा और सब जगह जेहोवा के नाम का प्रतिपादन (जकारिया १४ ३, १२, रिवीलेशन १९ ११ —२१, २० १–३)। जेहोवा ईश्वर इस समय मनुष्यो को पृथ्वी

पर अपने साक्षी द्वारा आने वाले संघर्ष की चेतावनी दे रहा है ताकि ईश्वर के प्रति सद्भाव रखनेवाले लोग ध्यान दे और ईश्वर के संगठन की सुरक्षा के भीतर बचाये जा सके। ऊपर की बात से पता चलता है कि जेहोवा के साक्षियो के विश्वासो और आम संगठित धर्म मे कितनी बडी खाई है। इसका एक मात्र हल ईसा का राज्य है, इस बात की जेहोवा के साक्षी घोषणा करते है। और स्थायी शांति के लिए मार्ग दिखाने की सच्ची इच्छा से सदा घोषणा करते रहेगे। संसार के नेताओं को यह उपाय मूर्खतापूर्ण मालूम देता है, और धर्मदूत पाल ने कहा था कि यह 'उपदेश देने की मूर्खता' जैसा लगेगा लेकिन मनुष्य की बुद्धिमानी ईश्वर की दृष्टि मे मूर्खता है।

प्र० सा० संख्या १०

'पवित्र पिता' से एक श्रुति

'पवित्र पिता शान्ति-मिशन' के प्रकाशन से ग्रहीत जिसका नाम है 'दि न्यू डे' (१४ अक्तूबर १९४४) और चार्ल्स एस० ब्रेडन द्वारा—'ये भी विश्वास करते हैं' (दीज आल्सो बिलीव)—१९४०, पृ० ४३ से उद्धृत।

हे संसार, सुन ! हम तुझे जताना चाहते है कि पवित्र पिता वह ईश्वर है जिसकी पूजा हम करते है। उसने स्वर्ग और धरती की सृष्टि की, उसने ही आध्यात्मिक जीवन को जन्म दिया,
तो फिर पास गडे आलोचना क्यो करे—
उसकी जो तुम्हारी अन्धी आखो को खोल रखता है ?
सुनो ! ठहरो और समझो।
कि तुम्हारा भगवान यही है, आकाश मे नही।
उपदेशक महोदय ! हम जानते है कि इससे तुम्हे चोट पहुँचती है ?
पर आप जानते है, भगवान आपके द्वारा चर्च को गिरजाघर बनाये जाने से तंग आ चुके है।

वह यहाँ आपको उच्च भावपूर्ण शब्दो मे यह दिखाने को तैयार है
और इसीलिए आप मे विद्वेषाग्नि धधक उठी है ।
किंतु पिता करुणाकर है, यदि आप कबूल करे
कि आपने गरीब को कैसे लूटा है, उसकी उन्नति कैसे रोकी हे,
क्योकि भूख के कारण मनुष्य चोरी करता हे
पर आपका समय समाप्त हो चुका, क्योकि भगवान प्रकट हो चुका है।'

प्र० सा० सख्या ११

लाइमैन ऐबट के अनुसार आधुनिकवादी सन्देश

उनके 'थियोलौजी ऑफ एन इवोल्यूशनिस्ट' (१९९७) से लिया गया ।

मनुष्य की आत्मा के अन्दर ईश्वर के निवास के रूप मे धर्म को उन दर्शनो द्वारा ज्यादा अच्छी तरह समझा और बढाया जायगा जो यह माने कि सारा जीवन दिव्य है, और धर्म एक विधि है जिसके द्वारा ईश्वर कुछ निश्चित नियमो के अनुसार और एक स्थायी शक्ति के द्वारा सतत और प्रगतिशील परिवर्तन लाता है । इसके विपरीत जो दर्शन यह मानते है कि कुछ चीजे तो प्राकृतिक नियमो के अनुसार प्राकृतिक शक्तियो द्वारा की जाती है और कुछ दिव्य इच्छा के विशेष दखल के द्वारा, वे धर्म के सच्चे स्वरूप को नही समझ सकेगे ।

नई आलोचना को क्रातिकारी मानने मे पुराना रूढिवाद गलती नही कर रहा है । बाइबिल के लिए यह उतना ही क्रातिकारी है जितना चर्च के लिए प्रोटेस्टेट सुधार था । कभी न छूटनेवाला अधिकार अवाछनीय है । ईश्वर ने अपने बच्चो को यह नही दिया । उसने उन्हे जीवन के रूप मे कही ज्यादा अच्छी चीज दी है । वह जीवन-सघर्ष के द्वारा ही मिल सकता है । पुण्य की तरह सत्य के पास भी जाने का छोटा रास्ता नही है । यह जीवन हमे सघर्ष से बचने के लिए नही अपितु सघर्ष के करने के लिए दिया गया है ताकि हम बढ सके ।

जब हम ईसा के जीवन द्वारा बचाये जाते है तो ईसा का खून ही हमे बचा रहा होता है। ईसा का जीवन ही हमे मिल जाता है। और ईसा का जीवन हमे ऐसे ही मिलता है जैसे कि जीवन मिल सकता है—दुःख और दर्द के द्वार मे से होकर। ईसामसीह के जीवन मे दुःख कोई एक घटे या एकाध साल की घटना नही थी। ईसा के दुःख उठाने से यह शाश्वत तथ्य स्पष्ट होता है कि अनन्तकाल मे ईश्वर ही जीवन का देने वाला है, और इस जीवन-दान का कुछ मूल्य ईश्वर को देना पडता है और कुछ हमे। विकासवाद हमे सिखाता है कि जीवन का कुछ मूल्य है, और औरो को जीवन देना ही वृद्धि का रहस्य है। बाइबिल मे इसी को प्रतिनिहित बलिदान के नाम से कहा गया है। यह मान कर ही ईसाई मजहब इस बात मे विश्वास करता है कि ईसा ने अपनी मृत्यु के बाद अपने शिष्यो को दर्शन दिये ताकि वे मान सके कि हर मृत्यु के बाद आत्मा का पुनरुद्धार होता है।

इसलिए मेरा विश्वास है कि प्रकृति के अध्ययन द्वारा प्राकृतिक विज्ञान ने जीवन के जिन महान नियमो को पता किया है, उनमे और आध्यात्मिक जीवन के नियमो मे बहुत ज्यादा सादृश्य है।

प्र० सा० सख्या १२

सुधारवादी यहूदी धर्म के अनुसार आधुनिकवाद

१८८५ के 'पिट्सबर्ग प्लेटफार्म' की धारा २ तथा ६

हम यह स्वीकार करते है कि हर धर्म मे उस अनन्त की थाह लेने का प्रयत्न किया गया है, और हर धर्म के पवित्र इल्हाम के केन्द्र या पुस्तक मे मनुष्य के अन्दर रहनेवाले ईश्वर की चेतना झलकती है। हम यह मानते है कि पवित्र धर्मग्रन्थो मे पाये जानेवाले ईश्वर के विचार का उच्चतम रूप यहूदी धर्म मे पाया जाता है। अपने-अपने युग की नैतिक और दार्शनिक प्रगति के अनुसार यहूदी शिक्षको ने इसका विकास किया है और इसे आध्यात्मिक बनाया है। हम यह मानते है कि सतत सघर्षो और परी-

क्षाओ के बीच मे यहूदी धर्म ने मानव जाति के लिए केन्द्रीय धार्मिक सत्य के रूप मे इस ईश्वर के भाव की रक्षा की है।

हमारी मान्यता है कि यहूदी धर्म प्रगतिवादी है, और यह हमेशा तर्क के सिद्धान्तो के अनुसार रहने का प्रयत्न करता है। अपने महान् अतीत के साथ अपनी ऐतिहासिक एकात्मकता को बनाये रखने की आवश्यकता मे हमे पूरा विश्वास है। ईसाइयत और इसलाम यहूदी धर्म की सन्तानें है और उन्होने एकेश्वरवाद और नैतिक सत्य को फैलाने मे जो कार्य किया है उसकी हम सराहना करते है। हम स्वीकार करते है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति मे विशाल मानवता की भावना ही हमारी सहायक होगी, इसलिए उन सबके प्रति हम अपनी मित्रता का हाथ बढाते है जो मनुष्यो के बीच सत्य और पवित्रता का राज्य स्थापित करने मे हमारा सहयोग कर रहे है।

प्र० सा० सख्या १३

ईसाई सुधारवाद का सार

चार्ल्स ई० जेफर्सन के 'थिंग्स फंडामेंटल' (१९०३) से उद्धृत

वह श्रद्धा कौन-सी है जिसकी माँग चर्च कर रहे हैं? वह श्रद्धा कौन-सी है जिसका समर्थन 'न्यू टेस्टामेंट' मे किया गया है? सौभाग्य से हिब्रुओ के लिए लिखे गए पत्र के ग्यारहवे अध्याय के पहले छन्द मे हमे इसकी यह परिभाषा मिलती है "श्रद्धा आशा की जाने वाली चीजो का सार है।" ईसा मसीह मे विश्वास ही ईसाई श्रद्धा है। उसमे विश्वास करने का मतलब है यह आशा करना कि वह जो कुछ कहता है उसे कर सकता है। वह कहता है कि वह मनुष्यो को उनके पाप से बचा सकता है। वह कहता है कि मनुष्य उसका अनुसरण कर सकते है और उसके जैसे बन सकते है।

और अब प्रश्न उठता है क्या मनुष्य उसके जैसा बनने की आशा कर सकता है? क्या कोई मनुष्य उस बुद्धि को पाने की आशा कर सकता

है जो ईसा मे थी? क्या कोई मनुष्य उसकी आत्मा, उसकी प्रवृत्ति, उसका स्वभाव पाने की आशा कर सकता है? क्या कोई मनुष्य श्रद्धापूर्ण, पुत्रानुरूप दिव्य जीवन व्यतीत करने की आशा कर सकता है? अगर वह ऐसी आशा नही करता तो इसका कारण है कि वह नैतिक रूप से विकृत हो गया है और अभीप्सा करने की उसकी शक्ति नष्ट हो गई है। वह प्रकाश के बजाय अधकार को ज्यादा प्यार करता है। और यह उसके पापमय कर्मो का ही परिणाम है। आशा न करनेवाला व्यक्ति अपनी भर्त्सना आप कर रहा होता है। और यदि सब मनुष्यो के लिए यह सभव है कि वे ईसा जैसा बनने की आशा कर सके, तो यह भी सभव है कि वे, कम या ज्यादा अनुपात मे, उन कामो को कर सके जिनकी वे आशा करते है। वह एकदम उन तरीको से काम करने लग सकता है जिनसे उसकी आशाएँ पूरी हो सके। अच्छे जीवन का जो मार्ग उसे दिखाया गया है उस पर वह सशक्त कर्म द्वारा चलकर सफल हो सकता है। इस प्रकार श्रद्धा मे दो तत्त्व है आशा, सशक्त कर्म, और ये दोनो ही तत्त्व मानवीय सकल्प के अधीन है। हम आशा कर सकते है, और कम या अधिक सफलता के साथ, आशा को मूर्त रूप भी दे सकते है। और हर मनुष्य जो आशा करता है और उसे मूर्त रूप देता है, श्रद्धा का मनुष्य है।

प्र० सा० सख्या १४

धर्म व्यवस्थापकों और धर्म-शास्त्र के विद्यार्थियों के धर्म-विज्ञानीय विश्वासों की तुलना

ये वे प्रश्न है जो धर्म-व्यवस्थापको और धर्म-शास्त्र के विद्यार्थियो से किये उन छप्पन प्रश्नो मे से चुने गये है जो जार्ज हर्बर्ट बेट्स द्वारा किये गए थे। उनके परिणाम सूचीबद्ध किये जाकर दो सारणियो मे 'सात सौ धर्म-व्यवस्थापको के विश्वास' नामक पुस्तक मे (औक्सफर्ड प्रेस, १९२९) मे तालिका १ और ४, पृ० २६-३० और ५२-५६ मे प्रकाशित किये गए थे।

इसकी व्याख्या पृष्ठ २५ पर इस प्रकार दी गई है "५०० धर्म-व्यवस्थापको के पहले दल मे सख्याओ का विभाजन इस प्रकार था—बैपटिस्ट ५०, लूथरन १०५, मैथोडिस्ट १११, प्रैस्विटेरियन ६३, और अन्य सभी पथो को मिलाकर ४३। नामो और सस्थाओ की सभावित परेशानी से बचने के लिए धर्म-शास्त्रीय विद्यालयो और उनके सम्प्रदायो के नाम यहाँ नही दिये गये है।

इन तालिकाओ को यहाँ मि० हार्लेन सी० बेट्स की अनुमति से प्रकाशित किया जा रहा है जिनके पास इस सामग्री का प्रकाशनाधिकार है।

क्या आपको विश्वास है

	५०० धर्म-व्यवस्थापको का प्रतिशतक			५०० विद्यार्थियो का प्रतिशतक		
	हाँ	?	नही	हाँ	?	नही
२ भगवान तीन विभिन्न व्यक्तित्वो का एक रूप है ?	८०	७	१३	४४	२१	३५
७ सृष्टि-रचना के इतिहास के अनुसार ससार का उद्भव 'जेनेसिस' मे उल्लिखित ढग और समय पर हुआ ?	४७	५	४८	५	६	८९
१०. भगवान कभी-कभी विधान को दूर हटा देते है, और इस प्रकार चमत्कार दिखाते है ?	६८	८	२४	२४	१६	६०
१२. शैतान का अस्तित्व वास्तविक प्राणी के रूप मे है ?	६०	७	३३	९	९	८२
२०. बाइबिल लिखने मे जो प्रेरणा हुई वह अन्य बडे धर्म-ग्रथो की प्रेरणा से भिन्न है ?	७०	५	२५	२६	६	६८

	हाँ	?..	नहीं	हाँ.	.?.	नहीं
२२. बाइबिल लोककथा या पौराणिक कथाओं से बिल्कुल मुक्त है ?	३८	५	५५	४	१	९५
२३ अन्य साहित्यों और इतिहास की आलोचना और मूल्यांकन-सिद्धान्त बाइबिल पर लागू होना चाहिए ?	६७	५	२८	८८	५	७
२४. न्यू टेस्टामेंट निश्चित और निर्भ्रान्त मानदंड है जिससे सभी धर्मों, पंथों या मानवीय विश्वासों की सचाई और अखंडनीयता का निर्णय किया जा सकता है ?	७७	३	२०	३३	१२	५५
२६ ईसा का जन्म कुमारी से पुरुष पिता के संसर्ग बिना हुआ था ?	७१	१०	१९	२५	२४	५१
३२. धरती पर रहते हुए ईसा में वह शक्ति थी कि वे मृतकों को जीवित कर देते थे ?	८२	९	९	४५	२८	२७
३४. ईसा मरने और दफन होने के बाद फिर सचमुच उठ बैठे और कब्र खाली हो गई ?	८४	४	१२	४२	२७	३१
३७. स्वर्ग वास्तविक स्थान के रूप में स्थित है ?	५७	१५	२८	११	२०	६९
३८ नरक वास्तविक स्थान के रूप में स्थित है ?	५३	१३	३४	११	१३	७६
३९ मृत्यु के बाद जीवन जारी रहता है ?	९७	२	१	८९	७	४

		हाँ	?	नही	हॉ	?	नही
४०	इस शरीर के पुनरुत्थान के रूप मे ?	६२	५	३३	१८	१३	६९
४४	धरती पर रहनेवाले सभी प्राणियो के लिए निर्णय का एक अन्तिम दिन होगा ?	६०	८	३२	१७	१६	७७
४९	सभी मनुष्य आदम की सन्तान होने के कारण ऐसे स्वभाव के साथ पैदा हुए है जो बिल्कुल विपरीत और भ्रष्ट है ?	५३	४	४३	१३	७	८०
५०	प्रार्थना मे वह शक्ति है जो प्रकृति की दशा मे परिवर्तन कर सकती है—जैसे अनावृष्टि मे ?	६४	११	२५	२१	२२	५७
५१	दूसरो के लिए प्रार्थना करने पर उनके जीवन पर असर पडता है; चाहे वे यह जाने या नही कि उनके लिए प्रार्थना की जा रही है।	८३	९	८	५८	२५	१७
५२	भगवान पवित्रात्मा व्यक्तियो के माध्यम द्वारा मानव जीवन पर प्रभाव डालता है ?	९४	१	५	८२	११	७
५६	व्यक्तिगत विश्वास और सम्प्रदाय कुछ भी हो जो व्यक्ति ईश्वर को प्रेम करते हैं और मनुष्यो के साथ उचित व्यवहार करते है वे ईसाई चर्च मे स्वीकार किये जाने के लायक हैं।	५६	५	३९	८५	४	११

प्र० सा० संख्या १५

प्रेज़ीडेंट इलियट का प्राधिकारवाद पर आक्रमण

'थियॉलोजी एट दि डॉन ऑफ् दि ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी' (१९०१) मे चार्ल्स इलियट के लेख पर आधारित

पिछली शताब्दी मे न केवल बाइबिल की प्राधिकारिता (अथारिटी) मे कमी हुई है, अपितु राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षिक और घरेलू सभी प्रकार की प्राधिकारिता की शक्ति कम हो गई है। अवनत होती हुई प्राधिकारिताओं का स्थान कौन ले रहा है? मेरे विचार मे ससार मे बहुत अधिक प्राधिकारिता की सत्ता रही है जब कि स्वतन्त्रता और प्रेम अपर्याप्त रहे हैं। पिछली शताब्दी मे एक प्रकार की प्राधिकारिता का प्रभाव बढता रहा है और यह है विकसित होते हुए सामाजिक भाव की प्राधिकारिता।

वैयक्तिक मुक्ति के उद्देश्य को जिस पर कि व्यवस्थित धर्म-शास्त्र ने शताब्दियो तक इतना बल दिया था, समाज-शास्त्र ने छोड दिया है। वास्तव मे यह उद्देश्य एक स्वार्थपूर्ण उद्देश्य ही है, चाहे यह इस लोक के बारे मे हो या परलोक के। हमारे छोटे-से पार्थिव जीवन के लिए इसका जो भी महत्त्व है उससे बढकर इसका महत्त्व अनत जीवन के लिए नही हो सकता। समाज-शास्त्र ने यह समझ लिया है कि अब आम जनता को इस ससार मे दुख सहने के लिए इस बात के झूठे प्रलोभन देकर तैयार नही किया जा सकता कि उन्हे अगले ससार मे बहुत-से सुख मिलेगे। जब लोग इस ससार के सुखो की जोर-जोर से मॉग करने लगते है तो समाज-शास्त्र की पूर्ण सहानुभूति उनके साथ होती है। अब तो जन-साधारण भी यह समझने लगे है कि इस ससार मे उनकी दरिद्रता उन्हे इस लोक या परलोक के अच्छे आनन्दो का उपभोग करने के लिए बडी आसानी से अयोग्य बना सकती है, क्योकि इस दरिद्रता से उन मानसिक तथा नैतिक क्षमताओ का विकास रुक जाता है जिनके द्वारा उच्च

आनन्द की प्राप्ति होती है। आजकल का समाज-शास्त्र उस देवदूत की तरह सोचता है जो कि अपने एक हाथ मे मशाल और दूसरे मे पानी से भरा एक वरतन लेकर चला था, ताकि एक से वह स्वर्ग को जला सके और दूसरे से वह नरक की आग बुझा सके, और इस तरह मनुष्यो को न तो स्वर्ग की आशा रहे और न नरक का डर।

प्र० सा० सख्या १६

आधुनिकवाद के परे फॉस्डिक के विचार

अपने 'रिवर साइड चर्च' मे दिये गये एक बहुप्रचारित तथा 'क्रिश्चियन सेचुरी' मे ४ दिसम्बर को प्रकाशित एक आत्मस्वीकारात्मक उपदेश मे उदारवादियो के प्रसिद्ध नेता हैरी एमर्सन फॉस्डिक ने यह माना था कि एक आधुनिकवादी धर्म-शास्त्र ससार के सकट का सामना करने के लिए अपर्याप्त था। अपने उदारवाद को छोड़े विना वह उन लोगो के दल में शामिल हो गया जो कि अधिक निश्चित तथा स्पष्ट ईसाई सन्देश की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे।

क्योकि मैं एक आधुनिकवादी रहा हूँ और अव भी हूँ, इसलिए यह उचित ही है कि मैं यह स्वीकार कर लूं कि मानव केन्द्रित सस्कृति के साथ अपना सवध वैठाने के लिए आधुनिकवादी आन्दोलन ने ईश्वर के विचार को वहुत हल्का कर दिया है। उसके अनुयायी प्राचीन एथेलियन लोगो के समान मानो एक ऐसे ईश्वर की पूजा के लिए वेदी पर खडे है जिससे वे अपरिचित है। इस वात पर चर्च को आधुनिकवाद से आगे जाना पडेगा। इस वाद ने मनुष्यो को वहुत लवे समय तक सव कुछ देने का प्रयत्न किया है। हमने अपने आप को काफ़ी वदला है और दूसरो मे समझौता भी किया है। कभी-कभी हम इतना झुक गये है कि हमारी वातो से ऐसा लगने लगा कि मानो ईश्वर की प्रशसा मे सवसे ऊँची वात यही कही जा सकती थी कि कुछ वैज्ञानिक उसमे विश्वास करते है। फिर भी इस सारे समय मे हमारा एक स्वतत्र आधार और

अपना सन्देश रहा है जिसके अनुसरण मे ही मानव जाति की एकमात्र आशा है ।

प्र० सा० सख्या १७

युवा अमरीकी साधुओं के लिए प्रार्थना

प्रोटेस्टेंट एपिस्कोपल चर्च की भजनावली से गृहीत

मै भगवद्भक्त सतो का भजन गाता हूँ
जो धैर्यवान, शूर और सच्चे है,
जो श्रमपूर्वक लडे और जिये-मरे
केवल उस ईश्वर के लिए जिसे वे प्रेम करते और जानते थे ।
इन सतो मे—एक था चिकित्सक और एक थी रानी,
और एक हरियाली मे भेडें चरानेवाली थी
वे सभी भगवान के भक्त थे—अर्थात्
भगवान की सहायता से एक भी होनेवाले थे ।

• • •

वे बहुत दिनो पहले नही थे,
फिर भी लाखो वरम होने आये,
ससार इन आनन्दी सतो से प्रकाशित है
जो ईशू की इच्छानुसार प्रेमपूर्वक आचरण करते हे ।
आप उन्हे विद्यालय मे मिल सकते है, गलियो मे या समुद्र मे,
चर्चो मे, गाडियो मे, दुकानो मे या चायघर मे,
क्योकि भगवद्भक्त सत मेरी ही तरह है,
और मैं भी वैसा होना चाहता हूँ ।

प्र० सा० संख्या १८

एक मैथाडिस्ट पादरी द्वारा पूजा मे 'कॉपर निकन (पूर्ण) क्रांति, की घोषणा

फ्लायड एस० कैनी की पुस्तक 'दि रिलिजन ऑफ ह्यूमन प्रोग्रेस' (१९४०) से उद्धृत

धर्म अपनी प्रकृति मे एक कला है। इसका सबध भी सृजनशीलता से है। इस सृजनशील जीवन के विभिन्न रूप सामने आते है और इसका सच्चा मूल्य सस्थाओ और कृत्यो के साथ जुडता चला जाता है। मनुष्य के सृजनशील मन और आत्मा के एक स्वरूप के तौर पर जब धर्म को देखा जाता है तो इसके ढाँचो और कृत्यो पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। एक बार जब धार्मिक सस्थाएँ सस्कृति के दायरे मे आ जाती हैं तो धर्म पूरी तरह से सास्कृतिक परिवर्तनो के सिद्धान्तो के अधीन हो जाता है।

इसलिए एक प्रकार से धर्म का अध्ययन भी उसी आलोचनात्मक दृष्टिकोण से होना चाहिए जिसमे कला का होता है। इसको पैदा करने वाली सस्कृति के प्रसग मे ही इसे समझना और आँकना चाहिए। जहाँ तक धर्म का सबध प्रेरक आदर्शो और जीवन के सामाजिक उद्देश्यो से है, उसका मूल्य उस सस्कृति की सफलता से आँकना चाहिए जिसका यह महत्त्वपूर्ण अग है।

अब तो एक वैज्ञानिक तथा प्रजातत्रीय सस्कृति मे निहित मानवीय मूल्यो की पूर्ण प्राप्ति की ओर मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन को चेतन और सशक्त दिशा देना धर्म का ही कार्य हो गया है। यह बात पूरी तरह से स्वीकार की जाती है कि इस तरह के दृष्टिकोण का मतलब सस्थागत धर्म मे एक 'कॉपर निकन' क्राति लाना होगा। तो भी हम यह नही मानते कि इस दृष्टिकोण और इसके आधार पर किये गये धार्मिक पुनर्निर्माण का मतलब धर्म के गहरे जीवन से सबध तोडना है। इस प्रकार की खोज

के लिए मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति को जगाने से ज्ञान तथा प्रेरणा दोनों ही प्राप्त होती है।

प्र० सा० संख्या १९

विलियम जेम्स द्वारा आधुनिकवादी तपस्या की सिफारिश

उसकी पुस्तक 'वेरायटीज ऑफ रिलिजस एक्सपीरिएंस' (पृष्ठ ३६४-३६९) से उद्धृत। इस उद्धरण का संबंध साम्राज्यवादी युद्ध पर उसके विचारों से है।

यद्यपि बुद्धि द्वारा क्रूस की नादानी की व्याख्या नहीं की जा सकती, तो भी इसका एक अक्षुण्ण और सशक्त अर्थ है। पहले समय के कम बुद्धि वाले लोगों ने इसको चाहे कितना ही तोड़ा-मरोड़ा हो, तो भी मेरा विचार है कि तपस्या का संबंध सत्ता के वरदान को उपयोग में लाने के गंभीर तरीकों के साथ मानना चाहिए। इसकी तुलना में प्रकृतिवादी आशावाद शब्दाडंबर-पूर्ण तथा सारहीन प्रतीत होता है। धार्मिक व्यक्तियों के रूप में हमारा काम तपस्वीपन की प्रवृत्ति की ओर से पीठ मोड़ लेने से नहीं चलेगा, जैसा कि आजकल हममें से कुछ कर रहे हैं, अपितु हमें इसके लिए कोई मार्ग खोजना होगा ताकि कष्ट और कठिनाइयों के रूप में उसके परिणाम वस्तु-गत रूप में उपयोगी बन सकें। आज जिस भौतिकवादी विलास और संपत्ति की पूजा की जा रही है और जो हमारे युग की भावना का इतना बड़ा अंग बन गई है क्या उससे कुछ स्त्रैणता नहीं आती जा रही है? जिस प्रकार के लाड़-प्यार में हमारे बच्चे पल रहे हैं—जो कि सौ वर्ष पहले के, विशेष-कर धार्मिक क्षेत्रों की शिक्षा से भिन्न है—क्या उसमें सारे लाभों के बावजूद, यह खतरा नहीं है कि वह हमारी नस्ल में एक प्रकार का कच्चापन ले आयेगा। आपमें से बहुत-से ऐसे खतरों को स्वीकार करेंगे, लेकिन वे खेल-कूद, सैनिक-शिक्षा और व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय साहसिक कार्यों को उसका इलाज बतायेंगे।

आजकल ताप के यांत्रिक तुल्याग के बारे में बहुत कुछ सुनाई पड़ता

है। हमे सामाजिक क्षेत्र मे युद्ध का नैतिक तुल्याग खोजना है। यह कोई ऐसी वीरतापूर्ण चीज होनी चाहिए जो मनुष्यो को युद्ध की तरह व्यापक सन्देश दे सके, और फिर भी इसका मेल उनकी आध्यात्मिक चेतना के साथ भली प्रकार बैठ सके। मैंने कई बार सोचा है कि भिक्षुओ की तरह पुरानी निर्धनता की पूजा मे युद्ध के नैतिक तुल्याग जैसी कोई चीज मिल सकती, जिसे हम खोज रहे है। क्या कमजोर लोगो को कुचलने की आवश्यकता हट नही सकती और क्या निर्धनता को स्वेच्छा से स्वीकार किया हुआ 'कठोर जीवन' नही माना जा सकता।

निर्धनता वास्तव मे कठोर जीवन ही है, यद्यपि इसमे सेनाओ के से बाजे तथा पोशाके नही होती और न इस पर भारी भीड की तालिया ही पिटती है। लेकिन जिस प्रकार धन प्राप्त करना एक आदर्श के रूप मे हमारी पीढी की मज्जा मे घुमता चला जा रहा है उसे देखकर यह विचार अवश्य आता है कि निर्धनता मे विश्वास को फिर से जगाने की आवश्यकता है, इसी के द्वारा सैनिक साहस को वह आध्यात्मिक स्वरूप मिल सकेगा जिसकी हमारे समय को सबसे अधिक आवश्यकता है। .

सोचिए तो सही कि यदि हम अपनी व्यक्तिगत निर्धनता की ओर से उदासीन होकर अपने आप को कुछ अलोकप्रिय कामो की ओर लगाएँ तो हमे कितनी शक्ति मिलेगी। फिर हमे अपनी आवाज दवाकर रखने की आवश्यकता नही रहेगी, और न किसी क्रातिकारी या सुधारवादी व्यक्ति को अपना मत देते हुए डर लगेगा। हमारा कोश क्षीण हो जाये, उन्नति की हमारी आशाएँ मिट जाएँ, हमारा वेतन रुक जाये, हमारे क्लब के दरवाजे हमारे लिए बन्द हो जाएँ, तो भी जबतक हम रहेगे एक अविचल आत्मिक शक्ति हमारे अन्दर होगी, और हमारे उदाहरण से हमारी पीढी के स्वतत्र होने मे सहायता मिलेगी। कार्य के लिए धन की आवश्यकता अवश्य होगी, लेकिन इसके सेवक के रूप मे हम उतने ही समर्थ होगे जितने कि अपनी गरीबी से हम सन्तुष्ट होगे।

मैं इस बात पर गभीर विचार करने की आपसे सिफारिश करता

हूँ, क्योकि यह निश्चित है कि हमारे शिक्षित वर्ग के बीच मे विद्यमान गरीबी का डर हमारी सभ्यता की सबसे बुरी नैतिक बीमारी है।

प्र० सा० सख्या २०

आध्यात्मिक शक्ति और गुप्त ज्ञान

'दि टैम्पल आर्टीजन' (१९४९ और १९५१) मे से कहीं-कहीं से संगृहीत

"ईश्वर ही अपना पवित्र मन्दिर है सारी पृथ्वी उसके सामने मौन रहे।"

कई शताब्दियो से असख्य चर्चों की प्रार्थनाओ के प्रारभ मे ये शब्द ईसाई धर्म के अनुयायियो द्वारा बोले जाते रहे है। क्या आपने कभी सोचा है कि इन शब्दो को बोलने वाले पादरियो मे से कितने उनकी सही ढग से व्याख्या कर पाये ? . यह प्रकट विश्व ही वस्तुत मन्दिर है, लेकिन इसके छोटे भेदो मे पदार्थ का प्रत्येक अणु, शक्ति और चेतना का भी समावेश होता है, प्रत्येक जीवित वस्तु या प्राणी हमारे अन्दर रहने वाली ईश्वर की आत्मा का छोटा मन्दिर है। केवल मौन मे, प्रत्येक पवित्र मन्दिर के अन्तरतम भाग मे ही ईश्वर अपनी आत्मा को प्रकट कर सकता है, और एक सगठन के रूप मे मन्दिर के गुह्य, पवित्र मौन मे ही उसके किसी सदस्य को उसकी भव्यता, शक्ति और महिमा का ज्ञान पाने की आशा हो सकती है। १८९८ मे इस पृथ्वी पर के सम्पूर्ण जीवन के लिए एक अवतार का प्रादुर्भाव हुआ। सृष्टि-चक्र की आवश्यकता के कारण 'रेड रे' के शासक मास्टर हिलेरियन ने ६ अन्य दीक्षित व्यक्तियो की सहायता से 'दि टैम्पल ऑफ दि पीपुल' का केन्द्र स्थापित किया। सृष्टि-चक्र मे कुछ कारण ऐसे है जिनसे यह मन्दिर लगातार एक हृदय केन्द्र के रूप मे कार्य करेगा, इसके द्वारा ही बडे बडे सगठनो मे पुनर्निर्माण का बीज बोया जायेगा।

अमरीका एक नयी जाति का पालना है, कैलीफोर्निया उस जाति की पहली मातृभूमि है और आने वाली जाति का मक्का 'लांग

सेण्टर' है।

आजकल जो विभिन्न प्रकार की शक्तियो मे पारस्परिक सघर्ष दिखाई दे रहा है, उनके बीच एक नई प्रकार की अवतारी शक्ति प्रकट हुई है—यह शक्ति ब्रह्माण्डीय और मानववादी, घाव भरनेवाली तथा प्रकाश देनेवाली, अवैयक्तिक तथा एक बनाने वाली है वर्तमान चक्र मे मनुष्य जाति को परेशान करने वाली शक्तियो के अनेक रूप है जिनका अन्ततोगत्वा सबध कर्म और कलियुग—अर्थात् लोहे के युग से है। परिवर्तन के वर्तमान काल मे अवतारी प्रकाश प्रकट हो रहा है और ईसा का विरोध सामने आ रहा है। इसलिए यह अच्छे ओर बुरे मे भेद करने का समय है। यह सघर्ष ससार के प्रकाश और युग की शक्तियो के बीच है। वास्तव मे ही यह एक धार्मिक युद्ध है इसीलिए सारे ससार मे, विशेषकर अमरीका और पश्चिम मे एक आदर्श विषयक जोश दिखाई दे रहा हे। और बुद्धिवादी ससार के ओर 'लॉज' के समाजविज्ञानियो मे यह बडा अन्तर है कि एक की दशा मे अध्ययन की प्रक्रिया क्षैतिज है और दूसरे की दशा मे ऊर्ध्वाकार। एक दशा मे इसका मानसिक ज्ञान के क्षेत्र मे चारो ओर विस्तार होता है, जबकि दूसरी दशा मे चेतना और चेतन होने के विभिन्न रूपो की गहराई तथा ऊँचाई मे वृद्धि होती है। दूसरा मार्ग दीक्षा का और शिष्यत्व का मार्ग है। यह एक कठिन है, लेकिन कभी-कभी व्यक्ति के लिए केवल यही एक मार्ग खुला रह जाता है। एक औसत दर्जे के आदमी के लिए श्रद्धा केवल एक विश्वास है, पर प्रगति करते हुए रहस्यवादी के लिए यह बिजली के समान व्यापक रूप से विस्तृत शक्ति है जो प्रत्येक प्रकट प्राणी से चारो ओर फैलती है। साथ ही प्रत्येक प्राणी का भी बीजाकुरण, वृद्धि, अभिव्यक्ति तथा अन्तिम विलय द्वारा विकास होता रहता है।

पहाडो को हिला देने वाली शक्ति प्रत्येक दीक्षित व्यक्ति को और अन्त मे प्रत्येक आकाक्षी को प्राप्त होती है।

इस अवतारी चक्र मे एक ऐसी बात है जो जल्दी या देर मे सभी राष्ट्रो को समझनी पडेगी, कि ससार मे न्याय का ही शासन है। यह प्रकाश

के पूर्ण आविर्भाव का चक्र है जिसमे सभी वस्तुएँ खुले मे प्रकाशमान हो जायेगी और मानवता का प्रथमजात पुत्र और प्रकाश-पुत्र ईसा उन्हे देखेगा। ससार मे न्याय लाना भी उसके ही कार्य का एक अग है। . और जब तक हम ऊपर के प्रकाश का धारण और नीचे के पशु-मानव की शक्तियो का उच्चतर उपयोग के लिए नियत्रण नही कर सकते, तब तक हम छोटो को सहायता नही कर सकेंगे। जिस व्यक्ति पर भौतिकता, सवेग और मानसिकता छाई हुई है, उसे यह कुजी नही मिलेगी, केवल निर्द्वन्द्व व्यक्ति को ही यह मिल सकेगी। लेकिन एक बार मिल जाने पर यह कुजी एक ऐसे स्थान का दरवाजा खोल देती है जहाँ व्यक्तियो की भिन्नता नही रहती और जहाँ सदा एकता, भ्रातृत्व और आत्मिक केन्द्रीकरण विद्यमान रहता है। ऐसे स्थान मे हर किसी को यह अनुभव होता है कि जैसा उसका भाई या बहिन है या जैसा वे करते है वह स्वय वैसा है या वैसा करता है, क्योकि हम सभी एक है और हममे कोई अलगाव नही है। मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति के बीच सार्वभौम प्रेम का एक पुल बनाने की बडी आवश्यकता है।

बौद्धिक पुनर्निर्माण

आजकल के युवक को इस शताब्दी के पहले दशक की श्रद्धा के बारे मे समझाना कठिन काम है। वास्तव मे १९०० की आत्म-तुष्टि के बजाय १८०० का विभ्रम अधिक आसानी से समझ मे आ सकता है। इस आत्म-तुष्टि के दो रूप थे, एक उग्र, दूसरा रूढिवादी, एक आधुनिक, तो दूसरा बाइबिल का अनुयायी, लेकिन ये दोनो ही धार्मिक विश्वास की अभिव्यक्ति थे। उस युग के एक मुख्य प्रवक्ता, जॉर्ज ए० गॉर्डन ने लिखा था, "हमारे समय का जीवन आशावाद पर टिका हुआ है।" अवश्य ही वह इस बात को मानकर चल रहा था कि धार्मिक विचार अपने समय की भावना का सूचक है। उन्ही डॉलर की तरह जो कि उन दिनो भी प्रचलन मे था हमारे पुरखों के विश्वास के दो पहलू थे और तत्त्व एक ही था। एक तरफ तो भलाई करने वाले ईश्वर मे विश्वास था, और दूसरी ओर था आत्म-विश्वास अर्थात् प्रगति मे, स्वतत्र आदान-प्रदान मे, सही मार्ग पर होने मे और सत्य का सार समझे हुए होने मे विश्वास।

बाइबिल पर आत्म-तुष्टिपूर्ण भरोसा

बाइबिल के बारे मे आत्म-तुष्टि की विशेष व्याख्या करने की आवश्यकता नही है, क्योकि यह अब भी चली आ रही है और सब लोग इसके बारे मे कुछ न कुछ जानते है। १९०० तक प्रोटेस्टेटो, कैथोलिको और सुधारवादी यहूदियो के द्वारा ओल्ड टेस्टामेट की थोडी-बहुत ऐतिहासिक आलोचना आमतौर से स्वीकार की जाने लगी थी। जहाँ तक यह अक्षरश प्रेरणा मे विश्वास को चोट पहुँचाता था वहाँ तक पादरी तथा शिक्षित जन-साधारण इसका स्वागत करते थे, क्योकि धर्म-शास्त्रो की अक्षरश प्रेरणा मे विश्वास से जितनी समस्याएँ सुलझती नही थी, उससे अधिक खडी हो जाती थी।

यदि बाइबिल मे लिखे गए सभी वाक्यो के शाब्दिक सत्य मे धार्मिक प्रामाणिकत्व को अलग किया जा सकता तो यह बहुत ही अच्छी बात होती। धार्मिक अमरीकियो मे से अधिकाश के लिए बाइबिल 'ईश्वर का शब्द' थी, यह उनके लिए प्रसन्नता तथा मुक्ति दोनो की ही सच्ची और विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक थी। ऐसा कोई कारण नही बताया जा सकता था कि ईश्वर का इरादा बाइबिल को विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक बनाने का क्यो हो, विज्ञान मानवीय छान-बीन और आविष्कार का परिणाम है और यह पूरी तरह मनुष्य के बस की बात है। लेकिन 'तौरा' और 'गौस्पल' मे जीवन के जो नियम बताये गए है वे तो ऊपर से ईश्वरीय प्रकाश द्वारा मिले है। यदि बाइबिल का एक प्रामाणिक शास्त्र के रूप मे सम्मान किया जाता है तो वह इसलिए नही कि उसमे निर्भ्रान्त ज्ञान है, बल्कि इसलिए कि वह उन मामलो मे विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक है, जिनमे निर्णय की आवश्यकता होती है। बाइबिल के सत्य को प्रायोगिक विज्ञान से अलग करने के द्वारा धर्म-निरपेक्ष तथा पवित्र दोनो प्रकार की विद्याएँ एक दूसरे की दखलदाजी मे बच गई। अब व्यावहारिक अनुशासन के मामलो मे विचार की स्वतन्त्रता के साथ-साथ प्रामाणिक सलाह या आज्ञा भी रह सकती थी। अब बाइबिल की रूढिवादी आलोचना की आत्म-तुष्टि के साथ इस तरह व्याख्या की जा सकती थी कि उसमे आधारभूत सत्यो की पुष्टि ही होती है और साथ ही साथ १९वी शताब्दी के विज्ञान और धर्म मे जो युद्ध चला था, उसकी समाप्ति भी हो जाती है। 'न्यू टेस्टामेंट' की उग्र तथा ऊँचे स्तर की आलोचना को, जिसने विदेश मे ईसाई विश्वास के मूल पर ही कुठाराघात कर रखा था, अमरीका मे बहुतो के द्वारा गभीरता से नही लिया जाता था। कहा जाता था कि यह तो विशेषज्ञो की दिमागी उडान है। बाइबिल की प्रामाणिकता के बारे मे इस प्रकार की आत्म-तुष्टि पहले की शताब्दियो की बाइबिल विषयक रूढिवादिता या कट्टर धर्मज्ञान से भिन्न थी, क्योकि बाइबिल पर इस प्रकार के अस्पष्ट भरोसे से साम्प्रदायिक विवादो और मतो पर अत्यधिक बल देने की प्रवृत्ति को समाप्त किया जा रहा था। ऐसा

माना जाता था कि वाइविल से न केवल वहुत-से ईसाई सम्प्रदाय अपने धर्म-शास्त्रीय भेदो के वावजूद पास-पास आते जा रहे थे, वल्कि इससे ईसाई और सुघारवादी यहूदी भी एक दूसरे के निकट आ रहे थे। इन कारणो से वाइविल प्रार्थना-वेदी और धार्मिक शिक्षा दोनो के लिए केन्द्रीय वनी रही। कालेजो मे भी धर्म के वारे मे प्रारभिक (और आमतौर पर एक-मात्र) कोर्स वाइविल की पढाई के रूप मे होता था। शताब्दी के प्रारभ के वर्षो मे लिखी गई 'वाइविल की भूमिकाओ' पर दृष्टिपात करने से पाठक को आसानी से पता चल जायगा कि किस आत्म-तुष्टिपूर्ण और 'रचनात्मक' भावना से वाइविल का अध्ययन किया जा रहा था। वास्तव मे तो कक्षा की पढाई और धार्मिक उपदेशो मे अतर दिखाई नही देता था। लेकिन धार्मिक दृष्टि से वाइविल की पढाई को आवश्यक वना दिये जाने से भी उन लोगो को तसल्ली नही मिली जो किसी प्रकार की निर्भ्रान्त उच्च सत्ता पर भरोसा करना चाहते थे। ओर इस प्रकार की वहुत-सी कातर आत्माओ के लिए सवसे आसान रास्ता किसी निर्भ्रान्त चर्च की शरण लेने का था। अगर भ्रान्ति के दूर होने से तकलीफ होती है, जैसी कि एक स्वस्थ मन को होनी नही चाहिए, तो उसका एकमात्र इलाज किसी प्रकार का नशा है। प्रोफेसर वाल्टर एम० हॉर्टन ने, जिसने 'निर्भ्रान्तता के विना प्रामाणिकता' को खोजने का अधिक कठिन मार्ग अपनाया है, इस उलझन के वारे मे वडी वुद्धिमानी से कहा है

अगर यह पूछा जाय कि ऐसा व्यक्ति जो 'निर्भ्रान्ति के ईडन वाग' को पीछे छोड चुका है, कैसे उस तक वापिस लौट सकता है, तो इसका उत्तर है कि उसे कुछ चक्कर लगाकर वापिस जाना होगा। ऐसे प्रोटेस्टेट जिनकी भ्रान्ति दूर हो गई है, लेकिन जिनका विश्वास अभी निर्भ्रान्त वाइविल मे नहीं जगा है, निर्भ्रान्त चर्च की आवाज़ को आकर्षक पाते हैं, क्योंकि वह उनके लिए अपरिचित है। ऐसा व्यक्ति, जिसकी भ्रान्ति दूर हो गई है, जिस एक सभावना पर विचार नहीं करता है वह है उसके पुरखो की श्रद्धा; और फिर भी, छिपे तौर पर एक घुमावदार मार्ग द्वारा, वह उसी की ओर

लौटने का प्रयत्न कर रहा है।

आत्म-तुष्ट आधुनिकवाद

बीसवीं सदी के प्रारंभिक भाग का आत्म-तुष्ट जगवाद या आधुनिकवाद एक पूरी तरह भिन्न विश्वास था। कुछ थोड़े प्रतिशत ईसाई ही इसके अनुयायी थे यद्यपि सुधारवादी यहूदियों में इसका प्रचलन काफी था। इसका मुख्य अमरीकी स्रोत न्यू इंगलैंड का अतीन्द्रियवाद और निरपेक्ष आदर्शवाद था जिसके साथ विकासवादी उत्साह का एक संवेगी रूप जुड़ गया था। ऐसा धर्म वास्तव में न तो यहूदी था, न ईसाई, यह धर्म-निरपेक्षवाद का ही एक छिपा रूप था। जोन फिस्क ने विकासवाद को 'काम करने का ईश्वर का ढंग' बताकर उसका तीखापन बहुत कुछ दूर कर दिया था, और बहुत-से धर्मशास्त्रियों ने सृष्टीय विकास को धार्मिक चोला पहनाने का और वेदी पर से इसका उपदेश देने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इधर न्यू इंगलैंड के उदार धर्मशास्त्रियों में 'न्यू थियोलोजी' (नये धर्म-शास्त्र) का विकास हो रहा था जिसका मुख्य उद्देश्य 'काल्विनिज्म' और 'प्यूरिटनिज्म' की रूढ़िवादी प्रवृत्तियों को समाप्त करना था।

इन दोनों दलों से कम चरमसीमा पर होरेस बुशनैल द्वारा चलाया हुआ मत था जिसका नेता थियोडोर टी० मंजर था। 'न्यू थियोलोजी' की इसके द्वारा की गई व्याख्या उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में उपदेश किये जानेवाले ईसाई धर्म-शास्त्र का सबसे संतुलित विकासवादी वर्णन है। ध्यान दें कि यह नया सिद्धान्त भी कितना रूढ़िवादी प्रतीत होता है

'न्यू थियोलोजी' चर्च के ऐतिहासिक विश्वास से अलग नहीं हो जाती, बल्कि वह विकास की प्रक्रिया के साथ इसकी संगति बैठाने का प्रयत्न करती है। अंधाधुंध छलांगों के बजाय यह धीमी तथा सृष्टीय विकास के साथ की प्रगति में विश्वास करती है। नये धर्म-शास्त्रियों के साथ-साथ पुरानों से भी इसका संबंध है और औगस्टाइन के धर्म-शास्त्र के बजाय प्रारंभिक यूनानी धर्म-शास्त्र के भावों से इसकी संगति ज्यादा बैठती है।

पिछले चर्चों के विशेष सिद्धान्तो को वह अस्वीकार नही करती। यह त्रिमूर्ति (ट्रिनिटी) मे विश्वास करती है, लेकिन ऐसी त्रिमूर्ति मे नही जो केवल औपचारिक हो या मनोवैज्ञानिक रूप से असंभव हो। ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता को यह स्वीकार करती है, पर उसे यह अपनी प्रणाली का आधार स्तभ नहीं बना लेती है और उसे गतिमय के बजाय एक नैतिक आधार देना पसद करती है। अवतार को यह केवल भौतिक घटना ही नही मानती, बल्कि यह स्वीकार करती है कि इसके द्वारा एक व्यक्ति के माध्यम से मानवता का उद्धार करने वाली शक्ति ससार मे प्रवेश करती है। प्रायश्चित्त इसके लिए एक दिव्य कार्य और नैतिक व्यावहारिक महत्त्व की प्रक्रिया है; यह कोई संसार के सघर्ष से परे के स्वर्ग का रहस्य नहीं है, बल्कि ससार को पाप से मुक्ति दिलाने की एक व्यापक शक्ति है। पुनरुद्धार के बारे मे यह मानती है, यह मनुष्य स्वभाव के सभी तत्त्वो पर लागू होता है, और अन्तिम न्याय के बारे मे इसका विचार है कि उसका संबध नैतिक स्वभाव के विकास से है। इस प्रकार यह इन धार्मिक सिद्धान्तो से उनके तत्त्व को व्याख्या द्वारा अलग नहीं कर देती, न उनके महत्त्व को कम करती है, और न यह उन्हे धर्म-शास्त्रो मे प्रकट किये गए और चर्च तथा ससार के इतिहास मे विकसित किये गए रूप से किसी भिन्न रूप मे उन्हे प्रस्तुत करने की कोशिश करती है।

यद्यपि इस प्रकार के सिद्धान्त का उपदेश ईसाई वेदियो से दिया जाता था और इस पर बाइबिल का मुलम्मा चढाने की कोशिश भी की गई थी, पर वास्तव मे इसका तत्व विज्ञान के दर्शन से ही लिया गया था। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दशक मे ऐसा सिद्धान्त वास्तव मे एक 'नया धर्म-शास्त्र' था क्योंकि यह ईसाई धर्म को एक नये रूप मे प्रस्तुत कर रहा था, लेकिन बीसवी सदी के प्रारभिक दशको मे यह उपदेश वास्तव मे धर्म-शास्त्र विरोधी हो गया और तब ईसाइयत से बढकर किसी सार्वभौमिक धर्म की माँग होने लगी। बाइबिल की विश्वासपरक व्याख्याएँ अब उबाने वाली और अप्रासगिक लगने लगी। ईसाइयो और यहूदियो के अपने-अपने विशिष्ट सिद्धान्तों

के बारे मे माना जाने लगा कि वे विश्वास की बाते है और उनसे ईश्वर की सार्वभौम तथा युक्तिसगत पूजा पर प्रतिबध ही लगता है। १८९३ मे शिकागो मे विश्व मेले के अवसर पर की गई सब धर्मों के समेलन के द्वारा पूर्वी धर्मों के अदर एक वास्तविक रुचि पैदा कर दी गई थी और तब ईसाइयत को अन्य धर्मों के बीच मे एक धर्म मानने की ओर प्रवृत्ति होने लगी थी। इस प्रकार 'ईसाई धर्म के एकमात्रत्व' के बारे मे ईसाई धर्म-शास्त्रियो के मन मे भी सन्देह उठ खडा हुआ और वे धर्म के बारे मे ऐसी पुस्तके लिखने लगे जिनसे धर्म-शास्त्र को चोट पहुँचती थी। उदाहरण के लिए यद्यपि लाइमैन एबट ने अपने व्याख्यान 'दि थियोलौजी ऑफ एन इवोल्यूशनिस्ट' मे 'थियोलौजी' शब्द बनाये रखा है और यद्यपि उसने इलहाम, पाप, बलिदान, ईश्वर की कृपा, आश्चर्य तथा ईसा के बारे मे विचार-विनिमय किया है, तो भी उसने इन सबको विकासवाद के अधीन कर दिया था, (जैसे विकासवाद मे ईसा का स्थान)। स्पष्ट है कि नया धर्म-शास्त्र न तो अब नया रहा था और न धर्म-शास्त्र ही। यह भी एक प्रकार की 'नयी रूढिवादिता' बन गया था जिसका उद्देश्य सब धर्म-शास्त्रो, मतो और सम्प्रदायो से ऊपर उठकर सार्वभौम विकास पर आधारित एक सार्वभौम धर्म तक पहुँचना था।

यही आधुनिकवाद था। अपने व्याख्यानो और उपदेशो तथा 'आउटलुक' के सम्पादन द्वारा लाइमैन एबट ने इसे देश के कोने-कोने मे फैला दिया था। जोन फिस्क के कथन को कि "विकास ईश्वर का काम करने का ढग है" को उसने एक नारा बना दिया था। छोटी उम्र के ऐसे पाठको के लिए जिन्होने कभी इस तरह के व्याख्यान न सुने हो, मैंने उसके व्याख्यानो के कुछ अश प्रदर्शन-सामग्री सख्या ११ मे एकत्र कर दिये है।

यह सिद्ध करने के लिए किसी टिप्पणी की आवश्यकता नही है कि यह सिद्धान्त केवल नाम मे ही ईसाई था। यह उस समय का लोकप्रिय दर्शन था जिसका अनुवाद ईसाइयत की भाषा मे कर दिया गया था। यह 'प्राकृतिक नियम' को आध्यात्मिक ससार पर लागू कर रहा था और विकास-

वादी आचार-शास्त्र के 'सत्ता के लिए सघर्ष', 'सघर्ष के द्वारा प्रगति', 'परख और गलती के द्वारा सत्य की खोज' आदि आम कथनो की व्याख्या के लिए ईसाई सिद्धान्तो तथा प्रतीको का उपयोग करता था।

सुधारवादी यहूदियो मे भी इसी तरह के 'धर्म-शास्त्रियो' द्वारा लगभग ऐसे ही सिद्धान्तो का उपदेश दिया जा रहा था।

रवी आइजक एम० वाइज ने उस सर्वव्यापी उत्साह को, जो इन सब आत्म-तुष्ट उग्रवादियो को प्रेरणा दे रहा था, इस प्रकार वडे स्वाभाविक रूप मे रखा है

वैज्ञानिक, यह है तुम्हारा ईश्वर और प्रभु जिसे तुम खोजते हो और जिसे पा लेना संसार मे सबसे वडी बुद्धिमानी है। यह वह ईश्वर है जो तर्क के द्वारा पता लगता है और स्वाभाविक रूप से अनुभव भी किया जा सकता है। दार्शनिक, यह है तुम्हारा ईश्वर जिसकी व्याख्या करना मनुष्य के लिए सबसे वडे यश का काम है—काट तथा अन्य विचारको ने धर्म-शास्त्र के मानव रूपी ईश्वर के विरुद्ध तर्क दिये है। ब्रह्माडीय ईश्वर ही दर्शन का पहला और अतिम तत्त्व है। भोले लोगो, यह है तुम्हारा ईश्वर जिसे खोजने की तुम्हे आवश्यकता नहीं है क्योकि वह सब जगह समाया हुआ है, तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे चारो ओर, पदार्थ के हर गुण और मन की हर गति मे वह है; जहाँ तुम हो वहाँ वह है; जब भी तुम कुछ देखते हो या सोचते हो तो उसे ही देखते हो और उसी के बारे मे सोचते हो। बच्चो, यह है तुम्हारा ईश्वर, तुम्हारे फूलो की सुगध मे और रंग मे, कड़कडाती ध्वनियो और काना-फूसी मे, आकाश के नीले गुबज और धरती के हरे चोले मे, तुम्हारी निर्दोष मुस्कराहट और तुम्हारी माता की मधुर कोमलता मे। बुद्धिमान या मूर्ख वडे या छोटे लोगो, यह रहा तुम्हारा ईश्वर, न तुम उससे बच सकते हो और न वह तुमसे, वह तुममे है, और तुम उसमे हो। भविष्य की सभी पीढियो के लोगो, यह ईश्वर सभी मानवीय भावो और ज्ञान की समानता मे है, यह सबका और अनन्त काल का ईश्वर है, यह ब्रह्माडीय ईश्वर है, और उसके सिवाय यहाँ कुछ भी नहीं है।

इस प्रकार के आधुनिकवाद का प्रसार अमरीकी कैथोलिको मे भी होता रहा, जब तक कि पोप ने १९०७ मे, कम से कम कैथोलिक वेदियो पर और प्रेस मे इसका निषेध न कर दिया। लेकिन आत्म-विश्वास, प्रगति और विश्व-बंधुत्व के उस वातावरण पर, जब तक कि यह अमरीकी संस्कृति का व्यापक तत्त्व बना रहा, पोप की इस निषेधाज्ञा का कोई विशेष असर नही पडता था। अब भी ऐसे अमरीकी मौजूद है जो माइनो जे० सैवेज के इस कथन के साथ पूरी तरह सहमत होगे

हमने अमरीका मे एक लोकप्रिय सरकार के अधीन स्वतंत्रता और व्यवस्था की समस्या को हल कर लिया है, जो इतिहास मे इतने बड़े पैमाने पर पहली बार संभव हो सका है। यह सरकार इतनी लचकीली है कि सब परिस्थितियो के अनुकूल अपने आप को ढाल सकती है, और साथ ही इतनी समर्थ भी है कि इसमे सीमाहीन विस्तार तथा प्रगति हो सकती है। अब हम दिनोदिन यह बात ज्यादा अच्छी तरह सीख रहे है कि किस प्रकार ज्ञान और अनुशासन से प्रकृति की शक्तियो पर काबू पाया जा सकता है और उन्हे अपने शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक जीवन का दास बनाया जा सकता है। लेकिन अभी तो हमने शुरुआत ही की है। यह ससार कोई इतना पुराना और जीर्ण-शीर्ण नही है कि जल्दी ही खत्म हो जाय, न यह कोई डूबता हुआ जहाज है जिस पर से जितने बच सके उतने यात्रियो को बचाने की जल्दी हो। लम्बी रात गुजर चुकी है, पूर्वीय आकाश उषा के समय फिर लाल हो उठा है; सारा दिन हमारे सामने है। यह दिन ज्यादा बुद्धिमान, अच्छे तथा प्रसन्न लोगो का होगा जो सचमुच ही पृथ्वी पर 'ईश्वर का राज्य' ला सकेंगे।

यद्यपि बहुत ही कम उपदेशको ने उन सिद्धान्तो को इतने खुले तथा उग्र रूप मे रखा था जिसमे कि हमने उन्हे देखा है, तो भी इस आत्म-तुष्टि मे अमरीकी लोग एक हुए से दिखाई पड़ते थे। बाइबिल के अनुयायी और विकासवाद के आस्तिको मे वह भेद जिसने १९वी शताब्दी मे धर्म-शास्त्र को अस्तव्यस्त कर दिया था इस समय दब चुका था। थियोडोर मजर ने इस परिस्थिति का बहुत सही वर्णन इस प्रकार किया है।

आजकल सच्चे और वुद्धिमान लोग संतो के उत्तराधिकार, वपतिस्मे के स्वरूप, अनन्त दड या वाइविल की शाब्दिक प्रेरणा के वारे मे विचार-विनिमय नहीं करते। इन सिद्धान्तो को लेकर जो झडे खड़े किये गये थे वे अब भी लहरा रहे हैं, लेकिन लडाइयाँ उनके चारो ओर नही हो रही; वास्तव मे तो छुटपुट वारदातो के सिवाय अब वे युद्ध के क्षेत्र भी नही रहे हैं—वे केवल ऐसे प्रश्न है जिनसे निश्चय हो सके कि क्या करना सवसे अच्छा रहेगा।

कुछ लोग यह सुझाव देते है कि पुराने ही मतो मे से वेकार के हिस्सो को निकाल दिया जाये तथा शेष के आधार पर एक नवीन चर्च का निर्माण किया जाये, लेकिन यह एक ऐसी प्रक्रिया होगी जिससे चर्च और पादरी-समुदाय दोनो का ही पतन होगा; शक्तिशाली मनुष्य कमजोर उपाय काम मे नहीं लाते। यदि यह वात सच है कि ईसाइयत की वेदी का पतन हो रहा है तो इसका एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि समझदार आदमी नयी शराव को पुरानी वोतलो मे भरना नहीं चाहते; और न वे ऐसे पादरी समुदाय मे प्रवेश करना चाहते है जिनके पास न तो शराव ही है, न वोतले।

सामान्य वुद्धि का उदारवाद

पादरी समूह तथा सगठित धर्म पर आने वाले इस खतरे के आभास के कारण अमरीका मे धार्मिक विचार के नेताओ ने किसी अधिक रचनात्मक सन्देश की खोज करनी शुरू की। इस नये जीवन का अनुभव इस शताव्दी के प्रारम्भिक वर्षो मे तकनीकी धर्म-शास्त्रियो के बीच किया गया, लेकिन यह दूसरे दशक के मध्य भाग तक एक आम बौद्धिक शक्ति का रूप नही ले पाया था। केवल इसी समय जाकर यह ईसाइयो के बीच 'उदारवाद' के नाम से और यहूदियो के वीच 'रूढिवाद' के नाम से जाना जाने लगा। मोटे तौर पर १९१५ से १९३० के वर्षो पर उदारवाद इसी तरह बौद्धिक रूप से छाया हुआ था जैसे कि १९०० से १९१५ के वर्षो पर बौद्धिक रूप से आधुनिकवाद छाया रहा था।

उदारवाद के दो पक्ष थे एक,सामाजिक सन्देशवाला और दूसरा विवेचनात्मक सामान्य बुद्धि को अपील करने वाला। दर्शन या विज्ञान के बजाय सामान्य बुद्धि को अपील करना अमरीका की अपनी विशेषता थी। जर्मनी का तर्कात्मक धर्मशास्त्र इससे आसान बन गया था। इस तरह अमरीका मे धर्मशास्त्र विरोधी एक नया धर्मशास्त्र बन रहा था। इसकी व्याख्या मे कुछ शब्द कहना प्रासगिक ही होगा। विलियम जेम्स की प्रसिद्ध पुस्तक 'दि वेरायटीज ऑफ रिलिजस एक्सपिरिएंस' (धार्मिक अनुभव के विभिन्न प्रकार) से विज्ञानवाद और प्रयोगवाद के विरुद्ध व्यापक प्रतिक्रिया उठ खडी हुई थी, लेकिन जिस तरह जेम्स ने धार्मिक अनुभव और विश्वास को प्रयोगशाला का विषय बनाया था उससे किसी धर्म-शास्त्र का आधार तैयार नही होता था। यह इतना ज्यादा व्यक्तिवादी, रहस्यवादी और 'व्यथित आत्मा' वाला था कि 'रचनात्मक' उपदेशो के लिए इसका उपयोग नही किया जा सकता था। लेकिन पहले की तरह इस बार भी अमरीकी उदारवादियो को जर्मनी मे वह चीज मिल गई जिसकी वे तलाश मे थे—और वह था अल्ब्रेट रिशैल द्वारा स्थापित नव्य प्रयोगवादी धर्मशास्त्र।

रिशेल सत्य की खोज न तो प्राकृतिक विज्ञान मे कर रहा था और न पवित्र भावनाओ मे ही, वह उन्हे 'ईसाई चेतना' अर्थात् चर्च या समुदाय के ऐतिहासिक विकास मे प्राप्त तथा एकत्रित ईश्वर के प्रकाश के रूप मे ढूंढता था। एक धार्मिक समुदाय के ऐतिहासिक अनुभव पर बल देने से यह सभव हो गया कि किसी धर्म का 'तत्त्व' उसके इतिहास (या अमरीकियो के अनुसार सामाजिक विकास) के आधार पर निश्चित किया जाय। इस प्रक्रिया मे ईश्वर का दिव्य दर्शन होता है और दिव्य निर्णय भी, लेकिन यह दिव्य दर्शन ईश्वर की वास्तविकता का नही होता (क्योकि वह मानवीय ज्ञान के परे है) अपितु ईश्वर के मूल्य या इतिहास मे उसके अर्थ का होता है। आधुनिकवादी नेता डॉ० गार्डन ने 'ईश्वर की मानवता' को एक 'अनन्त रहस्य' कहा है, और उसने मानवता का प्रयोग दयालुता, उदारता और

व्यक्तित्व के अस्पष्ट पर्यायवाची के रूप मे किया है। धर्म-शास्त्र को ब्रह्माड-शास्त्रीय तथा अध्यात्म-शास्त्रीय पृष्ठभूमि से अलग करने के द्वारा रिशैल के अनुयायी मनुष्य से सम्बद्ध ईश्वर की एक ऐतिहासिक व्याख्या देन मे सफल हो सके। इस तरह रूढिवाद और विकासात्मक आधुनिकवाद की तरह ईश्वर के ब्रह्माडीय ज्ञान का ढोग किए बिना ही ईसाइयत के तत्त्व की व्याख्या और प्रायोगिक (ऐतिहासिक) रूप से उसका बचाव किया जा सकता था।

जर्मन लोगो ने ईसाई सस्थाओ की पृष्ठभूमि पर ईसाई विचार के इतिहास के विस्तृत अध्ययन द्वारा इस विधि का विकास किया था और इस सबका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय प्रमाण के रूप मे बाइबिल के स्थान पर ऐतिहासिक अथवा 'जीवित' ईसा की प्रतिष्ठा हो गई। इस प्रकार ईश्वर के सिद्धान्त को भी ईसा की ओर लाया जा रहा था। इस प्रकार के कार्य मे ऐतिहासिक ईसा की खोज करने के सिलसिले मे 'न्यू टेस्टामेट' की पुनर्व्याख्या करने के अनन्त अवसर थे।

लेकिन बहुत-से उदारवादियो ने 'ईसाई चेतना' के एक अधिक सम-सामयिक रूप की अपील करने के द्वारा इस कठिन ऐतिहासिक खोज के काम को आसान बना दिया। अमरीका मे प्रयोगवादी धर्म-शास्त्र की एक लबी परम्परा थी जिसकी परिणति धार्मिक अनुभवो के विश्लेषण मे विलियम जेम्स की रुचि से उत्पन्न धर्म के व्यक्तिवादी मनोविज्ञान मे हुई। परिणामत, इन अमरीकी उदारवादियो के लिए रिशैल की 'ईसाई चेतना' को अधिक व्यावहारिक और दूरदर्शी रूप मे लेना बहुत आसान था। इस प्रकार हेनरी सी० किग ने लिखा था

ईसा न केवल नैतिक तथा आध्यात्मिक रूप से एक है, और इस तरह ईश्वर की इच्छा के प्रति अपने पूर्ण व्यवहार मे सर्वथा अद्वितीय है, लेकिन वह अतिभौतिक रूप से भी ईश्वर के साथ एक प्रतीत होगा, यदि इस तत्त्व की व्याख्या दूरदर्शी रूप से की जाय। इस प्रकार इस कथन के नये और पुराने, वैयक्तिक तथा अतिभौतिक रूपो मे समन्वय हो जाता है; लेकिन इस

वात मे कोई सन्देह नहीं है कि वैयक्तिक तथा व्यावहारिक रूप मे ईसा की दिव्यता को मान लेना ही अधिकाश लोगो के लिए कहीं अधिक युक्तिसगत और निश्चित परख है।

ईसाई अनुभव के इस अमरीकी रूप मे 'फल' के लिए स्पष्ट रूप से प्रयोगवादी अपील की। जब इसका सबध ईसाई चर्चो के ऐतिहासिक अनुभवो की बाहर से आयी अपील के साथ हो गया तो उदारवादी धर्म-शास्त्र के लिए वहुत अच्छा आधार तैयार हो गया। व्यावहारिक प्रयोग-वाद ने इसे आगे देखने वाला रूप प्रदान किया, ऐतिहासिक प्रयोगवाद ने इसे परम्परा की पृष्ठभूमि दी और इन दोनो के मिश्रण से इसे वैज्ञानिक विधि तथा धार्मिक प्रामाणिकता दोनो ही मिल गये। इस प्रकार उदार-वादी अमरीकी उपदेशक और अध्यापक उस चीज तक पहुँचे जिसे मैं विवेचनात्मक सामान्य बुद्धि की प्रवृत्ति और अपील का नाम दे रहा हूं।

इस उदारवाद का साहित्य इतना विशाल और इतना परिचित है कि मै इसका विस्तार से वर्णन नही करूँगा। इसकी चरम परिणति हैरी एमर्सन फॉस्डिक के उन अत्यधिक लोकप्रिय उपदेश और भक्तिपूर्ण पुस्तकों मे हुई, जिनके शब्द अभी भी हमारी स्मृति मे ताजे है और जिनका प्रभाव अभी भी पर्याप्त स्पष्ट है। यद्यपि फॉस्डिक ने अनेक स्थानो की यात्राएँ की थी और अनेक सम्प्रदायो की वेदियो से उपदेश दिये थे, उसका सबसे अधिक सुपरिचित रूप न्यूयार्क के 'रिवरसाइड चर्च' के निर्माता और उप-देशक के रूप मे है। यह चर्च अत साम्प्रदायिक उदारवाद की प्रेरणा का स्थान और प्रतीक बन गया था। उसकी सरल धारा प्रवाहिता और सामान्य बुद्धि ने उसे ऐसे बहुत-से मध्यवर्गीय प्रोटेस्टेंटो के लिए प्रिय वक्ता बना दिया था जो धर्म-शास्त्र के प्रति तो उदासीन थे लेकिन अपनी सस्कृति के स्वाभाविक और केन्द्रीय भाग के रूप मे चर्च के जीवन के प्रति अनुरक्त थे। 'आधुनिक भावात्मक' सन्देश को लोकप्रिय बनाने में फास्डिक की सबसे बडी पुस्तक सभवत 'दि मॉडर्न यूज आफ दि बाइ-बिल्'(१९२४) थी, इसमे उसने बताया था कि बाइबिल का आधार-

भूत उपयोग मनुष्यो को ईसा के पास तक लाने के लिए है। ईसा ही एक जीवित सत्य के रूप मे ईसाई धर्म का सच्चा आधार है और ईसा के ऐसे स्थायी अनुभवो तक हमे ले जाने की बाइबिल की शक्ति लोगों द्वारा बदलते हुए रूपो मे की जाने वाली बाइबिल की आलोचना से कही ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

इसी दृष्टिकोण को फॉस्डिक की सी सरल धाराप्रवाहिता के साथ चार्ल्स ई० जेफर्सन ने १९०३ मे तैयार हुए अपने उपदेशो के सग्रह मे सामने रखा है जो 'थिग्स फडामेटल' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उदारवाद के प्रारभिक दिनो के प्रतिनिधि के रूप मे इन उपदेशो के कुछ अग मैंने चुने है (कृपया प्रदर्शित सामग्री सख्या १३ देखे)।

सामाजिक धर्म-शास्त्र

इस तरह जब उदारवादी उपदेशको का एक विशिष्ट दल सामान्य बुद्धि और सद्भावना वाले मनुष्यो के लिए ईसाई धर्म युक्तिसगत रूप में प्रस्तुत कर रहा था, उसी समय दूसरा दल सामाजिक सन्देश के उपदेश के द्वारा ज्यादा प्रत्यक्षरूप से कर्म की प्रेरणा दे रहा था। पिछले अध्यायों मे समाजवादी ईसाइयत के विकास और उसके तात्पर्य की कहानी हम पहले ही बता चुके है। यहाँ केवल यही बताना शेष है कि सामाजिक सन्देश के समर्थको द्वारा धीरे-धीरे विकसित किये गये धर्म-शास्त्र ने उदार-वाद के उन सिद्धान्तो को पुष्ट किया जिन पर हमने अभी विचार किया है।

अमरीका मे धार्मिक सामाजिक कार्य पर उतना सैद्धान्तिक विचार नही हुआ था जितना धार्मिक उदारवाद पर। अपने प्रारभिक रूपो में यह न केवल धर्मशास्त्र-विरोधी था अपितु चर्च-विरोधी भी था। उदाहरण के लिए प्रारभ की बहुत-सी अपीलो मे यह पढने को मिलता है कि चर्च उन बहुत-सी मानवीय सस्थाओ मे से केवल एक है जिनमे ईश्वर का राज्य आना चाहिए, और इसलिए चर्च को चाहिए कि वह विरोधी या 'सासा-रिक' समाज से अलग रहने के बजाय स्वय भी शेष सामाजिक व्यवस्था

के साथ बदलता चला जाये। एक ईसाई समाज सारी संस्थाओं को कृपा के मार्ग के रूप में बदल देगा और इस तरह सारे संसार की सामूहिक रूप से रक्षा होगी।

सामाजिक सन्देश के अन्दर निहित धर्म-शास्त्र की दो रूपों में व्याख्या की गई। उनमें से जी० बी० स्मिथ का धर्म-शास्त्र अधिक अमरीकी था और आधुनिकवाद के अधिक निकट था। इस में ईसाइयों से संसार से अलग रहने की अपनी बहुत पुरानी पारम्परिक प्रवृत्तियों को छोड़ने की अपील की गई थी, और उनसे नैतिक और तकनीकी प्रगति की 'धर्म-निरपेक्ष' आधुनिक शक्तियों का साथ देने के लिए कहा गया था। इसे वह प्रजातंत्रीय धर्म-शास्त्र कहता था, और क्योंकि धर्म-शास्त्र के बारे में इस तरह की बात अधिकांश पाठकों के लिए अब भी नयी है, यहाँ पर उसका एक नमूना देना अच्छा रहेगा।

ईसा की विधि ने मानवीय समस्याओं के प्रति जिस प्रयोगवादी प्रवृत्ति का सुझाव दिया था उसकी जगह यह विश्वास आ गया कि नैतिक सिद्धान्तों का निर्णय निरीक्षण और तर्क द्वारा नहीं अपितु प्रामाणिक धर्म-शास्त्रों के आधार पर होना चाहिए। यह आदर्श सदियों से चला आ रहा है और अधिकांश चर्चों में धार्मिक शिक्षा की आधारभूत पूर्वमान्यता बना हुआ है। लेकिन एक ऐसा समय आया जब कि मनुष्य की बढ़ती हुई बौद्धिक शक्तियों ने नये प्रयोग करने शुरू किये, और इनमें से कुछ प्रयोगों के परिणाम मानवीय ज्ञान को विस्तृत करने और जीवन की दशाओं को सुधारने की दिशा में बहुत ही आश्चर्यजनक निकले। धीरे-धीरे इन नये 'प्राकृतिक' सिद्धान्तों के नैतिक दावे बढ़ते चले गए।

अब पुराने संस्कारों में पली हुई धार्मिक चेतना इन 'धर्म-निरपेक्ष' और 'भौतिकवादी' साधनों में वह महत्त्व नहीं ढूँढ पाती है जो कि उनमें होना चाहिए। ईश्वरी कृपा के साधनों के बारे में यह धारणा है वे हमारे अनन्तकालीन कल्याण के लिए चमत्कारी रूप से लाये जाते हैं ..। अगर वैज्ञानिक आदर्श की धार्मिक व्याख्या न की गई तो यह चर्च का एक

ज़बरदस्त प्रतिद्वन्द्वी बन जायेगा; लेकिन यदि ईसाइयत इन वैज्ञानिक प्रयत्नो के छिपे हुए धार्मिक महत्त्व को सामने ला सके तो ईसाई आकाक्षा और कर्म का क्षेत्र इतना विस्तृत हो जायेगा उसमे उत्साह की कोई सीमा ही नहीं रहेगी।

इसके बाद स्मिथ ने सकेत किया है कि धार्मिक अनुभव मे आये परिवर्तनो का साथ धर्म-शास्त्र नही दे पाया है और अब वह समय आ गया है कि "दिव्यता की व्याख्या हमारे धार्मिक अनुभव के आधार पर की जाये।" हमारे मन मे अब भी यही कल्पना है कि यह कोई दूसरे ससार की चीज है जिसे एक किसी खास विधि द्वारा इस संसार मे लाने की आवश्यकता है। हमे लगता है कि इसे पहचानने के लिए यह आवश्यक है कि इसे 'प्राकृतिक' अवस्था से अलग रखा जाये ताकि यह कोई अद्वितीय चीज मालूम पडे। लेकिन साथ ही साथ हमारी सस्कृति की वैज्ञानिक और नैतिक माँगे बाधित करती है कि हम उन चमत्कारी विशेषताओ मे काट-छाँट करें जो कि पहले दिव्यता की प्रतीक समझी जाती थीं। एक नैतिक धर्म-शास्त्र के विकास मे अगला कदम यह होगा कि दिव्यता की विभिन्न कोटियो को उन रूपो मे सामने रखा जाये जिनका मेल प्रजातन्त्रीय आचार-शास्त्र से बैठ सके। हमे ईश्वर का यह रूप सामने रखना है कि वह यहीं पर उपस्थित सहकर्मी है जो कि अपने बच्चो के साथ परिश्रम कर रहा है बजाय इस रूप के कि वह एक सर्वोच्च शासक है जिसके वे अधीन हैं और जिससे विशेष लाभ या कृपाएँ उन्हे मिलती रहती हैं....। क्योंकि अनन्त साधनो वाले आश्चर्यजनक इस ससार मे मानवीय आत्माओ को प्रिय लगने वाली सभी चीजो को बनाये रखने के लिए पर्याप्त स्थान है। ईश्वर-रूप परिवर्तन के अपने चमत्कारो को वृद्धि की उन बहुत-सी प्रक्रियाओ के रूप मे सामने रखता है जिनसे जीवन मे सौंदर्य, नैतिकता और पूजा के भाव आते है। इसलिए हमे किसी भी ऐसी चीज को तुच्छ नहीं समझना चाहिए जिससे ईश्वर के प्रति भय, आदर या नैतिक अभीप्सा के भाव उदित होते हैं।

आधुनिक ससार और इसके नैतिक मूल्यो के इस उत्साहपूर्ण स्वागत

के ठीक विरोध मे वाल्टर रौशन बुश का धर्म-शास्त्र है। उसने एक पैग-म्बर के तौर पर ससार के बारे मे निर्णय दिया है और कहा है कि अभी आनेवाले ईश्वर के राज्य को ध्यान मे रखकर हम सभी को पश्चात्ताप करना चाहिए। यद्यपि उसने सामूहिक अपराध, पाप और उद्धार पर बल दिया है तो भी रौशेन बुश ने ईश्वर के प्रकोप के बारे मे उपदेश देने मे बचा रहने दिया। ईश्वर तो एक प्यार करने वाला पिता है जो कि ईसा के जीवन और उसके 'रहस्यात्मक' शरीर चर्च के रूप मे एक सामूहिक वास्तविकता बन जाता है। ससार की सामूहिक मुक्ति के लिए ईश्वर के साथ ईसाइयो का एक सम्प्रदाय बना हुआ है। मुक्ति की यह ऐतिहा-सिक प्रक्रिया ही पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य है और यह राज्य तब आता है जब मनुष्य अपने सामूहिक उत्तरदायित्व को स्वीकार करते है और सामाजिक व्यवस्था मे ईसाइयत लाने का प्रयत्न करते है।

१९२० से १९३० तक ईसाई उदारवाद अपनी चरम सीमा पर था। (कृपया प्रदर्शन सामग्री सख्या १४ देखिए)। कुछ अपवादो को छोडकर चर्च के अन्दर के धर्म-शास्त्री और सामाजिक सुधार के नेताओ ने अपनी शक्तियाँ मिला ली और अपने सगठित सहयोग द्वारा उस सस्थागत और नैतिक पुनर्निर्माण के आन्दोलन को आश्चर्यजनक बल प्रदान किया जिसे हमने अभी देखा है। इस शक्तिशाली उदारवाद पर हुए आक्रमणो के बारे मे बताने से पहले हमे यहूदी धर्म के अन्दर इसी प्रकार के आन्दोलन के बारे मे कुछ सक्षेप से बताना आवश्यक है।

अपने ईसाई पडोसियो की तरह, यहूदी नेताओ ने यह समझ लिया था कि सुधारवादी यहूदी धर्म के प्रकृतिवाद की ओर झुके हुए धर्म-शास्त्र के बजाय उसका ऐतिहासिक रूप से व्याख्या किया गया सिद्धान्त अधिक लाभकर है। अग्रणी सुधारवादी रबियो ने यहूदी धर्म पर अधिक आधा-रित धर्म-शास्त्र की आवश्यकता को जाना था। यद्यपि सुधारवादी यहूदी धर्म अब भी अपने आपको नये रूप से प्रकट करने की भावना से आधु-निकवादी विश्वास को लिये हुए है, तो भी उसमें विशिष्ट यहूदी विचारो

और उत्तराधिकार पर कही अधिक बल दिया जाता है। इसमे रूढिवादी यहूदी धर्म की सास्कृतिक राष्ट्रीयता भी बहुत कुछ पायी जाती है। १९ मार्च १९५० को हुए सुधारवादी यहूदी धर्म के धर्म-शास्त्र की सस्था के सम्मेलन मे रबी सैम्यूल एस कोहन ने कहा था

यहूदी धर्म के पुराने रूपो की तरह सुधारवाद को भी निरंतर बदलते हुए सास्कृतिक और बौद्धिक वातावरण के अनुकूल बनते रहना चाहिए।... यहूदी धर्म की अपनी विशिष्टता है और अतर्दृष्टि के अपने स्रोत है जिनकी खोज हमे आधुनिक ज्ञान द्वारा दिये गए साधनो से करनी है ताकि हम अपने धार्मिक उत्तराधिकार को अपने पूर्ण रूप से समझ कर अधिक समृद्ध रूप मे सामने रख सके। धर्म-शास्त्र मे फिर से जगी हुई रुचि, विद्वान तथा गभीर जन-साधारण और रबी लोग ये सब मिलकर यहूदी धर्म के लिए वरदान साबित हो सकते है यदि ये उदारवाद विरोधी उन शक्तियो का साथ न दे जो कहती हैं मनुष्य स्वभाव मे परिवर्तन नहीं हो सकता और इस तरह जो बुद्धि और स्वतत्रता पर चोट पहुँचाती हैं।

इस नयी विचारधारा में से रूढिवादी यहूदी धर्म नामक आन्दोलन का जन्म हुआ जो कट्टरपथियो के लिए बहुत ज्यादा उदार और सुधारवादियो के लिए बहुत ज्यादा राष्ट्रवादी है। हम देख चुके है कि किस तरह यह आन्दोलन अमरीका मे आया और पनपा। अब तो यह यहूदी धर्म का एक केन्द्रीय अग बन गया है। यहाँ हमें यह भी ध्यान दिला देना चाहिए कि इस आन्दोलन के धार्मिक और आदर्शीय सिद्धान्त रबियो की मडली के बाहर भी स्वीकार किये जाने लगे है और इस समय ये अमरीकी यहूदियो की धार्मिक विचारधारा की सबसे प्रभावशाली प्रवृत्ति के रूप मे दिखाई पडते है, लेकिन इनका स्वरूप अभी एक प्रवृत्ति का ही है इसलिए कहा नही जा सकता कि ये आगे कहाँ तक जाएँगे। इस आन्दोलन के पुनर्निर्माणवाद के नाम से चलने वाले वामपक्ष ने धर्म-शास्त्र मे एक अत्यधिक आधुनिकवादी स्थिति अपना ली है और दार्शनिक रूप मे यह इतना उदार है कि कट्टरपथियो ने इसकी निंदा करनी शुरू कर दी है

लेकिन रूढिवादियो मे तोरा, मसीहा, इलहाम और ईश्वर के सिद्धान्तो के प्रति काफी सहिष्णुता है। ये बुनियादी बाते सैद्धान्तिक उतनी नही है जितनी कि ऐतिहासिक, इनका मुख्य ध्येय यहूदी परम्परा का और सस्कृति की विशिष्टता को बनाये रखना है। इसके अनुसार यहूदी धर्म के लिए जियोनवाद यहूदी जाति की सतत ऐतिहासिक सत्ता का चिह्न मात्र ही नहीं रहा है, बल्कि उससे यह भी आशा बनती है कि यहूदी साहित्य कानून और भक्ति एक जीवित सस्कृति का रूप धारण कर लेगे। सक्षेप मे, जिस प्रकार ईसाई उदारवाद का केन्द्र स्वय ईसामसीह बन गया है उसी प्रकार सम-सामयिक यहूदी श्रद्धा का केन्द्र उनके वतन इजराइल की पुन स्थापना है। इन दोनो ही प्रवृत्तियो से पता चलता है कि ये बाइबिल की प्रामाणिकता पर अत्यधिक बल नही देती।

फंडामेंटलिस्ट आक्रमण

उदारवाद पर विभिन्न दिशाओ से बौद्धिक आक्रमण हुआ और इस तरह एक अनेक पक्षीय लडाई शुरू हो गई जो कि अब भी चल रही है। इसका परिणाम सभवत अबौद्धिक शक्तियो द्वारा तय होगा। इस समय आक्रमण की चार मुख्य दिशाएँ स्पष्ट दीखती है

(१) फडामेंटलिज्म—(जिसे कि बौद्धिक रूप से रूढिवादी मानना चाहिए),

(२) नियोऑर्थोडॉक्सी—(जिसे कि अमरीका मे नियोरेडिकलिज्म कहना ही ठीक रहेगा)

(३) एग्जिस्टेशियलिज्म—(जो कि धर्म-शास्त्रीय यथार्थवाद का एक रूप है); और

(४) ह्यूमैनिज्म—(जो कि उदार है लेकिन धर्म-शास्त्रीय नही है)।

हमने दूसरे अध्यायो मे बीसवी सदी के एक आन्दोलन के रूप मे फडामेंटलिज्म के सामाजिक और नैतिक महत्त्व पर विचार किया है। १९वी शताब्दी में सिद्धान्तो मे किसी भी परिवर्तन को रोकने के लिए

रुढिवाद द्वारा अनक प्रयत्न किये गये। फडामेटलिज्म एक धर्म-शास्त्रीय तर्क या दृष्टिकोण के रूप मे उसी परम्परा मे है। तो भी मुख्य प्रोटेस्टेंट मतो के पादरी समुदाय मे आधुनिकवादी नवीन प्रभावो को न आने देने के प्रयत्न मे सफलता नही मिली है और वाइविल के अध्ययन द्वारा फडा-मेटलिज्म के उद्देश्यो को पूरा किया जा सका है। ऐतिहासिक समालोचना के सामान्य सिद्धातो के आधार पर ही वाइविल का अध्ययन ज्यादा हो रहा है, हालांकि यह स्पष्ट नही है कि इन सिद्धान्तो का अन्तिम परिणाम क्या होगा।

पोप ने १९०७ मे आधुनिकवाद पर आक्रमण करते हुए 'उत्सुकता और अभिमान' को सारी मुसीवत का कारण वताया था, और यह वाइ-विल का प्रामाणिकता के प्रोटेस्टेट चैंपियनो के वजाय पोप का सकेत कही अधिक वैयक्तिक था। पर वास्तव मे जिस वात ने पोप और फडामेटलिस्ट लोगो पर प्रभाव डाला था, वह थी उनका यह समझ लेना कि जो कोई भी आधुनिकवाद को वहुत गभीरता से लेगा उसे ईसाई धर्म की प्रामाणिकता की व्याख्या करने मे कठिनाई होगी। चर्च का कोई भी अनुयायी ऐतिहासिक धर्म और आधुनिकवाद, इन दोनो के प्रति पूरी तरह वफादार नही हो सकता था। पोप, विशपो और उपदेशको को तो अधिकार के साथ वोलना होता है, और धार्मिक अधिकार के लिए कुछ विश्वासो की प्रामाणिकता वुनियादी शर्त है, चाहे वे विश्वास धार्मिक जीवन के लिए वुनियादी हो या नही। उनके दृष्टिकोण से यदि यह अधिकार वुनियादी है तो चर्च भी वुनियादी है। पर उदारवादी इस अधिकार पर ही चोट कर रहे थे। जव हार्वर्ड के प्रेजिडेट ईलियट ने कहा कि "ससार मे अव तक जरूरत ने ज्यादा धार्मिक प्राधिकार रहा है।" (प्रदर्शन सामग्री सख्या १५) तो उस समय स्वभावत ही चिंता हुई थी।

अधिकार से डर लगना भी स्वाभाविक था, पर वैज्ञानिक तथा नैतिक रूप से आधुनिकवाद का खडन करने के लिए अधिकारियो के प्रयत्न दयनीय ही सिद्ध हुए। आधुनिकवाद को शायद रोका जा सकता था

पर रूढिवाद का मडन बौद्धिक रूप से इतना आसानी से नहीं हो सकता था। कैथोलिको ने तो एकदम और फडामेंटलिस्ट लोगो ने धीरे-धीरे यह समझ लिया कि इसके लिए अधिक विद्वत्तापूर्ण विधियो की आवश्यकता पडेगी। कैथोलिक विश्वास के रक्षक के रूप मे नियो-टॉमिज्म के विकास से चर्च को बहुत सहारा मिला है, क्योकि इसमे पादरियो की तरह प्रामाणिकता की दलील देने के बजाय बुद्धि को अपील की जाती है। इस विकास की कहानी हमे अमरीका के बाहर ले जायगी क्यो कि यूरोपीय विद्वानो द्वारा दिखाये गए रास्ते पर अमरीकी टॉमिज्म कुछ-कुछ ही चल पाया है। जो भी हो, यह बात तो स्पष्ट है कि स्कलैस्टिमिज्म द्वारा सामने रखा गया रूढिवाद का रूप फडामेंटलिस्ट लोगो द्वारा की जाने वाली बाइबिल की अपील से बहुत भिन्न है।

इधर ऐसे चिह्न मिलने लगे है जिनमे पता चलता है कि अमरीकी प्रोटेस्टेट लोगो के बीच एक धर्मोपदेशीय स्कॉलैस्टिसिज्म का उदय हो सकता है। इस प्रकार के कुछ धर्म-शास्त्री रूढिवाद के बुनियादी सिद्धान्तो का बचाव बाइबिल की प्रामाणिकता के बजाय व्यवहारवादी तर्कों से करने लगे है। 'ईसाइयत सत्य क्यो है ?' 'ह्वाई इज क्रिश्चिएनिटी ट्रू ?' नामक लोकप्रिय पुस्तक मे एडगर मलिस ने धर्मोपदेशीय सिद्धान्त को एक दार्शनिक रूप देने का प्रयत्न किया है और इसकी रक्षा के लिए उन तरीको से काम लिया है जिनका प्रयोग इसके विरोधियो ने आक्रमण के लिए किया था। तो भी अपेक्षाकृत कम ही रूढिवादी शिक्षक अपनी श्रद्धा को व्यवहारवादी आधार देने, या ज्यादा सही शब्दो मे, व्यवहारवादी तर्क के कारण अपनी श्रद्धा को जोखिम मे डालने के लिए तैयार है।

धर्म-शास्त्र का पुनरुत्थान

धर्म-शास्त्र मे तथाकथित नव्य रूढिवाद और नव्य उग्रवाद ने आधुनिकवाद और उदारवाद का सामना उनकी कमियाँ दिखाकर किया और उन पर आरोप लगाया कि उनमे ज्यादा दूर तक काम नहीं चल सकता

था। संकट में से गुजरते हुए संसार की धार्मिक आवश्यकताओं और अनुभवों का साथ उदारवाद न दे सका। वास्तव में संकट के अनुभव के लिए तो उदारवाद तैयार भी नहीं था। प्रगति और विकासशील सत्ता में आशावादी विश्वास प्रथम महायुद्ध में तो बचा रह गया क्योंकि, अपने प्रेस्बिटेरियन नेता वुडरो विल्सन की तरह, बहुत-से उदारवादियों ने अपने आप को समझ लिया था कि ईसाई तथा प्रयोगवादी आधारों पर 'युद्ध समाप्त करने के लिए युद्ध' करना उचित ही था, और शायद ईश्वर के राज्य की स्थापना में उनका विश्वास इसी तरह फलीभूत होने वाला था। लेकिन जब 'लीग ऑफ नेशंस' असफल हो गई, और बहुत-से विश्वव्यापी चर्च के आन्दोलन और सुधार (विशेषकर नशाबंदी) असफल हो गए, आर्थिक गिरावट आयी, धर्म-निरपेक्ष अधिसत्तावाद के साथ संघर्ष और उसकी पाशविकताएँ बढ़ने लगीं, तो ऐसा लगा कि उदारवादी उपदेशकों के प्रवचन और सामाजिक सुधारकों के प्रयत्न बीते युग की बात थी। संसार बदल चुका था और अब इसे किसी दूसरे ही सन्देश की आवश्यकता थी। रीनहोल्ड नीबर ने अपनी पुस्तक 'रिफलैक्संस ऑन दि एंड ऑफ एन एरा' (१९३४) में न केवल इस नई विचारधारा को अभिव्यक्ति दी है अपितु एक नये युग के लिए तैयारी भी की है। इसके विचारों के अनुसार मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता यदि वह मनुष्य स्वभाव के साधनों का या इतिहास के तर्क का ही अनुसरण करता रहे। इसलिए "प्रकृति और इतिहास के संसार में अपनी अवश्यंभावी पराजय में" मानवीय आत्मा को कुछ सांत्वना कृपावाले धर्म या ऐसे सन्देश से मिल सकती है जिसमें उद्धार के अतिमानवीय स्रोत की आशा निहित हो। मार्क्सवादियों के द्वारा इसकी व्याख्या एक ऐसे राजनैतिक और नैतिक पराजयवाद के रूप में की जा सकती है, जिस पर आध्यात्मिक 'अफीम' का आवरण चढ़ा दिया गया है। लेकिन इसका उद्देश्य था कि ऐतिहासिक दिव्य सत्ता में उदारवादी विश्वास के मार्ग में इतिहास के तर्क जिन कठिनाइयों को उठा रहे थे उनके बावजूद चर्च अपनी आत्म-तुष्टिपूर्ण सामा-

जिक राजनीति से मुडकर ईश्वर में एक अधिक श्रद्धापूर्ण विश्वास की ओर आये ।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि संकट की भविष्यवाणी करने वाले लोग उदारवाद के अन्दर से ही पैदा हो रहे थे। उदारवाद में सुधार हो रहा था (अवश्य ही, यह सुधार 'ईश्वर की छत्रछाया' में था)। इस पर आक्रमण बाहर से आते मालूम पड रहे थे । १९२० और ३० के दशकों में जर्मनी से अमरीका में बडे व्यवस्थित रूप से विनाश के विलापों का आयात होता रहा। न केवल अमरीकी आत्म-तुष्टि की भावना पर, अपितु अमरीकी आदर्शवाद की आवाज पर भी एक नयी शब्दावली, इतिहास का एक विचित्र दर्शन, 'ईश्वर के राह' का एक तकनिक प्रयोग तथा पारलौकिक न्याय के बारे में ऊँची पुकारे, ये सब बातें बुरी तरह छा गई । 'द्वन्द्वात्मक धर्म-शास्त्र' के बारे में यह सब शोरशराबा एक ऐसा धर्म-शास्त्रीय गर्जन था जो एक विस्फोटित होती हुई संस्कृति पर फैलता जा रहा था। यह एक ऐसे संकट की अभिव्यक्ति था, जिसने उदारवाद के स्वप्न को समाप्त कर दिया। इसका दर्शन विदेशी था, पर अमरीकी उदारवादी इसका प्रयोग एक ऐसे भाग्य का वर्णन करने में करते थे जिसने उन्हे बाहर से आकर जकड-सा लिया था। अमरीकियों को यह संभव ही नही मालूम होता था कि वे कठिन परिस्थितियाँ जिनमें से इस पीढी को गुजरना पड रहा है उनके अपने पापीपन और अंधेपन का परिणाम हो सकती है। प्रारंभ में तो वे येही आरोप लगाते रहे कि बाहर की 'आसुरी' शक्तियों ने उनके सामने यह संकट अनुचित रूप से ला दिया है। पर धीरे-धीरे पिछली दो दशाब्दियों में इस बारे में अमरीकियों का आत्म-विश्वास टूट गया है और कम से कम उनके धार्मिक नेताओं ने सामूहिक मानवीय पाप को ज्यादा उग्र तथा समालोचनात्मक रूप से देखना शुरू कर दिया है। पर १९०३ में, जब कि गॉर्डन ने लिखा था, "आशावाद एक ऐसा विश्वास है जिसका आधार सुनिश्चित है," यह कितना ही सत्य क्यों न प्रतीत हुआ हो, अब तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि न केवल आशावाद

का आधार समाप्त हो गया है, अपितु ईसाई श्रद्धा का आशावाद से कोई सबध भी नही है। १९३५ मे हैरी एमर्सन फॉस्डिक ने उदारवाद मे मानवतावादी प्रवृत्तियो का खडन किया और आधुनिकवाद से परे के एक धर्म-शास्त्र मे विश्वास का समर्थन किया। दूसरे सुधारवादी नेता भी एक अधिक धर्म-शास्त्रीय और सैद्धातिक सदेश की ओर लौटने के लिए तैयार थे।

लेकिन नव्य उग्रवादी सदेश द्वारा किये जाने वाला खडन तो स्पष्ट दिखाई पडता था जब कि इसकी रचनात्मक दिशाएँ इतनी स्पष्ट नही थी, इसके कृपा के सिद्धात के बजाय पाप का सिद्धात अधिक सामने आया हुआ था। तो भी कुछ रचनात्मक बातो की झलक देखी जा सकती थी। यह एक शक्तिशाली प्रोटेस्टेट या नव्य सुधारवादी धर्म-शास्त्र था। उदारवाद ने कैथोलिको और प्रोटेस्टेटो के बीच के सैद्धातिक अतर को कम कर दिया था, जिसमे आशा बँध रही थी कि सामाजिक प्रश्नो पर कैथोलिको का क्रियात्मक सहयोग प्राप्त करने के लिए कुछ आधार मिल सकेगा। अब जब कि धर्म-शास्त्रीय विवाद फिर उठ खडा हुआ तो टॉमिज्म के 'युक्ति सगतिवाद' और 'पूर्णतावाद' के मुकाबले मनुष्य के प्रति लूथरन और काल्विनिस्ट दृष्टिकोण और मानव स्वभाव के निराशावादी और युक्ति विरोधी रूप पर बल दिया जाने लगा। समाजवाद के कार्य को छोड देने के कारण जिस समय कैथोलिक राजनीति पर प्रहार हो रहा था उसी समय कैथोलिक धर्म-शास्त्र पर भी प्रहार होने लगा। नव्य उग्रवादी आम तौर पर तीव्र समाजवादी थे और उन्हे रोम द्वारा अपने सामाजिक दर्शन की घोषणा किए जाने के बाद ईसाई समाजवाद के नेतृत्व पर कब्जा कर लेने की आशा थी। क्योकि अमरीका मे मार्क्सवाद कुछ कमजोर था, इसलिए प्रोटेस्टेट ईसाई समाजवादियो को अमरीकी श्रमिको की सहानुभूति प्राप्त करने की पूरी आशा थी। लेकिन ज्यो-ज्यो सैन्यवाद बढता गया और सिद्धात तथा व्यवहार दोनो मे ही समाजवाद ज्यादा पेचीदा होता गया तो इन नव्य उग्रवादियो को अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए

बड़े अस्पष्ट-से बयान देने पड़े। मिले-जुले मामलों के इस समाग में, धर्म की सामाजिक व्याख्या केवल इतना ही कर सकती थी कि वह इस बात में विश्वास बनाए रखे कि मानवीय इतिहास और दिव्य राज्य में कोई संबंध है। पर उसे भी यह तो मानना ही पड़ा कि मुक्ति की 'योजना' स्पष्ट दिखाई नही पड़ती। या फिर जैसा कि एक नेता ने स्पष्ट तौर से कहा, "हम में से बहुत-से लोग इतिहास मे ईश्वर के उद्देश्यों के प्रति ऐसी वफादारी के आधार ढूंढ रहे है जो हमारे समय मे परिणामो की आशा पर निर्भर नही है।"

इस अर्ध शताब्दी की धर्म-शास्त्रीय विचार-धारा में एक महत्त्वपूर्ण विषय सदा विद्यमान रहा है—वह है प्रायश्चित्त का सिद्धात। उन्नीसवी शताब्दी के पिछले भाग में नये धर्म-शास्त्र के सब से कठोर संघर्ष इसी सिद्धात के ऊपर हुए, और इन कटु विवादो के परिणाम स्वरूप ही सारे धर्म-शास्त्र के विरुद्ध आधुनिकवादी प्रतिक्रिया उठ खड़ी हुई। अब,यह माना जाने लगा है कि नैतिक जीवन के लिए धार्मिक कष्ट सहना एक दुखद पर आवश्यक चीज है। इसे उद्धार का प्राथमिक रूप माना जाय या नहीं, यह एक अलग बात है। आचार-शास्त्र के केंद्रीय स्थान मे क्रूस के फिर आ जाने से पता चलता है कि ऐसे बहुत से उदारवादी क्षेत्रों में जो प्रारंभिक दशकों में विशिष्ट रूप से ईसाई नही थे, फिर से ईसाइयत और ईसाई धर्म-शास्त्र का प्रवेश हो रहा है। आमतौर पर ऐसे सामाजिक धर्म-शास्त्र के विकास के प्रयत्न में जिसमे प्रोटेस्टेंट, कैथोलिक और यहूदियों की सहमति हो, इन तीनों ही दलों की रुचि नही रही है। जहां कहीं भी सक्रिय धर्म-शास्त्रीय निर्माण होने लगता है, धर्मों के बीच की दीवारें और ऊंची होती जाती है, क्योंकि धर्म-शास्त्र के विषय कितने ही सार्वभौमिक क्यों न हों, हर पंथ की प्रणालियां भिन्न-भिन्न होती है। मनुष्य जाति पर छाये हुए इस सामूहिक दुःख ने इस संकट का सामना करने के लिए सभी धर्मों को नया जीवन दिया है, लेकिन इसकी व्याख्या करने के तरीके इनके अलग-अलग है। क्रूस और शहादत के भाव के फिर से आने से प्रोटेस्टेंट,

कैथोलिक और यहूदी धर्म-शास्त्रियो को एकेश्वरवाद के साथ इन कष्टो का मेल बैठाने के अपने-अपने ढगो को पुनर्जीवित करने की प्रेरणा मिली है, लेकिन साथ ही साथ इसने एक ऐसा 'दुख का समुदाय' भी बना दिया है जो सभी पारम्परिक सीमाओ के ऊपर उठा हुआ है और जो दु ख के सभी धर्म-शास्त्रियो को एक विश्व-बधुत्व मे बाँधे हुए है। इस सकट के कारण प्रत्येक धर्म मे अब यह मानने की प्रवृत्ति बढ रही है कि सभी मनुष्यो की परीक्षा हो रही है और इसलिए सामान्यतया सभी को धार्मिक भक्ति का सम्मान करना चाहिए ।

धर्मशास्त्रीय यथार्थवाद और सत्तावाद (ऐग्जिस्टेशियलिजम)

उग्रवादी सामाजिक धर्म-शास्त्र मे इन प्रवृत्तियो के साथ-साथ धार्मिक विचारो मे एक दार्शनिक नवीनता आ गई है। उस निरपेक्ष आदर्शवाद का स्थान जिसने कि उदारवाद का पोषण किया था धर्म-शास्त्रीय यथार्थ-वाद ने ले लिया तथा विकासवादी उत्साह के स्थान पर मनुष्य के सासारिक सबधो के सत्तावादी विश्लेषण आ गये। आधुनिक दर्शन मे हुए इस विवर्तन का यद्यपि सभी धर्म-शास्त्रियो को ज्ञान है तो भी आये हुए इस परिवर्तन को स्पष्ट रूप से बता सकना आसान नही है। क्योकि कुछ अशो मे यह परिवर्तन बौद्धिक उतना नही है जितना कि सवेगी है, और इससे ससार तथा ईश्वर दोनो के ही प्रति एक बदली हुई प्रवृत्ति का पता चलता है ।

विलियम जेम्स ने जब से तकनीकी दर्शन और अध्यात्म-शास्त्र के विरुद्ध आदोलन छेडने के बाद से निरपेक्ष आदर्शवाद के विरुद्ध जो प्रति-क्रिया उठ खडी हुई थी, वह अब एक सकारात्मक सासारिक दृष्टिकोण धारण करने लगी थी। ह्वाइट हेड ने एक ब्रह्माडीय प्रक्रिया के सिद्धात को लोकप्रिय बनाया जो उभरने वाले विकासवाद का ही एक रूप था। जहा कि सैम्युऐल अलेक्जेडर-जैसे पहले के विकासवादी ईश्वर का प्रक्रिया

मे चरम परिणति पर पहुँचने वाले तत्त्व का पारम्परिक रूप देते रहे थे, और जहाँ कि हीगल ने 'शाश्वत सत्य' को परिणत होने की प्रक्रिया का उद्देश्य माना था, वहाँ ह्वाइटहेड ने ईश्वर को प्रक्रिया की वास्तविकता के तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया। इस प्रकार ईश्वर को समय मे ले आने से और उसे आदर्शवादी वस्तुओ को सत्य बनाने का सतत, सृजनशील कार्य सौप देने से बहुत अधिक धर्म-शास्त्रीय अतर पैदा हो गया। दर्शन मे ये दो परस्पर विरोधी विचार-धाराएँ है एक तो वह है जिसमे माना जाता है कि 'शाश्वत पदार्थ' जमीन पर उतर आते है और इतिहास के अदर प्रवेश करते है, और दूसरी वह जिसमे माना जाता है कि स्वतत्रता और ज्ञान की प्रगति ज्यो-ज्यो वस्तु रूप मे पूर्णता की ओर पहुँचती है त्यो-त्यो विशिष्ट पदार्थ धीरे-धीरे ठोस सामान्यो मे बदलते जाते है। ह्वाइट हेड के इस वास्तविकतावादी ईश्वर ने यह सभव कर दिया कि (रिशैल से आये) धर्म-शास्त्र का सबध प्राकृतिक दर्शन से हो सके और अवतार के उस सिद्धात को जो अब तक बहुत मानवीय प्रतीत होता था, एक ब्रह्माडीय ढाँचा मिल सके। जोन ड्यूवी के 'ए कामन फेथ' (१९३४) के प्रकाशन से वास्तविकतावादी धर्म-शास्त्र को और प्रोत्साहन मिला, और उसी से यथार्थ और आदर्श के बीच एक तारतम्य का प्रायोगिक और वास्तविकतावादी वर्णन मिल सका।

धर्म-शास्त्रियो ने अब एक ऐसे आम दार्शनिक धर्म-शास्त्र का निर्माण प्रारभ किया जिसमे धर्म-निरपेक्ष यथार्थवादी के नये 'प्रक्रिया दर्शनो' का समन्वय वास्तविक धार्मिक विधियो और विश्वासो के साथ हो सके। इस दिशा मे सबसे अधिक ध्यान देने योग्य प्रयत्न डगलस सी० मैकिन्टॉश, वाल्टर हार्टन, हेनरी एन वीमेन और चार्ल्स हार्ट शोर्ग ने किये है। उनकी प्रणालियो का पर्याप्त वर्णन करना यहाँ कठिन होगा, और उनके बीच के भेदो पर बल देने मे भ्राति ही उत्पन्न होगी। तो भी आमतौर पर कहा जा सकता है कि यथार्थवादी प्रतिक्रिया ने उदारवाद मे मानववादी धारा को समाप्त कर दिया। नैतिक आशावाद के द्वारा

के साथ ही, ईश्वर की 'मानवता' के सिद्धात का प्रभाव दार्शनिक धर्म-शास्त्रियो पर कम हो गया । 'श्रद्धा-यथार्थवादियो' द्वारा ईश्वर का चित्रण अब इस रूप मे किया जाता था कि वह इस ससार से निरपेक्ष रूप से भिन्न है, सत्ता का अतिम आधार वास्तविकता का तत्त्व है और स्वप्नो तथा भ्रातियो से जगानेवाला है । उनके अनुसार ईश्वर मनुष्य और उसके ससार से परे तथा उनके समुख है, ईश्वर का क्षेत्र न तो प्राकृतिक है, न सामाजिक। यथार्थवाद के एक समर्थक, एल० के० राबर्ट एल० कैलहून के शब्दो मे "सब मनुष्यो के मन से परे तथा उनके समुख एक इस प्रकार का मन है कि उसे आसानी से दिव्य, या ईश्वर कहा जा सकता है । धार्मिक यथार्थवाद के लिए यह कोई मानवीय रचना मात्र नही है, अपितु एक ऐसा कठोर परिवेशीय तत्त्व है जो अपने ही तरीको से मनुष्य की इच्छाओ और उसके तरीको पर प्रभाव डालता है, उन्हे बनाए रखता है और कुछ अश मे उन्हे नष्ट भी कर डालता है ।"

सत्तावाद ने यूरोप के महाद्वीप पर धर्म-निरपेक्ष दार्शनिक क्षेत्रो मे प्रमुख स्थान पा लिया था और आदर्शवादी अध्यात्म-शास्त्र पर ऐसा कठोर प्रहार किया था जैसा कि अमरीका मे यथार्थवाद ने किया था । यह सत्तावाद अमरीका मे एक सुस्पष्ट धार्मिक दर्शन के तौर पर आया । हीगल के डेनिश प्रोटेस्टेंट आलोचक सोरेन कीर्कगार्ड और उसके स्पेनिश कैथोलिक शिष्य मीगैल उनामुनो के बारे मे १९३० के दशक मे कहा गया कि वह एक उत्कठित तथा सतप्त चेतना के रूमानी व्याख्याकार है, जिस प्रकार की व्यक्तिगत बाते तथा उनका विश्लेषण धर्म-निरपेक्ष साहित्य मे फैशनेबल और चिकित्सा विज्ञान तथा नैतिक विज्ञान में महत्त्वपूर्ण हो गया था उन्हे उसने धार्मिक विचारो के लिए उपलब्ध कराया । लेकिन उनके द्वारा किये गए 'मानवीय परिस्थितियो' के विश्लेषण को अमरीका या अमरीकियो के लिए वास्तविक नही माना गया । बहुत-से अमरीकियो ने उन्हे अन्य स्थानो के विघटन के लक्षण के रूप मे उत्सुकता के साथ पढा तो भी धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो अमरीकी आदर्शवाद का आत्म-विश्वास कम

होता गया, त्यो-त्यो मानवीय परिस्थितियों के बारे मे एक सच्ची चिंता बढती चली गई। धर्म-शास्त्रियो और दार्शनिको के बीच ऐसा आलोचनात्मक साहित्य लिखा जाने लगा जिसने सतुलन, विलगाव, भग्नाशा और अपराध-भावना पर प्रकाश डाला जो कि धार्मिक पुनरुत्थानो मे अक्सर दिखाई पड जाते थे। इनके बारे मे कहा गया कि ये आधुनिक अनुभव सस्कृति के स्थायी तथ्य है, और इनसे साबित होता है कि ईसाई तथा यहूदी धर्म-शास्त्र के सिद्धात कि मनुष्य एक विरोधी ससार मे पतित और अजनबी प्राणी है, तथ्य पर आधारित है और यह आज भी उतना ही सत्य है जितना कि पहले था। इस प्रकार जिसे उनामुनो ने 'जीवन की दुखद भावना' कहा है उसका उदय हुआ, और धर्म-शास्त्र के अदर पाप, शाप और ईश्वरीय कृपा के द्वारा मुक्ति के बारे मे सिद्धातो के प्रति धर्म-शास्त्रियो के मन मे सम्मान बढने लगा।

सत्तावाद के बारे मे पहले तो यह लगा कि यह यहूदी, कैथोलिक और प्रोटेस्टेट धर्म-शास्त्रियो को एक दूसरे के निकट ले आयेगा, पर अब इसका प्रभाव प्रोटेस्टेटो के बीच ही अधिक है। पोप द्वारा १९३० मे सत्तावाद की निदा किये जाने के बाद से तो निश्चय ही सार्वजनिक शिक्षण और धर्म-शास्त्रीय प्रकाशन नियो-टॉमिज्म के घेरे मे रहेगे। लेकिन इस रोमन प्राचीर के पीछे, अन्य युगो की भाँति इस युग मे भी आधुनिक विचारो के आधार पर रूढिवादिता का पुनर्निर्माण करने के प्रयत्न चलते रहेगे। केवल पोप की घोषणा के द्वारा मार्टिन ब्यूबर, गेब्रियल मार्सेल, जैक मैरिटैन, पाल टिलिच और निकोलस बैडियेफ-जैसे लोगो को एक दूसरे पर प्रभाव डालने से नही रोका जा सकता। अमरीका मे खास तौर पर अतर्राष्ट्रीय और अतर्मतीय विचारो के इस आदान-प्रदान के अच्छे परिणाम निकलने की आशा है। इससे उस कट्टर-पथी आचार पर रोक लग जायगी जिसके लिए कि पोप तथा फडामेटलिस्ट लोग प्रार्थना करते है और जिसका मेल धर्म-शास्त्रीय या अन्य किसी बढते हुए विज्ञान से नही बैठ सकता।

जैसा कि सभव प्रतीत होता है, यदि दार्शनिक धर्म-शास्त्र की वास्त-विकतावादी प्रवृत्तियो का अधिक निकट सबध एक ओर से सत्तावादी सिद्धात से अधिक हो जाय, और दूसरी ओर ऐतिहासिक तथा सामाजिक धर्म-शास्त्र से तो हमारे समय के एक महान बौद्धिक पुर्ननिर्माण के रूप मे एक अमरीकी धर्म-शास्त्र का उदय हो सकता है। दूसरे शब्दो मे, पिछले दो दशको मे अमरीकी उस कष्ट को समझने लगे है जिनके कारण सत्तावादी धर्म-शास्त्र उत्पन्न हुआ था, और अब वे दुख की इस धार्मिक अभिव्यक्ति को कुछ अनगढ आत्माओ की भावनात्मक चिल्लाहट नही मानते। दुख के धर्म-शास्त्र (जिनमे प्राचीन ग्रीक ट्रेजेडी का पुनरुत्थान भी समिलित है) आज हमारे युग तथा हमारी परिस्थितियो के यथार्थ और अतिरंजित चित्रण बन गए है। इस बात के जान लेने से हमारे धार्मिक सिद्धातो को आतरिक गरिमा और स्थायी बल मिला है कि ऐतिहासिक शाप एक बुद्धि के परे का अनुभव नही है, यह एक शताब्दियो के मानवीय सघर्ष का आतरिक रूप है, और पर्याप्ति बनने के लिए हमारे धर्म-शास्त्र के धार्मिक सिद्धातो को न केवल नया होना चाहिए अपितु उन्हे हमारा सबध दूसरे राष्ट्रो और भिन्न मतो के साथ भी जोडना चाहिए। इससे आम सदेशात्मक साहित्य का समझना भी अधिक सरल हो जाता है। पैगबरो की आवाज बाइबिल की जैसी होनी चाहिए, भले ही उन पर आधुनिकता की छाप पडी हो। यह आवश्यक नही है कि बौद्धिक पहुँच से परे के एक नये रूप मे प्राचीन ईश्वरीय शब्द की व्याख्या कम ही हो, जैसा कि उदारवादी मानते थे। यह भी हो सकता है कि यह दुख से कराहते हुए ससार की सबसे स्पष्ट आवाज हो। धार्मिक विचार के इस यथार्थवादी समग्रीकरण की प्रगति ईसाइयो के बजाय यहूदी विद्वानो के बीच अधिक हुई है। यहूदी धर्म के प्रचार के लिए स्थापित सभा ने जो पुर्ननिर्माणवादी आदोलन चलाया है, उसमे यहूदी धर्म के ऐतिहासिक, दार्शनिक और सामाजिक पहलुओ का एक अनोखे तथा उग्र ढग से सम्मिश्रण हुआ है। लेकिन विशेष तौर से

इसका रूप यहूदी सभ्यता और राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं का ही है। इसे सीधे तौर से अधिक व्यापक धर्म-शास्त्र पर लागू नहीं किया जा सकता, साथ ही साथ, अभी रब्बियों में भी इस बारे में सहमति नहीं है कि बिना विनाशक बने इस प्रकार का पुनर्निर्माण कहाँ तक आगे चल सकता है।

नया मानवतावाद

वर्तमान बौद्धिक स्थिति के अपने वर्णन को पूरा करने के लिए अभी हमें उदारवाद की आलोचना के एक और पहलू का वर्णन करना है। उदारवादियों के एक अल्पमत, उनके आधुनिकवादी पक्ष ने घटनाओं के प्रवाह से यह परिणाम निकाला है कि उदारवाद इसलिए बदनाम हो गया कि यह पर्याप्त उदार नहीं था और यह हमेशा आस्तिकता, राष्ट्रीयता, अतिप्रकृतिवाद, धार्मिक राजनीति और साम्प्रदायिक स्वार्थों के साथ समझौते करता रहा है। उनके विचार में बुद्धि से विमुख होना, ऐतिहासिक मतों का बचाव करना, विश्वास को संस्था का रूप दे देना और धर्मों के बीच में भाईचारे का समान न होना, ये बातें स्वतंत्र धर्म की मुख्य शत्रु हैं। धार्मिक संस्थाओं में असहिष्णुता और धर्म-शास्त्र के पुनरुत्थान के कारण निराश होकर विभिन्न मतों के इन आधुनिकवादियों ने मानवतावाद के झंडे के नीचे अपना एक संगठन बना लिया। हालाँकि वे एक और नया सम्प्रदाय न चलाने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं और इसीलिए विभिन्न धर्मों के मानवतावादियों के बीच अनौपचारिक साहचर्य को बढ़ावा दे रहे हैं, तो भी वे अधिक शक्तिशाली बनते जा रहे हैं और मिशनरी गति-विधियों के लिए अपना संगठन करने लगे हैं। बौद्धिक रूप से अभी मानवतावाद का अपना कोई दृढ़ स्वरूप नहीं बन पाया है, यद्यपि मानवतावादी सिद्धांतों का प्रचलन हो रहा है और इस तरह एक चौथा मत बनता हुआ दिखाई दे रहा है। १९३३ में सबसे पहले एक मानवतावादी घोषणा प्रकाशित की गई थी जो कि अभी भी इस

दल के द्वारा एक मत विरोधी मत के रूप मे काम मे लाई जाती है। इसमे धर्म की यह नीचे लिखी परिभाषा सबसे अधिक ध्यान देने योग्य है :

धर्म मे वे क्रियाएँ उद्देश्य और व्यवहार आते है जो मानवीय दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। कोई भी मानवीय चीज धर्म के बाहर नहीं हो सकती। इसके अदर, श्रम, कला, विज्ञान, दर्शन, प्रेम, मित्रता और मनोरंजन का--अर्थात् उन सभी बातो का समावेश होता है जो बौद्धिक रूप से सतोष देने वाले मानवीय जीवन को अभिव्यक्त करती हैं। धार्मिक और धर्म-निरपेक्ष के बीच के भेद को अब और अधिक बनाये रखा नही जा सकता।

यद्यपि धर्म की परिभाषा के रूप मे इस घोषणा की आलोचना की जा सकती है, अधिकाश मतो की तरह यह भी धर्म की आम रूप से परिभाषा नही करती बल्कि एक विशिष्ट मत के तात्पर्य को बताती है। इस मत मे आधारभूत बात यह है कि धार्मिक और धर्म-निरपेक्ष मे विभेद की जगह मानवीय और अमानवीय के बीच का विभेद रखा गया है। मानवतावादियो मे ऐसे वामपक्षी एकत्ववादी (यूनिटेरियन) है जिन पर एमर्सन के उदारवाद का प्रभाव है और जो उसी की तरह ईसाई दायरो मे बद नही रहना चाहते, ऐसे भौतिकवादी है जो अब सिद्धातवादी भौतिकवादी नही रहे लेकिन जो 'आत्मा', 'अनैतिक', 'पारलौकिक' तथा 'ईश्वर' आदि शब्दो का प्रयोग करने वाले धर्म-शास्त्रियो पर सदेह करते है। वे अधिक धर्म-निरपेक्ष सत्यो के लिए अधिक धर्म-निरपेक्ष भाषा पसद करते है, ऐसे प्रकृतिवादी है जो नव्य उग्रवादी धर्म-शास्त्रियो के द्वारा अतिप्राकृतिक प्रतीको के प्रयोग से खिन्न हो चुके है और जिन्हे सगठित धर्म मे कोई उपयोगिता दिखाई नही देती, लेकिन फिर भी तर्कसगत जीवन के लिए जिन्हे 'धार्मिक' चिता है। अब भी कुछ ऐसे पुराने विचारो के युक्तिवादी, स्वतत्र विचारक या व्यवसायी नास्तिक है जिन्हे एक व्यापक धर्म के रूप मे मानवतावाद की असफलता पर बहुत अफसोस है, और जो अपने आप को धार्मिक मानवतावादी कहलाने के लिए तैयार है। ईसाई चर्च, यहूदी धर्म तथा अन्य विशिष्ट धार्मिक सग-

ठनों के अंदर उदार विचारों वाले ऐसे बहुत-से व्यक्ति हैं जिन्हें अपने संगठन की संकुचितता पर बुरा लगता है और जो मानवतावादी समाज में शामिल होकर अपने व्यक्तिगत, अधिक विस्तृत विश्वास का प्रदर्शन करते हैं। और ऐसे भी बहुत-से व्यक्ति हैं जिन्हें किसी भी मत का नहीं बताया जा सकता क्योंकि उनका मन न तो किसी धार्मिक संगठन में लग सकता है और न धर्म-निरपेक्ष रुचियों के निष्प्राण संसार में। तो भी 'मानवीय व्यक्तित्व की पूर्ण प्राप्ति' और 'एक स्वतंत्र सार्वभौमिक समाज' को बढ़ावा देने की अपनी तीव्र इच्छा को वे प्रकट करते ही रहते हैं। साहचर्य, शिक्षण, प्रकाशन और सामान्य हितों को बढ़ावा देने के काम में, इन विभिन्न प्रकार के उदारवादियों को पास-पास लाने में मानवतावादी समाजों को सफलता मिली है। सदस्यता की संख्या छोटी होने के बावजूद एक स्वतंत्र धार्मिक आंदोलन के रूप में मानवतावाद का फिर से प्रकट होना महत्त्वपूर्ण है। यह इस बात का प्रमाण है कि आधुनिकवादी उदारवाद अभी भी एक सकारात्मक धार्मिक विश्वास के रूप में जीवित है, और 'कनफर्मिस्ट' दिमाग को दार्शनिक जैसे हद दर्जे के व्यक्तिवादी मालूम पड़ते हैं वास्तव में वे वैसे नहीं हैं। पारम्परिक धार्मिक घेरे के आराम में रहनेवाले लोगों को स्वतंत्र देश में स्वतंत्र धर्म का सामना करना पड़ता है। हालांकि सामाजिक बौद्धिक जीवन बिताने वाले लोगों को स्वतंत्र विचारक धार्मिक अनाथ या आवारा मालूम पड़ सकते हैं, पर वास्तव में इन स्वतंत्र आत्माओं ने अपने भ्रमण तथा खोज में अनेक मसीहा पैदा किये हैं, और प्रकाश की प्राप्ति और भाईचारे को लाने में बहुत सहायता की है।

धार्मिक मानवतावादी आंदोलन में कम संगठित तथा कम स्पष्ट रूप में विद्यमान धार्मिक धर्म-निरपेक्षवादियों की एक बड़ी संख्या भी है। उनके विचार से धर्म-निरपेक्षवाद का मतलब न तो धर्महीनता से है और न धार्मिक उदासीनता से, बल्कि उसका संबंध कुछ सत्यों और संस्थाओं से है जिन्हें वे, नव संगठित धर्मों के मुकाबले पवित्र मानते हैं। वे अपने

लाप को प्रजातत्र, स्वतत्रता और विज्ञान का समर्थक मानते है और अक्सर टामस जैफर्सन की भावना को अपने अमरीकी सरक्षक सत के तौर पर अपील करते है। धार्मिक सस्थाओ के वे आमतौर पर विरोधी होते है और वे विश्वास करते है कि एक ऐसे 'सामान्य मत' की अभिव्यक्ति सभव है जिसके प्रति सभी स्वतत्र आत्माएँ वफादार हो, और जो उन लोगो मे एकता पैदा कर सके जिन्हे सगठित धर्म ने बाँट दिया है।

कितने ही सुधारको और मसीहाओ को इसलिए सताया गया और शहीद बना दिया गया कि उन्होने धार्मिक बचकानेपन के अवशेषो को दूर करने का प्रयत्न किया था। एक परिपक्व मन को रूढ़िवादिता के जाल कैसे बचकाने मालूम पड़ते है! परम्परावादी और फडामेटलिस्ट लोग कितनी जल्दी ऐसे सिद्धातो और धर्म के स्वरूपो से चिपक जाते है जिन्होने आधुनिक मनुष्य का हार्दिक सहयोग प्राप्त करने की अपनी शक्ति खो दी है। क्या अब वह समय नहीं आ गया है कि हम लोग प्रौढो का एक धर्म तय करने और उसका पालन करने के प्रयत्न मे एक होकर जुट जायें ?

होरेस एम० कैलन ने अपनी पुस्तक 'ऑफ क्लैरिकलिज्म एड सेक्युलरिज्म इन रिलिजन' मे इस प्रकार के धर्म का प्रतिनिध्यात्मक रूप सामने रखा है। लेकिन धार्मिक रूप से 'सबद्ध' लगभग ३० प्रतिशत लोगो मे से कितनो की ओर से वह बोल रहा है, यह कहना कठिन है। फिर भी हमे यह अवश्य मानना पडेगा कि 'धर्म-निरपेक्षवाद' एक सकारात्मक मत के रूप मे विद्यमान है, यद्यपि यह असगठित है और धर्म-शास्त्रीय रूप से सुस्पष्ट नही है तो भी यह 'ईश्वर हीन' नही है और न यह धार्मिक रूप से निरक्षर ही है। साहित्यिक विद्वानो, राजनैतिक क्षेत्रो, समाजविज्ञानियो और भूतपूर्व मार्क्सवादियो मे इसके बहुत-से अनुयायी है। पादरी लोगो का लाभ लिये बिना धर्म ऐसा लगता है जैसे मुफ्त मिल गया हो, लेकिन चर्च के लोगो द्वारा यह जो कहा जाता है कि ऐसा धर्म 'आगमतत्व चेतना' का द्योतक है, यह बात आम तौर पर

निराधार होती है। एक पर्यवेक्षक को मुख्य कठिनाई इस बात के जानने मे मालूम देती है कि धर्म और धर्महीनता के बीच रेखा कहाँ खींची जाय। क्योकि जैसा कि मैयर शापिरो ने ठीक ही कहा है, "अब धर्म के भी भाई-बंधु होने लगे है।"

सार्वजनिक पूजा तथा धार्मिक कला की प्रवृत्तियाँ

धर्म-शास्त्र के दो काम है, एक तो इसे धार्मिक विश्वास को ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ चलाना होता है, और दूसरे पूजा के किसी विशेष प्रकार को समझ मे आने योग्य बनाना होता है। इस शताब्दी के प्रारभ मे धर्म-शास्त्र पूजा के बजाय विज्ञान के प्रति अपने कर्त्तव्य मे अधिक जागरूक था। सिद्धान्त और विधि-विधान मे परस्पर अलगाव-सा हो गया था, सिद्धान्त (जैसा कि हमने पिछले अध्याय मे देखा है), विज्ञान और दर्शन के साथ चल रहा था, जबकि विधि-विधान ने सामाजिक सेवा का पल्ला पकड लिया था। अपने इस विचलन मे दोनो ने एक दूसरे की आवश्यकता को समझ लिया है, और उनके वर्तमान मेल-मिलाप ने दोनो को ही नई शक्ति दी है। धर्म-शास्त्री तथा जन-साधारण दोनो ही अब इस बात को समझने लगे है कि पूजा धर्म का प्राण है, और वे इसे आन्तरिक कृपा का बाह्य साधनमात्र नही मानते। अब वे इसे अपने अन्दर एक साध्य मानवीय विषय मानने लगे है जिससे जीवन को गरिमा तथा अमरीकी जीवन को सम्पन्नता मिलती है। पूजा के लिए इस चेतन सकल्प का सृजन बीसवी सदी की एक अमरीकी उपलब्धि है, और मै समझता हूँ कि इसके मूल मे हमारे समय का दु ख है। एक बुद्धिमान फ्रेंच आदमी ने कहा था, "अनुभव हमे सिखाता है कि जल्दी या देर मे हमे घुटने टेकने ही पडते है, और ईश्वर के सामने घुटने टेकने मे सबसे कम शर्मिन्दगी उठानी पडती है।" अब अमरीकी लोग भी पूजा के कर्त्तव्य के बजाय इसकी धार्मिक आवश्यकता को समझने लगे है, और अपने चर्चों तथा मन्दिरो मे एक ऐसे ईश्वर की पूजा करने वे वापिस आ गये है,

जिसके प्रति उनके मन मे भय तथा प्रेम दोनो है। इस प्रकार गर्जाघर बना दिए जाने के बाद और घुटने टेक देने के बाद, आज के अमरीकी अपने पुरखो के मुकाबले मे सार्वजनिक पूजा की अधिक माँग कर रहे है।

पूजा की कला मे पारम्परिक अविश्वास

यहाँ उन पूर्वग्रहो और रुकावटो की व्याख्या करना आवश्यक है जिनके कारण पचास वर्ष पहले धार्मिक लोगो के बीच भी पूजा का ह्रास हुआ, और जो पूर्वाग्रह और रुकावटे अभी भी आबादी के एक बडे भाग मे चली आ रही है। पूजा की कला के चेतन विकास के मार्ग मे आयी इन बाधाओ को समझने मे ही, उस सृजनात्मक काम की सही ढग से सराहना हो सकेगी जो पिछले वर्षो मे किया गया है।

पहले तो प्यूरिटन लोगो के बीच औपचारिकताओ और विधि-विधानो के प्रति लबे समय से चला आ रहा पूर्वग्रह है जिनमे से 'पोप-वाद' की गध आती है। १९४७ के 'एनसाइक्लिकल मेदियातर दी' (Encylical Mediater Dei) मे पोप के पूजा सबधी सिद्धात का फिर समर्थन किया गया है। पूजा का आम उद्देश्य "ईश्वर का यश फैलाना और मनुष्य का पवित्र करना" बताया गया है। पोप ने आगे इसकी इस प्रकार व्याख्या की है "यद्यपि सार्वजनिक पूजा व्यक्तिगत पूजा से कही ज्यादा श्रेष्ठ है, तो भी व्यक्तिगत पूजा के द्वारा आदमी इस योग्य हो जाता है कि वह सार्वजनिक पूजा के पवित्र करने वाले प्रभाव को ग्रहण कर सके।"

पूजा ईश्वर का यश फैलाने के लिए की जाती है—यह तो आम-तौर से माना ही जाता था, पर प्यूरिटन लोगो ने इस घोषणा को बहुत नापसन्द किया कि सार्वजनिक पूजा व्यक्तिगत पूजा से ज्यादा श्रेष्ठ है। प्यूरिटन लोगो ने अपने चर्चो को न केवल साज-सज्जा ही यहा तक हटा दी कि वे विद्यालय-कक्ष या सम्मिलन-कक्ष से दिखने लगे, अपितु उन्होने दावत, उपवास, विवाह और अन्त्येष्टि को सार्वजनिक रूप से मनाने से

भी भाग लेना बद कर दिया। वे अपने अदर सादगी, कष्ट सहिष्णुता और समग्रता पैदा कर रहे थे और उनकी कला मे (विशेषकर उनकी स्थापत्यकला और उनके उपदेशो मे) इसकी झलक स्पष्ट दिखाई देती है। इसके ही अनुसार उनकी सार्वजनिक सभाओ मे आमतौर पर प्रशिक्षण दिया जाता था, और उनके पादरी मुख्य रूप से अध्यापक ही माने जाते थे। सार्वजनिक प्रार्थना मुख्यत शिक्षणात्मक होती थी, यह इसलिए ही थी कि मनुष्य ईश्वर के निकट आये (क्योकि उसकी उपस्थिति मे तो वे प्रतिदिन काम करते ही थे) अपितु इसलिए थी कि वे धार्मिक शब्द और कानून की व्याख्या सुनने के लिए एकत्र हो।

इस बात मे उनकी यहूदियो के साथ बहुत समानता है। यहूदी मदिर मे होने वाली धार्मिक विधियो और शिक्षण केद्र मे होने वाली अध्ययन-विधियो मे स्पष्ट अतर करते है। इसलिए व्यवहार मे पुरोहित का दर्जा और प्राचीन बलि की विधियाँ एक अन्य प्रकार की पवित्रता के अधीन रहती है जिन्हे वे 'कानून के प्रति प्रेम' के नाम से पुकारते है। सामूहिक जीवन के इस प्रकार के नैतिकवादी और शिक्षणात्मक भाव अमरीका मे आमतौर पर ऐसे लोगो के बीच भी फैले हुए है जो प्यूरिटन लोगो के या प्राचीन इजराइल के तौर-तरीको से परिचित नही है। सिर्फ इसीलिए कि ये समिलन-स्थान 'मनुष्य के आविष्कार' है, बाइबिल की सस्थाएँ नही है, इन्हे 'सच्चे' धर्म से बाहर का समझा जाता है। और जिस दिखावे के साथ ये सार्वजनिक पूजाएँ की जाती है वह स्पष्ट ही मनुष्यकृत होने के कारण पवित्रता का एक विकृत रूप प्रतीत होता है; ऐसा लगता है कि कृत्रिम अलकारो को जबर्दस्ती धार्मिक कर्तव्य का रूप दे दिया गया है। 'ईश्वर तुझ से क्या चाहता है ?' केवल इसका महत्त्व है, शेष आवश्यक है। "इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि विधि-विधान धर्म नही है। इससे केवल धर्म के महत्त्व का पता चलता है और उसे औपचारिक रूप से मनाने मे सहायता मिलती है—यह केवल एक प्यूरिटन धर्म की एक तकनीक है" ये शब्द यद्यपि एक यूनिटेरियन हेरोल्ड

स्कॉट द्वारा लिखे गए थे, पर ये अधिकांश अमरीकी प्रोटेस्टेंटो की राय प्रकट करते है। मैने एक फंडामेंटलिस्ट उपदेशक को अपने उपदेश की चरम सीमा पर बडे जोर से यह कहते हुए सुना है, "भाइयो, मै तुम्हे बताता हूँ कि ईश्वर को धर्म से घृणा है, वह तो श्रद्धा चाहता है।" बहुत-से श्रद्धावान तथा श्रद्धाहीन दोनो प्रकार के अमरीकियो मे यह भाव पाया जाता है कि धर्म का सच्चा तात्पर्य धार्मिकता से है और विधि-विधान या तो मूर्तिपूजा है या फिर मूर्खता।

पूजा के शिक्षणात्मक भाव का उस अवैयक्तिकता से विरोध है जिसकी आवश्यकता सार्वजनिक प्रार्थना मे पडती है और इसका सम्बन्ध केवल रुचि से ही नही है। अमरीका मे प्रोटेस्टेंट आचार-शास्त्र व्यक्तिवादी रहा है, और उसके द्वारा मनुष्य और ईश्वर के सम्बन्ध की व्याख्या व्यक्तिगत तौर पर की गई है। परिणामत कृपा के अवैयक्तिक माध्यम और ध्यान के प्रकार न केवल अरुचिकर औपचारिकता प्रतीत होते है बल्कि उनसे घनिष्ठ व्यक्तिगत सम्बन्ध मे व्यवधान पडता मालूम होता है। एक नम्र समाज की 'सुविधाओ और सौजन्यो' के प्रसंग मे पूजा को ला बिठाना अमरीकी जीवन की अनौपचारिकता को अरुचिकर प्रतीत होता है, और उसमे से दम्भ की बू आती मालूम पडती है। विधि-विधान के कारण किया गया त्याग सच्चा त्याग नही है और न उस प्रकार की गई तपस्या मे ही कोई अर्थ दिखाई पडता है।

इन्ही कारणो से औपचारिक पूजा और प्रार्थना को चलाने के लिए जिस 'व्यावसायिकता' की आवश्यकता थी उससे प्रोटेस्टेंट पादरी घृणा करते थे। "एक अच्छे पादरी को सार्वजनिक रूप से ईश्वर या लोगो को यह बताना नही पडता कि कितनी ही सुबह पवित्र से पवित्र लोगो या चीजो के साथ व्यवहार करते हुए उसे अन्दर-अन्दर कितनी ग्लानि हो रही होती है। लेकिन उस आवश्यक अनुशासन और दम्भ के दैनिक क्रम मे कोई ज्यादा अन्तर नही है।" दम्भ के प्रति यह घृणा (जिसने कि एमर्सन को पादरी मण्डली से निकलवा दिया था। अब भी पादरी

के काम मे, तथा व्यावसायिक 'अभिनय' जैसे लगने वाली पूजा के मार्ग मे एक वडी रुकावट है।

अमरीकी लोगो की इस प्रवृत्ति से उस प्रभाव के वारे मे भी पता चल जाता है जो उपदेशक मिशनो और धर्मोपदेशीय अपीलो का जनता के एक वडे भाग पर है। विली ग्राहम-जैसे उपदेशक रेडियो और प्रेस से तथा चर्च के वाहर की वेदियो से मनुष्यो को व्यक्तिगत रूप से 'ईसा के पास आने' का उपदेश दे सकते है। उनका वल चर्च की प्रक्रियाओ या धार्मिक शिक्षा के वजाय वाइविल के अध्ययन पर होता है। यहाँ यह वात ध्यान देने योग्य है कि ऐसी अपीले पुराने धर्म के नाम पर की जाती है और ऐसे उपदेश पूजा के बजाय मनोरजन के अधिक निकट समझे जाते है। आजकल सामग्री वही रहने के वावजूद पुराने शास्त्रो का एक नया रूप हो गया है, उनका मूल्य अव प्राचीन वस्तुओ का-सा वढ गया है। अमरीकी लोगो मे इस प्रकार की एक सच्ची भावुकता है और स्वभावत. उनकी पूजा पर इसकी छाप पडी है।

सगठित धर्म का प्रकार होने के कारण सार्वजनिक पूजा के प्रति अविश्वास ऐसे लोगो मे भी पाया जाता है जिन्हे समाजशास्त्री पथ कहते है। पथो मे विधि-विधानो की विशेष आवश्यकता नही होती। क्योकि उनके पास एक विशेष दिव्य ज्ञान होता है इसलिए उन्हे साधारण पूजा की आवश्यकता नही पडती। वे चुने हुए मनुष्य है और सूक्ष्म सत्य का प्रचार करते है। 'जेहोवाज विटनेस' मे जज रदर फोर्ड कहता है कि "सगठित धर्म ईश्वर का नही हो सकता धर्म वास्तव मे ईसाइयत का सदा रहनेवाला शत्रु है।" ईसाइयत के जन्म के समय के समान यह भविष्यदर्शी आदोलन 'सगठित धर्म' का खडन करते और दृष्टि या ईश्वरीय प्रकाश की एक ऐसी व्यापकता सामने रखते है, जो स्वीकार कर लिए जाने पर पारस्परिक पूजा को विल्कुल पुराना वना देगी। जिस प्रकार इन आदोलनो मे भ्रम के दूर होने और सत्य की माँग को सतुष्ट करने मे चर्चो के असफल हो जाने का वार वार वर्णन किया जाता है उससे यह

तो पता चलता ही है कि सार्वजनिक पूजा अपर्याप्त है। ईश्वर के अधीन हो जाने मे एक आतरिक तथा स्वाभाविक आवश्यकता है और यह धार्मिक प्रदेश अभी अमरीका से पूरी तरह लुप्त नही हुआ। ईश्वर मे विश्वास करने और धर्म मे विश्वास करने मे जो महान् अन्तर है उसका ज्ञान यह उन लोगो को करा देता है जो 'सगठित धर्म' को पनपाना चाहते है और पूजा के लिए कृत सकल्प है।

यह आमतौर से माना जाता है कि पूजा का भाव स्वाभाविक रूप से उदय होता है, और पूजा के लिए दी जाने वाली शिक्षा इसे बिगाड देती है। प्रोफेसर जोसे ने लिखा है, "धार्मिक भक्त के हृदय मे पूजा का भाव ऐसे ही स्वाभाविक रूप से उदय होता है जैसे कि उस तरुण के हृदय मे प्रेम उत्पन्न होता है, जिसने किसी युवती के सौन्दर्य से प्रेरणा पायी है। . . . . . पूजा के भाव के न उदय होने से यही पता चलता है कि उस व्यक्ति के धर्म मे एक बहुत बडी कमी है जो कि केवल पूजा के महत्त्व पर बल देने से ही पूरी नही की जा सकती।" यह बात सच हो सकती है, लेकिन इसमे इस तथ्य की उपेक्षा कर दी गई है कि यदि 'धार्मिक भक्त के हृदय' को ऐसा ही अविचारपूर्ण रहने दिया जाये जैसा कि 'तरुण का हृदय' होता है, तो पूजा बिल्कुल एक 'स्वाभाविक' आवेश मे समान हो जायेगी और ईश्वर की पूजा तरुणाई की पूजा के समान ही रोमानी होने लगेगी। आमतौर से यदि कोई व्यक्ति धार्मिक परिवेश के पैदा हो तो उसके लिए पूजा एक आदत के तौर पर शुरू होती है यह स्वाभाविक के बजाय पारम्परिक अधिक होती है, और जब कोई व्यक्ति बौद्धिक परिपक्वता प्राप्त करता है तो और आदतो के समान वह इसे भी आलोचना की दृष्टि से देखता है। अत इसका मूल्याकन पूजा की भावना के अनुसार ही होना चाहिए न कि, जैसाकि प्रो० जोसे ने ठीक ही कहा है, जीवन को समृद्ध करने या चरित्र को दृढ करने के आधार पर। लेकिन बहुत-से लोगो का विश्वास है कि जानबूझकर पूजा के भाव को उत्पन्न करना अव्यावहारिक है और इससे पवित्र आत्मा के कार्य मे रुकावट

पडती है। यह अमरीकी भावुक तथा व्यक्तिवादी परम्परा के अनुकूल ही है कि कालरिज की कविता का अन्तिम छन्द सबके लिए इतना परिचित हो :

वही प्रार्थना अच्छी करता है जो अच्छा प्यार करता है
सभी छोटी और बडी चीज़ो को,
क्योकि उसी ईश्वर ने जो हमे प्यार करता है
ये सब चीजे बनाई है और वे उसे प्रिय है।

इसी कविता के पहले छन्द मे एक विदेशी ध्वनि है :

विवाह के भोज से भी बढ कर,
मुझे कही अधिक प्रिय है,
कि मैं चर्च तक जाऊँ
एक अच्छी सगति मे।

दूसरी ओर कैथोलिक और ग्रीक आर्थोडाक्स लोगो मे एक भिन्न प्रकार का ही विश्वास पाया जाता है कि ईश्वर ने स्वय ही पूजा की विधि की कठोर सीमाएँ निश्चित कर दी हैं क्योकि उसने सार्वजनिक पूजा के लिए एक विशेष प्रकार के ही विधि-विधान का आदेश दिया है। उन चर्चों मे भी जो कि सार्वजनिक पूजा को कोई दिव्य क्रिया नही मानते, पारम्परिक रूपो के लिए इतना आदर है कि सार्वजनिक पूजा की कला के उनके आदर्श वस्तुत रूढिवादी हो जाते है। अधिकाश विश्वासी लोग तो यह मान लेते है कि पूजा के उनके प्रकार सभी समय के लिए एक बार निश्चित हो चुके है, इसलिए उनका मानना धार्मिक अभिव्यक्ति का एक रूप न होकर एक धार्मिक कर्त्तव्य है। इसी मे धार्मिक कृत्यो के जादुई प्रभाव मे आम प्रचलित विश्वास भी जुड जाता है जिससे पूजा मे उपयोगितावाद की स्वीकृति मालूम पडने लगती है।

सबसे गभीर बात शायद यह है कि परिष्कृत रुचि वाले और कलाओ की शिक्षा पाये हुए लोग यह समझने लगे है कि पूजा की विधियाँ हद दर्जे की पुरानी है। चर्चों की जो दशा आजकल है उसे देखते हुए यह नही

कहा जा सकता कि विरोध की यह आवाज केवल द्वेष या पक्षपात के कारण है। नई शराब को पुरानी बोतलो मे डालने से क्या फायदा ? कुछ आधुनिक ढग के चर्च का निर्माण, किसी आधुनिक भक्ति गीत का गाना, कभी-कभी धार्मिक अभिनय या नृत्य कर लेना या क्रूस को और सुन्दर शकल मे खडा कर देना—ये सब बाते कला की आत्मा मे केवल कृत्रिम प्रवेश हैं। वास्तव मे धर्म अब सृजनशील नही रहा है और सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति मे धर्म-निरपेक्ष कलाओ के साथ मुकाबला करने की कोशिश भी नही कर रहा है। इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे बहुत-से उदारवादी पादरियो के मन मे भी ऐसा सन्देह रहा था, और चर्च की प्रार्थना को आकर्षक बनाने के बजाय उन्होने पारम्परिक पूजा के लिए कुछ स्थानापन्न चीजे खोजने का प्रयत्न किया।

सार्वजनिक पूजा मे रुचि की वृद्धि

इन कठिन बाधाओ के बावजूद, धार्मिक कलाकारो को (यदि उन्हे यह नाम दिया जा सके) पूजा के आन्तरिक मूल्यो की सराहना का स्तर उठाने, और हमारी सस्कृति के अनुरूप अभिव्यजक स्वरूप वाली धार्मिक विधियो का पुर्ननिर्माण करने मे बहुत अधिक सफलता मिली है।

पूजा की विधि का पुर्ननिर्माण करने की प्रारम्भिक प्रेरणा विदेश से आयी। कैथोलिक मत मे लिटर्जिकल मूवमेण्ट (सार्वजनिक पूजा का आन्दोलन) एक शताब्दी से चला आ रहा है, जिसे इसकी प्रेरणा 'आक्सफोर्ड मूवमेण्ट' और डाम प्रोस्पर गेराजर के लेखो से मिली थी। पहले मे चर्च द्वारा 'ईसा के रहस्यवादी शरीर' के रूप मे ईश्वर की सामूहिक प्रार्थना पर बल दिया गया था, जबकि गेराजर ने फ्रास मे ग्रिगोरियन सगीत तथा अन्य प्राचीन सार्वजनिक रूपो का पुनरुद्धार किया। पोप का सरक्षण मिलने पर यह आन्दोलन अमरीका मे भी बीसवी सदी के प्रारम्भिक भाग मे फैला। इस आन्दोलन के सामने दो मुख्य उद्देश्य हैं जिनमे भ्रान्ति होने से दोनो की ही पूर्ति मे बाधा पड जाती है एक तो है

पूजा के विकास के लिए सार्वजनिक कलाओ की उन्नति, और दूसरा है कैथोलिक कलाकारो का सरक्षण और कला की समालोचना तथा सराहना के कैथोलिक स्कूल का विकास। इन दो उद्देश्यो के मिश्रण से धार्मिक ड्रामा की कला का विकास हुआ है। पूजा और मनोरजन के ये समिश्रण मध्ययुगीन सस्कृति के तो महत्त्वपूर्ण अग थे ही, और अब भी कोई कारण नही कि ये आधुनिक पोशाक मे दुबारा न रह सके। पर आजकल तो उनकी दशा कुछ शोचनीय-सी है क्योकि वे मनोरजन की धर्म-निरपेक्ष कलाओ के साथ प्रतिस्पर्धा करने का बडा स्पष्ट प्रयत्न कर रहे है। यह सत्य है कि अन्तिम भोज के बलिदान की कथा बहुत नाटकीय है, और यह भी सत्य है कि पूजा मे कुछ आन्तरिक सौन्दर्यात्मक मूल्य होना चाहिए, पर कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति ही दोनो को बिगाडे बिना सार्वजनिक पूजा के लिए आवश्यक रूपो का सम्बन्ध थियेटर की तकनीको से कर सकता है। जब नाटक तो बिल्कुल पारम्परिक हो जायँ, जैसा कि सार्वजनिक पूजा को होना चाहिए, और जब पूजा ओपेरा-जैसी हो जाय जैसा कि नाटकीय सगीत हो जाता है तो परिणाम न तो धार्मिक रूप से, और न ही कलात्मक रूप से प्रभावशाली होते है। 'पार्सिफल' मे दिखने वाले वैगनर से अधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति ही ईसाइयत के सार को स्टेज पर प्रस्तुत कर सकता है। टी० एस० ईलियट का 'मर्डर इन दि कैथेड्रल' एक प्रभावशाली नाटक है, विशेष तौर जब कि यह किसी चर्च मे खेला जाय, लेकिन लेखक इसे कभी भी पूजा का एक प्रकार मानने के लिए तैयार नही होगा। जो आवेशात्मक नाटक मैंने देखे हैं उनमे लोक-कला के एक रूप के तौर पर कुछ रोचकता अवश्य है, लेकिन वे आवेशात्मक नाटक होने के बजाय करुण मूक अभिनय अधिक प्रतीत होते है। तो भी यह कहना अनुचित होगा कि कला के विभिन्न रूपो का प्रयोग पूजा की विधि के तौर पर नही हो सकता। लेकिन इस प्रकार के धार्मिक कृत्यो के स्वरूप का विकास जीवित सस्कृति के सच्चे रूपो के पवित्र बनाए जाने के द्वारा होना चाहिए न कि पुराने रूपो के प्रवेश कराए जाने के द्वारा चाहे उनमे कितना ही स्थायी सौन्दर्यात्मक मूल्य क्यो न हो।

धर्म कला का जितना चाहे, या जितनी कलाओ का चाहे उपयोग कर सकता है, लेकिन पूजा की कला एक विशिष्ट उपलब्धि बनी ही रहती है। सब मिलाकर, पूजा की इस विशिष्टता की लोकप्रिय सराहना को फैलाने मे 'कैथोलिक लिटर्जिकल मूवमेण्ट' को बहुत सफलता मिली है, और यह सफलता ऐसे लोगो मे भी मिली है जो पूजा कैथोलिक धार्मिक कृत्यों को 'मध्ययुगीन' मानते है। वास्तव मे सार्वजनिक पूजा की कला के विकास मे एक खतरा पुराने रूपो से प्रेम भी है, और पोप की घोषणा 'एन्साइक्लिकल मेदियातर दी' का एक उद्देश्य भाषा के पुराने प्रयोग या स्थानीय बोलियो के प्रयोग के प्रति विरोध प्रकट करना भी था। दूसरी ओर, इस प्रकार के नियमो से केवल पारम्परिक मानदण्डो को ही सहारा मिलेगा, और सार्वजनिक पूजा की कला की प्रगति बहुत सीमित क्षेत्र मे ही हो सकेगी। अपनी प्रकृति के कारण ही 'पवित्रीकरण' की कला धर्म-निरपेक्ष कलाओ मे कम स्वतत्र है, और इसे पवित्र समझी जाने वाली प्रत्येक वस्तु का सम्मान करना होता है। इस तथ्य से लोक कला को ग्रीगोरियन भजनो मे सामूहिक भाग लेने की प्रथा को और लोकप्रिय उत्सवो तथा पारम्परिक भक्ति को बल मिलता है।

इस सम्बन्ध मे हमे 'इवैजेलिकल रिफार्म्ड चर्चिज' के बीच चल रहे सार्वजनिक पूजा सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण अमरीकी आन्दोलन का वर्णन करना है। यह १८१७ मे 'मर्सेर्स बर्ग थियालोजी' के सबध मे उठा था। 'मर्सेर्स बर्ग स्कूलो' के नेविस, शॉफ् तथा दूसरे सदस्यो द्वारा आलोचनात्मक तथा सृजनशील सार्वजनिक पूजा के रूपो पर दिया गया बल पहले केवल स्थानीय घटना ही मालूम पडता था, लेकिन पिछले दो दशको मे इसे नया जीवन मिला है और इसके द्वारा 'इवैजेलिकल रिफार्म्ड चर्चेज' मे सार्वजनिक पूजा सबधी विकास की एक आम प्रेरणा मिली है जो कि इन चर्चो के बाहर भी फैल सकती है।

एपिस्कोपल चर्च मे 'हाई चर्च मूवमेण्ट' के नाम से चलने वाला आन्दोलन भी सार्वजनिक पूजा सबधी ही है जिसका प्रभाव अमरीका के प्रोटेस्टेंट

चर्चो की पूजा-विधि पर भी पडा है। अमरीका मे इस आन्दोलन का इतिहास समझने के लिए हमे १९वी शताब्दी के प्रारम्भिक समय अथवा बिशप हौवार्ट के दिनो तक जाना पडेगा लेकिन १९१६ मे आकर ही, जब कि प्रार्थना-पुस्तक को दोहराने के लिए बनाये गये एक आयोग ने सार्वजनिक-पूजा मे रचनात्मक परिवर्तनो पर बल दिया तभी 'ब्रोड चर्चमैन' ने 'हाई चर्चमैन' के साथ इस बारे मे सहयोग किया। इस सहयोग से न केवल १९२८ की प्रार्थना-पुस्तक निकली अपितु धर्मशास्त्र मे तथाकथित उदार कैथोलिक वाद की प्रवृत्ति भी आयी, जिसका मतलब है कि ऐतिहासिक समालोचना के क्षेत्र मे आधुनिकवाद को और पूजा की कला के क्षेत्र मे विधि-विधानवाद को स्वीकार कर लिया गया था। इस प्रकार इस नई प्रार्थना-पुस्तक मे भक्ति-गीतो का आलोचनात्मक सग्रह किया गया ताकि इनके ज्यादा गैर ईसाई भाग सार्वजनिक प्रार्थना से हटाए जा सके।

पूजा और चर्च के प्रशासन मे एपोस्टलिक अधिकारवाद और बाइबिल के धर्म-शास्त्र सिद्धान्तो मे आधुनिक उदारवाद के ऐपिस्कोपल सम्मिश्रण से कई मतो के प्रोटेस्टेट पादरियो को एक लोकप्रिय उदाहरण ऐसा मिल गया है जिसके आधार पर वे सार्वजनिक पूजा को ईसाई परम्परा और एक सीमा तक वेदी के स्वतत्र उपयोग की अभिव्यक्ति का साधन मान सकते थे। इससे 'ईश्वर के शब्द' को एक अवैयक्तिक गरिमा और प्रामाणिकता मिल गई जो कि आमतौर पर उपदेशो मे नही मिल पाती थी। सामाजिक सिद्धान्तो को भी सार्वजनिक पूजा के प्रसग मे लाने का प्रयत्न किया गया है जो कि रोम की आज्ञा मानने के बजाय कैथोलिक होने का प्रमाण अधिक है। इस प्रकार एपिस्कोपल चर्च मे १९३९ मे 'सोसायटी ऑफ दि कैथोलिक कामनवेल्थ' की स्थापना की गई जिसमे पादरी और जन-साधारण इस बात के लिए शामिल हुए कि वे 'सामाजिक पूजा सम्बन्धी कैथोलिक विश्लेषण को धर्म-निरपेक्ष और आर्थिक प्रक्रियाओ पर लागू कर सके।"

इसी बीच मैथडिस्ट चर्च मे अपने ही ढग से सामाजिक पूजा सम्बन्धी

पुनरुत्थान हुआ। इसने चर्च के प्रशासन के सिद्धान्त के रूप में एपोस्टलिक उत्तराधिकार का खण्डन किया और खुले तौर प्रजातंत्रीय रूप ले लिया। १९४४ में 'दि बुक ऑफ वर्शिप फार चर्च एण्ड होम' को बढ़ाकर एक प्रार्थना-पुस्तक जैसा बना दिया गया। इसी बीच बड़े चर्चों में संगीत, धार्मिक पोशाक, और प्रार्थना का प्रकार ज्यादा और ज्यादा विधि-विधानों से जकड़ा जा रहा था।

आजकल रोमन कैथोलिक चर्च में पूजा पर धर्मोपदेशीय बल, और धर्मोपदेशीय चर्चों में सार्वजनिक पूजा की ओर झुकाव के रूप में एक अजीब विरोधाभास पाया जाता है। हो सकता है कि वे एक दूसरे से सीख रहे हों या फिर वे दोनों की अमरीकी लोक-परिपाटी के आगे झुक रहे हों। एक इतिहासकार को मुस्कराए बिना नहीं रह सकता जब वह देखता है कि 'सदर्न बैप्टिस्ट' लोगों के एक समुदाय में ऐसे ट्रकों में भरे हुए लोग चले आ रहे जिन पर 'दि आउटर एपोस्टलेट,' 'ऐविडेम गिल्ड' 'मोटर पूलिपट' या 'कैथोलिक कैम्पेनर्स फार क्राइस्ट' लिखा है। उनमें से कुछ कहते हैं कि वे मार्क्स को छोड़कर ईसाई हुए हैं। वे गलियों में सभा करते हैं, ट्रैक्ट बाँटते हैं और सच्चे सन्देश के लिए भूखी आत्माओं को 'सूचना' देते हैं। मैंने कैथोलिक वेदी से पादरी का ऐसा स्पष्ट तथा सादा भाषण सुना है जिसे सुनकर किसी भी बूढ़े मेथोडिस्ट को वाइ-बिल की सादगी के पुराने दिन याद आ जाएँगे। इसी प्रकार एक इतिहास-कार तब भी मुस्कराएगा जब एक बैप्टिस्ट गॉथिक चर्च और कैथोलिक 'औपनिवेशिक' सम्मिलन भवन को साथ-साथ खड़ा हुआ देखेगा।

मौन पूजा सार्वजनिक धार्मिक कृत्य का एक लोकप्रिय रूप बन गई है। 'ईश्वर के समक्ष शान्त' होने की क्वेकर लोगों की विधि का सम्मान अब उनके समाज के बाहर भी किया जाता है। विशेष तौर पर कालेज के समुदाय में, मिश्रित प्रार्थनाओं में, और ऐसे अवसरों पर जहाँ कि पारम्प-रिक विधियाँ अव्यावहारिक या अनुचित प्रतीत होती है, एक संक्षिप्त 'मौन प्रार्थना' आमतौर पर की जाती है। प्रार्थना का यह रूप आवश्यक नहीं कि

यह बताए कि भिन्नता को एक वाणी नही दी जा सकती, अपितु यह इस बात की भी सकारात्मक स्वीकृति हो सकता है कि किसी अवसर के सवेगी तथा बौद्धिक घटक वाणी, चित्र या सगीत द्वारा सदा प्रकट नही किए जा सकते। रहस्यवादी तथा अरहस्यवादी सचार मे सार्थकता तथा असचारणीयता आमतौर पर साथ-साथ रहती है। दूसरी ओर मौन का आश्रय लेने मे खतरे भी है। जैसा कि डॉ० फैलिक्स एडलर ने सकेत किया है · "हो सकता है कि महान् विचारक इसलिए चुप रहे हो कि उनके विचार इतने विशाल थे कि उन्हे प्रकट नही किया जा सकता था, लेकिन यह तो निश्चित रूप से मानना पडेगा कि यदि विचार के सम्बन्ध मे मौन को ही नियम बना लिया जाए तो वह विचार भी जल्दी ही नष्ट हो जायगा।"

धार्मिक स्थापत्य तथा सगीत मे परिवर्तन

पूजा की कला के विकास की झलक उन परिवर्तनो मे दिखाई देती है जो कि स्थापत्य मे आ गये है। कुछ परिवर्तनो का सम्बन्ध धर्म से बिल्कुल नही है। वे भवन निर्माण की कला मे आए हुए परिवर्तनो के परिणाम है। धार्मिक भवनो के निर्माण मे आधुनिक सामग्री और स्थापत्य के रूपो का प्रयोग होने लगा है, लेकिन आमतौर पर इस पवित्र कला मे 'पवित्र रूप' ही सबसे ज्यादा समय तक चल पाएँगे। आधुनिकवादी डिजाइन का विरोध भी उसी कारण से किया जाता है जिससे कि आधुनिक विचार का विरोध किया जाता है। वह कारण है धर्म-विरोधी हो जाने का डर। तो भी पिछले दशको मे कुछ विशिष्ट आधुनिकवादी चर्च बनाये गये है।

शैली मे कुछ विशिष्ट परिवर्तन ऐसे भी है जो धार्मिक पुनर्निर्माण के ही परिणाम है। इस शताब्दी के प्रारभिक वर्षो मे बडे सस्थागत चर्चो को शैक्षिक मनोरजक तथा समाज सेवा की विभिन्न सामुदायिक गति-विधियो के लिए स्थान की आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप एक इस प्रकार की इमारत बनने लगी जिसके बारे मे एक प्रमुख पादरी ने कहा है कि "ये हमारे आधुनिक बडे गराज है जिन्हे चर्च का नाम दे दिया गया है, और इनसे

यह भी पता चलता है कि किस प्रकार चर्च हमारे समाज की संस्कृति और धर्म-निरपेक्षवाद की ओर झुक रहा है। इन इमारतो के केन्द्र मे थिएटर की तरह का एक ऑडिटोरअम होता था, अन्तर केवल इतना होता था सीटों की मुडी हुई कतार की जगह मुडी हुई बेंचे इस्तेमाल की जाती थी। सामने के प्लेटफार्म पर फर्नीचर के तौर पर एक वेदी और तीन कुर्सियाँ, (पर्दे से ढकी हुई) सगीत-मडली की सीटे और एक पाइपऑर्गन, और वेदी के नीचे या पीछे एक छोटी पीठिका होती थी। ओडिटोरअम के चारो ओर खिसकने वाले दरवाजे होते थे जिनसे रविवासरीय विद्यालय के कक्षो को अलग किया जा सकता था या अधिक भीड की दशा मे आदमियो को वहाँ बैठाया जा सकता था। तहखाने, बुर्ज या इमारत के पीछे या तीनो जगह—क्लब के कमरे, रसोई, भोजनकक्ष, व्यायामशाला मच, तथा दफ्तर आदि होते थे। भवन-निर्माण की यह शैली अब पुरानी पड गई है। एक अच्छी प्रकार से व्यवस्थित समुदाय मे ये तीन अलग-अलग इमारते होती है। पूजा के लिए एक ईश्वर का गृह, गति-विधियो के लिए एक सामुदायिक गृह और पादरी का निवास-स्थान। पूजा के गृह अब अधिक दृश्य रूप मे तथा सचाई के साथ ईश्वर के स्मारक तथा समिलन के स्थान बन गये है। गॉथिक शैली जिसका प्रारम्भिक, एकेडैमिक स्थापत्य मे पुनरुद्धार हुआ था, विशेषकर प्रोटेस्टेट लोगो के बीच, अब सबसे अधिक लोकप्रिय मानदण्ड बन गई है। सुधारवादी यहूदी धर्म पर भी इसका प्रभाव पडा है। पिछले दिनों मे कम से कम गॉथिक शैली की कम से कम बीस प्रसिद्ध इमारते बनायी गई है। ईसाई इतिहास की इस पवित्र शैली की ओर लौटना वास्तव मे सार्वजनिक पूजा के ही आन्दोलन का एक अग था। वेदी, खुला मच, रगीन कॉच, स्थापत्य शैली, तथा इसी प्रकार की चीजे उन उदारवादियो के द्वारा भी स्वीकार कर ली गई थी जो सार्वजनिक पूजा को कम से कम काम लाते थे। इसके साथ ही सार्वजनिक पूजा के सगीत का भी पुनरुत्थान हुआ। प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक चर्चो मे सगीत का मानदण्ड उस मानदण्ड के पास आ गया जो कि १९०३ मे पोप पायस दसवे ने बनाया था, सगीत

को 'सच्ची कला' और 'पवित्र' और 'व्यापक' होना चाहिए। सगीत के रूपों को 'पवित्र सगीत की सामान्य विशेषताओ' के इस प्रकार अधीन कर देना चाहिए कि "उनके सुनने पर किसी भी राष्ट्र के व्यक्ति पर अच्छे के सिवाय कोई और प्रभाव न पडे।" एक औसत अमरीकी समूह गान के सगीत को 'अच्छा' तो नही कहा जा सकता, पर यदि धार्मिक कृत्य के अनुरूप सत्य का प्रयोग किया जाय तो यह अच्छा असर अवश्य डाल सकता है। नये भक्ति गीत सग्रहो मे से भावनात्मक, 'सदेश गीतो' को निकाल दिया गया। इन गीतो के चुनाव का मानदण्ड इतना कठोर और भावना-विरोधी हो गया है कि भावुक लोगो मे से केवल कुछ ने ही उनका समर्थन तथा उपयोग किय है। तो भी इनसे वस्तुगत तथा व्यापक की ओर प्रवृत्ति की एक निश्चित आरभ का पता तो चलता ही है।

इसी बीच वे मत जिन्हे सगठित धर्म अभिशाप सा-प्रतीत होता है, दूसरी चरम सीमा पर चले गये है। विशेषकर हमारे बडे शहरो मे तो 'स्टोर फ्रण्ट' चर्चो और 'गॉस्पल मिशनो' की बाढ आ गई है जिनमे पुरानी तरह का धार्मिक क्रिया-कलाप बदले की भावना के साथ किया जा रहा है। यहाँ पर भजन तथा भावनात्मक धार्मिक गीत गाए जाते है और धर्मोपदेशक 'पूर्ण बाइबिल' के बारे मे लच्छेदार तथा सवेगी अपीले करते है।

सक्षेप मे, जो पूजा के बारे मे इस अर्धशताब्दी मे जो कुछ हुआ है उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि इस सदी के प्रारभ मे पूजा मे जो मामूली-पन था उसकी जगह कुछ परिवर्तन ज्यादा अच्छे के लिए और कुछ ज्यादा बुरे के लिए हो गए है। आया सौन्दर्यानुभूति की ये चरम सीमाएँ किसी वर्ग-भेद पर आधारित है या नही यह एक विवादास्पद प्रश्न है जिसमे आम समाज-शास्त्र, कला तथा शिक्षा का अश आ जाता है।

पूजा के सिद्धान्त

सार्वजनिक पूजा ने लोगो को जो यह भय था कि इससे औपचारिक-वाद बढेगा, उसे हटाने मे सार्वजनिक पूजा सम्बन्धी आन्दोलनो को काफी

हद तक सफलता मिली है। यदि सफलता नही मिली तो केवल वही जहाँ कि इन आन्दोलनो ने ही 'मनोवृत्तिवादी रूप' धारण कर लिया था। औपचारिकताओ मे यदि महत्त्वपूर्ण रूप हो तो आवश्यक नहीं कि वे खाली दिमाग और थकी आत्माओ के लिए पर्दे का ही काम करे। एक ओर पूर्व-ग्रह पर जिसने कि अमरीकी सस्कृति मे घर कर लिया है, काबू पाया जा रहा है, और वह है यह धारणा कि सार्वजनिक पूजा और प्रार्थना के बजाय प्रतिदिन के काम की प्रार्थना अधिक पर्याप्त है। मेरे एक दार्शनिक मित्र 'कर्म की प्रार्थना के सन्देश' का प्रचार कर रहे है। अगणी उदारवादी जॉर्ज एल्बर्ट कोने, जिसने 'जीवन की प्रार्थना' को आधुनिक मनोविज्ञान और मूल्य सिद्धान्त के शब्दो मे समझाने की कोशिश की थी, यह सिद्धान्त सामने रखा था कि, "सोमवार भी इतना ही पवित्र है जितना कि रविवार, क्योकि हमारा सारा समय ईश्वर का ही तो है हाथ या दिमाग से जीवन के कर्त्तव्यो को करना उतना ही धार्मिक है जितना कि प्रार्थना करना।" इसी प्रकार डीन स्पैरी ने 'श्रम ही पूजा है' इस पुरानी कहावत का इस प्रकार समर्थन किया है

पूजा की क्रिया को यद्यपि जीवन से अलग नही किया जा सकता, तो भी यह एक ऐसी क्रिया है जिसे मानवीय सहायता के विभिन्न रूपो से विशिष्ट माना जा सकता है। ईसाइयत मानती है कि ईश्वर को पिता मान लेने पर सब मनुष्यो का परस्पर भाई मानना अपने आप आवश्यक हो जाता है, और इसके अनुसार व्यवहार किये बिना इस विश्वास का भी कोई मूल्य नहीं रहता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि ईश्वर के पिता होने का सिद्धान्त अवास्तविक है जिसे हम आसानी से छोड सकते है। इसके विपरीत ईसाइयत यह मानती है कि पिता के रूप मे ईश्वर की सतत पूजा करने पर ही मानवीय भ्रातृत्व को व्यवहार मे लाने की ओर झुकाव होता है। अगर मनुष्य ईश्वर की पूजा बन्द कर दे तो मनुष्यो को भाईचारे की प्रेरणा देनेवाला एक सबसे बड़ा तत्त्व समाप्त हो जायगा, क्योकि पारस्परिक लाभ के लिए अथवा सबसे अधिक लोगो के सर्वाधिक लाभ के लिए किये गए पारस्परिक सम-

स्रोतो मे इतनी प्रेरक शक्ति नहीं है जो कि सब मनुष्यो के पिता के रूप मे ईश्वर का ध्यान तथा उससे प्रेम करने मे है।

यदि चर्च सिवाय इसके और कुछ भी न करे कि वह मानवीय आत्मा के आवासगृह के प्रतीक के रूप मे एक ऐसा खुला घर बनवा दे जहाँ जब-तब मनुष्य आकर ईश्वर के सार्वभौम पितृत्व मे विश्वास प्रकट कर सकें, तो भी वह सामाजिक व्यवस्था की सबसे बडी सेवा कर रहा होगा; और इसके द्वारा की जाने वाली समाज की अन्य कोई सेवा महत्त्व मे इसका मुकाबला नहीं कर सकती।

कर्म तथा पूजा मे "अदल-बदल के सिद्धान्त" की एक आम दर्शन तथा पूजा के लिए एक तर्क के तौर पर सबसे विशद व्याख्या विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग द्वारा की गई है। अपनी पुस्तक 'दि मीनिंग ऑफ गॉड इन ह्यूमन एक्सपीरिएंस' मे उसने रहस्यवाद का एक नया सिद्धान्त समझाया है और रहस्यवादी अनुभव का सम्बन्ध पूजा से जोडा है। हॉकिंग कहता है कि अपने साधारण व्यावहारिक अनुभव मे हमे ब्योरो या 'अशो' पर ध्यान देना होता है, पूजा मे हमारा ध्यान उस पूर्ण की ओर जाता है जो अशो के साथ हमारे व्यवहार मे छिपा तो रहता है पर काम करते हुए हम उसे जान नही पाते।

किसी अश या किन्ही अशो पर हमारे व्यावहारिक ध्यान देने मे कुछ ऐसी बात है जो स्वय अपने उद्देश्य को पूरा नही होने देती। परिणामतः हमे अशो को पूरी तरह छोडकर पूर्ण की ओर आना पडता है जिसकी कि धर्म मांग करता रहा है। यह पूर्ण सभी अशो से भिन्न है। और पूर्ण की ओर व्यावहारिक ध्यान देने मे भी कोई ऐसी बात है जो अपना उद्देश्य पूरा नही होने देती, और तब फिर अशो की ओर आना पडता है। इसलिए हमारा सासारिक जीवन इन दोनो के बीच झूलता रहता है।

अपनी 'सीमित स्थिति' के कारण हम ऐसी उलझन मे है जिससे कि हमारी क्रियाशील आत्माएँ आसानी से बाहर नहीं आ सकतीं, यद्यपि हमारे अन्दर के अन्तिम ज्ञाता का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। महत्त्वाकाक्षा

और कर्त्तव्य, चेतन स्वतंत्रता का पूर्ण उपयोग--सक्षेप में सभी कर्मो का विकास --अपने अन्दर मे से ही एक आतरिक विरोध या एक आध्यात्मिक बधन द्वारा होता है ज्यो-ज्यो हमारी कृत्रिम आत्मा अपनी ही धारणाओ और पदार्थों मे फँसती जाती है त्यो-त्यो उस पूर्ण का भाव मंद पड़ता जाता है जिससे सब पदार्थो को उनके मूल्य प्राप्त होते हैं। मेरे विभिन्न व्यावहारिक कार्य अच्छी प्रकार चल सके इसके लिए आवश्यक है कि मेरे विभिन्न उद्देश्यो का मूल्य बना रहे; तथा उनका मूल्य और रुचि बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि पूर्ण का मेरा भाव मेरे सारे कार्यो मे सक्रिय बना रहे। पूर्णता के भाव के आधार पर जो जीवन का मूल्य फिर से दिलाती है वही पूजा, या पूजा का अग है। हम कह सकते हैं कि पूजा मूल्य की स्वाभाविक पुन. प्राप्ति का आत्म-चेतन भाग है; इसलिए यह वह भाग है जिससे अन्य सभी भागो के स्थान तथा अर्थो का निर्धारण होता है।

पूजा भी शाश्वत नहीं बनी रह सकती, इसका भी आत्म-पराजय और मृत्यु का अपना प्रकार है। वह पुजारी जो सदा ही पूर्ण के ध्यान मे लगा रहता है और सदा ही ईश्वर के सान्निध्य मे रहना चाहता है, एक स्व-चालित मनुष्य बन जाता है वैसे ही जैसे कि सदा काम मे जुटा रहने वाला श्रमिक मशीन बन जाता है।

इस तर्क से इस बात का औचित्य काफी हद तक सिद्ध हो गया है कि हम काम करने के दिन से विश्राम-दिवस (सैबाथ) की ओर, ईश्वर की इच्छा पूरी करने से ईश्वरीय महिमा की प्रशसा की ओर, और समस्याओ को सुलझाने वाले विचार मे नैतिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने वाले ध्यान की ओर जाया करे। इससे मठो या रहस्यवादी तपस्वियो के बीच चलने वाले पूजा के व्यवसायीकरण और अलगाव के विरुद्ध भी एक तर्क मिलता है। हद से ज्यादा पूजा करना, पूजा न करने से बुरा है क्योकि इससे मनुष्य के कर्म मे पवित्रता नहीं आती।

यह आसानी से समझ मे आ जायगा कि नैतिकतावादी और शिक्षा-शास्त्री पूजा के इस प्रकार के विश्लेषण का लाभ चरित्र-निर्माण मे सहायक

होने के आधार पर धर्म का औचित्य सिद्ध करने मे उठायेंगे। अत अब तक जो नैतिकतावादी धर्म के नाम पर की जाने वाली हर अपील को धर्म-निरपेक्षता के लिए अपमान बताकर उसका विरोध करते थे, उनके विरोध को दूर करने के लिए यह सिद्धान्त बडा उपयोगी रहेगा कि पूजा तथा कर्म मे अदल-बदल होते रहना बडी स्वाभाविक तथा स्वस्थ प्रक्रिया है और मनुष्य को कभी-कभी 'पूर्ण के प्रति प्रतिक्रिया' भी करनी चाहिए। हॉकिग के बाद चार्ल्स ए० बैनैट, हेनरी एन० वीमैन, ह्यू हार्टशोर्न तथा अन्य दार्शनिको ने युक्तिवादी नैतिकतावादियो के लिए पूजा के प्रति एक अधिक सहिष्णु मनोवृत्ति धारण करने के लिए रास्ता साफ कर दिया। धीरे-धीरे शिक्षाशास्त्रियो ने इस बात के लिए प्रयत्न किया कि पर्याप्त रूप से 'मूल्यो की भावना' उत्पन्न करने के लिए धार्मिक कृत्यो की सहायता ली जा सके। इसके साथ ही दूसरी ओर धार्मिक शिक्षा को इस सिद्धान्त के अनुसार ढाला गया कि 'मूल्यो की प्राप्ति' मे ही पूजा का केन्द्र है।

यद्यपि नैतिक आधारो पर पूजा को उचित ठहराने के द्वारा इसका प्रारम्भ तो अच्छा हो गया, किन्तु अन्त मे धर्म-शास्त्र को इससे बहुत आघात पहुँचा क्योकि इसने धार्मिक अनुभव को नैतिक शिक्षा के अधीन कर दिया। ईश्वर को इसने एक आत्मगत सत्ता और धर्म को एक व्यावहारिक मूल्य दे दिया। कैथोलिको ने तो इसकी यह कहकर हँसी उडायी कि यह प्रोटेस्टेटवाद के अन्दर छिपे हुए व्यक्तिवाद और आत्मवाद का एक और प्रमाण है। इसलिए पूजा के एक अधिक वस्तुगत और धार्मिक भाव की आवश्यकता बढने लगी कुछ वस्तुगत आदर्शवादी तथा कुछ वस्तुगत यथार्थवादी इस काम मे आगे बढे। उन्होने यह बताया कि पूजा का उद्देश्य तब तक पूरा नही हो सकता था जब तक कि पूजक को ईश्वर के एक वस्तुगत या वास्तविक सान्निध्य मे न ले आया जाय। हारवार्ड के डीन्सपैरी ने 'वास्तविक सान्निध्य' के इस सिद्धान्त को पकडा और अपनी पुस्तक 'रीयल्टी इन वर्शिप' मे इसकी प्रभावशाली व्याख्या की। १९२५ मे छपने के बाद यह पुस्तक पूजा के बारे मे अमरीकी विचार-विनिमय पर पूरी तरह छायी रही। पूजा के

सिद्धान्त के बारे मे इस दृष्टिकोण का महत्त्व इसके द्वारा की जाने वाली प्रतीकवाद की व्याख्या मे है। इसके अनुसार धार्मिक प्रतीक अपने पदार्थो के केवल सूचकमात्र ही नही होते, अपितु वे प्रकाशक भी होते है, एक मूर्ति केवल ईश्वर का चित्र नही होती अपितु यह एक 'कृपा का मार्ग' या ईश्वर की उपस्थिति को वास्तविक बनाने का साधन होती है। हमे चेतन रूप से ईश्वर के सान्निध्य मे ले जाने की इसकी योग्यता मे ही पूजा का मूल्य है।

प्रो० प्रैट ने एक बडे स्पष्ट तथा रोचक बयान मे उन कारणो के बारे मे बताया है, जिनसे वे सार्वजनिक पूजा को अधिक महत्त्व देने लगे :

लगभग ३५ वर्ष पहले मैंने, "क्या हम अपनी श्रद्धा बनाये रख सकते हैं ? इस प्रश्न पर एक पुस्तक लिखने का विचार किया था, तब मैंने एक कालिज शिक्षक के रूप मे अपना कार्य सँभाला ही था। मैंने पुस्तक का नाम सोच डाला और एक अध्याय लिखा भी। यह अध्याय धर्म मे सचाई के बारे मे था। पिछले वर्ष मैंने उस अध्याय को फिर से खोला। ..जब मैंने वह अध्याय लिखा था तो मेरे मन मे ईसाई-विश्वासो को अधिक खुले रूप से प्रकट करने की आवश्यकता बहुत प्रमुख थी; औरमुझे आशा थी कि यदि चर्च और उनके नेता अपने मतो मे से उन अशो को हटा दें जिन पर उनका सजीव विश्वास नहीं है और यदि वे अपने सच्चे विश्वास को खुले तौर पर प्रकट कर दें, तो ईसाई धर्म एक सुदृढ स्थिति मे आ जायेगा। सचाई की आवश्यकता मे तो मेरा विश्वास अब भी है ; लेकिन अब मे यह नही मानता कि इससे सब बुराइयो का इलाज हो जायेगा, और अब मुझे धार्मिक प्रतीको के स्वरूप, उपयोग, और मूल्य के बारे मे कुछ गहरी अतर्दृष्टि प्राप्त होने लगी है। . . अमरीका मे स्थिति काफी बदल गई है इससे कुछ अंश मे निश्चित रूप से लाभ हुआ है, पर कुछ हानि भी। अर्तदृष्टि और सचाई मे वृद्धि हुई है, और साथ-साथ उदासीनता भी बढी है; वास्तव मे ईसाइयत या किसी और धर्म को सबसे बडा खतरा उदासीनता का ही होता है।

हम मे से बहुत से लोग उसी पुराने सूत्र को दोहराते रहते हैं जिसके

अनुसार, जेम्स के शब्दो मे, "हमारा सच्चा हृदय कहीं और रहता है। अतः इस तरह धर्म मे प्रतीको के उचित स्थान का प्रश्न इतना ही कठिन है जितना कि यह महत्त्वपूर्ण है। ...धार्मिक प्रतीको के विचारहीन, पारम्परिक प्रयोग मे बेईमानी तथा बुद्धि-नाशकता हो सकती है कोई और चीज ऐसी नहीं है जिसे कि केवल, नम्र पारम्परिक और पुराना बना दिये जाने के द्वारा धर्म से ज्यादा नुकसान पहुँचता हो। और न ही कोई चीज ऐसी ही है जिसे पूरी तरह प्रायोगिक होने की अधिक आवश्यकता हो। धर्म को व्यक्ति का बिल्कुल प्रत्यक्ष अनुभव और एक ऐसी जीवित शक्ति होना चाहिए जो कि समय के साथ-साथ तथा उसके आगे भी चल सके। धर्म चाहता है कि वह उपयोगी वा सुन्दर बने : लेकिन साथ ही साथ यह सच्चा भी रहना चाहता है। वास्तव मे धर्म कोई धर्म-शास्त्र नहीं है पर इसका अपना एक धर्म-शास्त्र, अर्थात् अतिम वस्तुओ के बारे मे कोई सच्चा विश्वास अवश्य होना चाहिए। साथ ही यह भी आवश्यक है कि इस धर्म-शास्त्र को केवल कविता ही न मान लिया जाये।

प्रैट ने आगे चलकर बताया है कि पूजा मे प्रतीको का सही उपयोग प्रचार के साधन के तौर पर नही है बल्कि उन सवेगो और कल्पनाओ को उभारने के लिए है जिन्हे कि पूजक स्पष्ट रूप से प्रकट नही कर सकता। इस प्रसग मे उसने येल के प्रोफेसर विलबर एम० अर्बन का एक अनुच्छेद उद्धृत किया है जिसमे बडे अच्छे ढग से पूजा का 'वस्तुगतवादी' सिद्धान्त बताया गया है

यदि अपने सबसे विकसित रूप मे भी धार्मिक प्रतीक कविता की प्रकृति नहीं छोडता तो इसका कारण यह है कि धार्मिक भाषा को गीतात्मक और नाटकीय होना ही चाहिए, नहीं तो यह कुछ भी नहीं रहती। ... धार्मिक प्रतीक अतश्चेतना को एक ऐसा मोड दे देते है जिससे अनंत और दिव्य का कुछ सुझाव मिलने लगता है। वास्तव मे यह सभी तरह अतिप्राकृतिक हैं। इसका एक चरम सीमा का लेकिन फिर भी प्रतिनिधि उदाहरण हिंदू देवताओ की प्रतिमाओ मे की जाने वाली विकृति है। जब हिंदू धार्मिक

कला मे दिव्य क्रिया की अनतता को असख्य हाथ-पैरो वाले देवता के रूप मे चित्रित किया जाता है तो इसमे प्रकृति की इस विकृति के द्वारा उस अति-शयता को प्रकट करने का प्रयत्न निहित रहता हे जो कि हम से बिल्कुल भिन्न वस्तु का रूप है। कला की विकृति के समान यह विकृति भी अवास्तविक है लेकिन कलाकार या पूजक द्वारा यह इस रूप मे अनुभव नहीं की जाती, क्योकि इसे एक शाब्दिक चित्र के बजाय प्रतीक के रूप मे भी लिया जाता है, और यहाँ उन मूल्यो को प्रकट करती है जो कि वास्तविक मूल्यो से अधिक वास्तविक है।

इस शताब्दी के प्रारभिक वर्षों से पूजा के विषय पर धार्मिक विचारो मे जो परिवर्तन आ गया है उसका वर्णन प्रैट ने स्पष्ट तौर से किया हे प्रार-म्भिक वर्षो मे यह आशा थी कि सच्चाई के पालन द्वारा धार्मिक मनुष्यो को अपने विश्वास मे स्पष्टता मिल सके, लेकिन बाद के वर्षो मे उन्हे स्पष्ट हो गया कि यद्यपि ईश्वर को स्पष्ट तौर से नही जाना जा सकता तो भी पूजा के प्रति उदासीनता पर एक बार काबू पा लेने पर उसकी शक्ति और यश को निश्चित रूप से अनुभव किया जा सकता हे। और पूजा के प्रति उदा-सीनता पर तभी काबू पाया जा सकेगा जब पूजा अपने विषय के योग्य बन जाये।

एक और प्रकार का धार्मिक दर्शन जिसने पूजा मे सुधार करने के लिए प्रोत्साहन दिया 'धर्म और कला' का स्कूल था। शताब्दी के प्रारम्भ मे धर्म-शास्त्र और 'वैज्ञानिक धर्म' के विरुद्ध आम प्रतिक्रिया के रूप मे यह काफी लोकप्रिय हो गया था। लेकिन तब यह एक विवादास्पद ममला बन गया जब धर्म विद्रोह की जाँच के दौरान युवक पादरियो से कहा गया कि वे या तो इस मत को सचाई से अस्वीकार कर दे या फिर यह मान ले कि यह केवल पूजा की एक सौन्दर्यानुभूतिक व्याख्या है।

इस विषय पर जो दार्शनिक विवेचना हुई उसका सार-सक्षेप मे इस प्रकार रखा जा सकता है आदर्शरूप मे पूजा को कम से कम ये चार कार्य करने चाहिए

१ इसे मानवीय सत्ता के आधारभूत रूपो को आम तौर पर और एक सस्कृति के मूल्यो को विशेष तौर पर औपचारिक तथा प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देनी चाहिए ।

२ इसे आत्मालोचन और नैतिक शिक्षण के लिए अच्छे स्तर के माध्यम देने चाहिए (जैसे कि अपराध-स्वीकृति, धन्यवाद देना, प्रार्थना, ध्यान, प्रशसा तथा शास्त्रो और उपदेशो का प्रयोग आदि) ।

३ इसे एक विशिष्ट प्रकार का साहचर्य या 'सतो का समागम' तथा मनुष्यो के बीच भ्रातृत्व की भावना उत्पन्न करनी चाहिए ।

४ और इसे प्रत्येक पूजक को अलग-अलग रूप से ईश्वर के सान्निध्य मे लाना चाहिए ।

इससे स्पष्ट है कि पूजा मे वस्तुगत तथा आत्मगत दोनो प्रकार के तत्त्व है। यदि आजकल इसके आत्मगत पहलुओ पर आक्रमण हो रहा है तो उसका एक बहुत बडा कारण यह है कि कला की समालोचना तथा नैतिक आदर्शवाद की भाषा मे 'आत्मगत' का सम्बन्ध 'भावुक' से जोड दिया गया है । लेकिन आत्मगत तथा वस्तुगत, आवश्यकता तथा शक्ति और प्रेम तथा यश मे जब तक सम्बन्ध स्थापित नही हो जाता तब तक न तो कला ही हो सकती है और न पूजा । पूजा के बारे मे डीन स्पैरी ने दो मुख्य सिद्धान्त सामने रखे है एक तो यह कि "पूजा ही वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पहले पहल हम ईश्वर की परिभाषा करते है", और दूसरा कि पूजा के द्वारा हम "मानवीय अनुभव मे उद्देश्यो के राज्य" की स्थापना मनाते है । पहली बात से हमारा ध्यान वस्तुगत तत्त्व की ओर जाता है, दूसरी से आत्मगत की ओर । हृदय की प्रशसा और बाहर की पूजा न तो एक है और न एक दूसरे के विरोधी ही, वे आपस मे एक दूसरे के पूरक है ।

सार्वजनिक पूजा की ओर प्रवृत्ति

पूजा के चार मुख्य प्रकार है व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामुदायिक और धर्मस्थानीय । आत्मविश्वास के साथ यह कहना कठिन है कि पिछले ५० वर्षो मे व्यक्तिगत भक्ति की दशा क्या हो गयी है । व्यवहार मे हर एक

कोई यह मान लेता है कि इसमे बहुत गिरावट हुई है, लेकिन इस गिरावट की मात्रा नापना कठिन है और इसके कारणो का निश्चय करना तो और भी कठिन है। 'लेडीज होम जर्नल' के लिए लिकन बारनेट ने एक सर्वेक्षण किया था जिसकी रिपोर्ट नवम्बर १९४८ के अक मे 'ईश्वर और अमरीकी लोग' के नाम से प्रकाशित हुई थी। इस रिपोर्ट से पता चलता है कि उत्तर देने वाले व्यक्तियो मे से लगभग ९५ प्रतिशत कहते थे कि वे ईश्वर मे विश्वास करते है, ७५ प्रतिशत चर्च के सदस्य थे, ४० प्रतिशत नियमित रूप मे चर्च मे जाते थे, और लगभग २५ प्रतिशत ने यह स्वीकार किया कि उनका व्यक्तिगत जीवन भक्तिपूर्ण तथा धार्मिक है। आमतौर से वे लोग जो यह मानते है कि उनकी व्यक्तिगत भक्ति मे कमी आ गयी है यह स्वीकार करने के लिए तैयार नही होते कि वे अब व्यक्तिगत रूप से धार्मिक नही रहे। अभी हाल मे अमरीका मे आये एक एग्लिकन यात्री ने कहा था कि "अमरीकी लोगो मे अभी भी इतनी व्यक्तिगत धार्मिकता है कि उसे देखकर धक्का सा लगता है" यूरोपियन लोगो की तुलना मे और स्वय उनकी अपनी गवाही के आधार पर भी यह सत्य प्रतीत होता है कि अमरीकी लोग औरो के बजाय धर्म को अधिक व्यक्तिगत रूप मे लेते है, लेकिन यह कहना लगभग असभव है कि अमरीकियो का यह कहने से क्या मतलब है कि वे भक्त नही है पर धार्मिक है। डीन स्पैरी के शब्दो मे वे "अपूर्ण रूप से धार्मिक है। बहुत कम लोग अपने को नास्तिक मानते है, और जो ऐसा मानते है उनमे से उग्रवादी तो और भी कम है। दार्शनिक धर्म-शास्त्रो के बीच चेतन रूप मे और दूसरे बहुत-से के बीच अर्धचेतन रूप से ईश्वर के अन्दर विश्वास पाया जा सकता है, लेकिन उनके अन्दर पूजा की आदत या प्रवृत्ति नही है। जब एक प्रसिद्ध दार्शनिक को उसके विश्वविद्यालय के पादरी ने पूजा न करने के कारण चिटाया तो उसने बडी गभीरता से जवाब दिया "मै एक हाई चर्चमैन हूँ, और जब मैं गिरजाघर के पास से गुजरता हूँ तो मैं ईश्वर का धन्यवाद करता हूँ कि हमारा एक गिरजाघर है और उसमे एक पादरी हमारे लिए प्रार्थना कर रहा है।" कुछ और भी ऐसे आदमी होगे जो, यदि

उन्हे पूजा के प्रति अपनी उदासीनता के कारण बताने के लिए कहा जाये, तो वे यही कहेगे कि भिक्षु, पादरी तथा रवी आदि लोगो का एक ऐसा व्यवसायी वर्ग विद्यमान है जिसका काम सब लोगो के लिए पूजा करना है। शेष मनुष्यो का काम तो केवल इतना है कि वे विना उनमे भाग लिए धार्मिक सस्थाओ की सहायता करे सिवाय उन अवसरो के जब कि पूजा एक कर्त्तव्य के वजाय अभिव्यक्ति का एक रूप बन जाती है। पर अधिकाश लोग तो यह मानकर चलते है कि सकट के समय तुरन्त सहायता के लिए धर्म एक अच्छी चीज है, साथ ही यह कोई ऐसी चीज नही है जिसका प्रतिदिन प्रयोग किया जाये। शेक्सपियर ने लिखा था

ओ मानव, कितनी भलाई की है ईश्वर ने तेरे साथ तू कोई भी दिन या रात विना पवित्र बने ऐसी न जाने दे, जब कि तू याद न करे जो कि ईश्वर ने किया है।

[किंग हेनरी षष्ठ, भाग २, अक २, दृश्य १]

बीसवी शताब्दी तो यह सूत्र एक प्राथमिक धार्मिक कर्त्तव्य के रूप मे स्वीकार किया जा सकता था, लेकिन अब इस सलाह को शायद एलिजावेथ युग का माना जाएगा। सामान्य मनुष्यो मे से अधिकाश के लिए पूजा कोई दैनिक खुराक नही है, और चाहे वे इसको माने या न माने उनके जीवन मे धर्म का ऐसा केन्द्रीय स्थान नही है जैसा कि पादरियो के अनुसार होना चाहिए।

कई लोग तो अपने दैनिक जीवन के काम मे इतना व्यस्त रहते है, या वे मानते है कि अत्यधिक व्यस्तता के कारण उन्हे कभी-कभी के विश्राम, मनोरजन और ध्यान के लिए भी समय नही मिलता, और इसलिए पूजा के वजाय वे 'चर्च' का काम करना अधिक पसन्द करते है। वहुतो के लिए काम और विश्राम दिवस का क्रम एक झझट ही है, विशेष तौर से जब कि उन्हे शारीरिक आराम की आवश्यकता होती है, और वहुत से लोग तो यह सोच भी नही सकते कि आजकल के काम करने के दिन के बीच पूजा के लिए समय निकाला जा सकता है। सुवह दोपहर और रात में से कोई

भी समय तो खाली नही होता । मै ऐसे बहुत से शक्तिशाली व्यापारियो को जानता हूँ जो मानते हैं कि उन्हे धार्मिक मामलो मे बहुत रुचि है और वे आशा करते है कि वे अपने जीवन के अन्तिम वर्ष धार्मिक रूप से बिताएँगे । सचाई यह है कि भक्त लोगो की पूजा भी किसी व्यक्तिगत आवश्यकता की अनुभूति पर आधारित होने के बजाय चर्च के प्रति कर्त्तव्य की भावना के कारण अधिक होती है, परिणामत जब उन्हे पता चलता है कि पूजा एक विशेषाधिकार है न कि एक कर्त्तव्य, तो वे अपना विशेषाधिकार छोड देते है ।

यह बात अवश्य सत्य है कि धर्म के लिए यह आवश्यक नही कि वह ऐसा रूप धारण करे जिसे पूजा माना जाय । आधुनिक मनुष्य के लिये उपयुक्त व्यक्तिगत धार्मिक जीवन की विधियो का विकास करने मे पिछले दिनो काफी रुचि दिखायी गई है अगले अध्याय मे हमे व्यक्तिगत पूजा से भिन्न धार्मिक अनुभव के बारे मे कहने के लिए अधिक अवसर मिलेगा । यहाँ पर यही कहना काफी है कि धार्मिक अभिव्यक्ति के नये रूपो की खोज का एक बडा कारण यह भी है कि बडी सगठित धार्मिक सस्थाओ द्वारा जिन सदस्यो मे जिस व्यक्तिगत भक्ति को मानकर चला जाता है उसमे भी गिरावट आ गई है ।

कुछ ऐसे ही कारणो से यहूदी धर्म को छोडकर शेष की पारिवारिक भक्ति मे भी गिरावट आ गई है । यहूदियो के लिये तो अभी भी धार्मिक अनुष्ठानो का मुख्य केन्द्र परिवार ही है । घर के अन्दर के दैनिक जीवन को पवित्र बनाने के लिए अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्य किए जाते है । यहूदी धर्म मे पारिवारिक पूजा की प्रबलता का कारण यह नही है कि यहूदी पारिवारिक जीवन की कुछ अपनी विशेषताएं है, क्योंकि अमरीकी यहूदी घरो मे यह विशेषताएँ धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है इस प्रबलता का वास्तविक कारण इजराइल के घर का ऐतिहासिक स्वरूप है । साधारण जनता के धर्म मे पारिवारिक धर्म-कृत्यो का एक बहुत बडा भाग होता है, जबकि ईसाइयत जैसा धर्म (और ईसा के जीवन जैसा

जीवन) आमतौर पर परिवार से स्वतंत्र रहता है। यह अधिक व्यक्तिगत भी है और अधिक सार्वजनिक भी। लेकिन यह इजराइल के धर्म के मुकाबले मे जिससे कि यह अलग हुआ था कम पितृसत्तात्मक तथा कम राष्ट्रीय है। यह सगठित हो सकता है लेकिन सामूहिक यह कम है क्योकि यहूदीधर्म की पृष्ठभूमि देहानी तथा कृषि सबधी है इसलिए आर्थिक कारणो ने धार्मिक अनुष्ठानो के लिए परिवार का केंद्र बन जाना स्वाभाविक है, लेकिन आधुनिक शहरी जीवन मे भी और यहूदियो के बीच राजनैतिक राष्ट्रीयता का पुनर्जागरण हो जाने के बाद भी, समुदाय या राष्ट्रीय वतन के बजाय परिवार ही धार्मिक अनुष्ठानो का केंद्र है। सामुदायिक पूजा यहूदी धर्म का एक आवश्यक अग है अवश्य, लेकिन यहूदी धर्म के बने रहने के लिए यह उतनी जरूरी नही है जितना कि ईसाइयत के बने रहने के लिए पैरिश चर्च और इसके पादरियो का होना जरूरी है। ईसाई पूजा मे पारिवारिक भक्ति के बिना काम चल सकता है, लेकिन पारिवारिक धार्मिक कृत्यो के बिना यहूदी धर्म का प्रभाव नष्ट हो जाएगा।

अत मे धार्मिक पूजा का एक और प्रकार भी है जो पूरी तरह धार्मिक समाजो की ही विशेषता है। इन समाजो मे एकता का एकमात्र बधन एक धार्मिक विश्वास होता है। अन्य धार्मिक तथा धर्म-निरपेक्ष समाजो से इनकी प्रतिस्पर्धा रहती है। औगस्टाइन के 'सिटी ऑफ गॉड' जैसे ये समाज मानते है कि ईश्वर के अदर उनकी अदृश्य एकता है। अपने मे तथा सासारिक समाजो मे वे अतर मानते है जो कि स्वर्ग तथा पृथ्वी मे है। वे ईश्वर की अपनी प्रजा है और उनका उद्देश्य समाज के अन्य सभी वर्गों का उद्धार करना है। इस अर्थ मे धार्मिक पूजा एक दिव्य प्रकाश की अभिव्यक्ति है न कि किसी सस्कृति की। चर्च "ईश्वर के समक्ष शाति का समुदाय" है चाहे इसका सबध अन्य किन्ही लोगो से हो या न हो। जब चर्च जानबूझ कर अपनी पूजा-प्रार्थना को अपने सास्कृतिक परिवेश से अलग कर लेते है और वे यह मानने लगते है कि उन्हे इस ससार के बाहर

रहकर काम करना है, तो उनकी पूजा एक ऐसा अतिप्राकृतिक रूप ले लेती है जिस पर मनुष्यो की आलोचना का कोई प्रभाव नही पडता। इस उच्चता ग्रथि या जैसा कि इसे कहा गया है, "चुने हुए आदमियो की ग्रथि" से और समाजो को बुरा लगता ही है, लेकिन चर्चों के अदर भी वह विद्रोह पैदा हो जाता है जिसे सामाजिक सदेश का नाम दिया गया है। इसलिए चर्च के बहुत से व्यक्ति बाइबिल के सामाजिकीकरण या आधुनिकीकरण को पूजा-विरोधी आदोलन मानने लगे थे। धार्मिक पूजा वैसे भी समाज मे विभेद उत्पन्न करती है। एकेश्वरवादी पूजा मे भी तनाव बढ जाता है जब प्रत्येक धर्म, या प्रत्येक चर्च सत्य की अनत आत्मा को किसी विशेष मत की चट्टान से बाँध देने के लिए दूसरे मतो को दबाने के लिए शक्ति की प्रार्थना करता है। मिशनरी बन जाने पर प्रार्थना अपनी मानवता खोने लगती है। एक सघर्षवादी धार्मिक विश्वास का भी ससार मे स्थान है, पर वेदी पर शक्ति का प्रयोग उचित नही प्रतीत होता।

सम्प्रदायवाद की बुराइयो पर काबू पाने के लिए चर्च से स्वतन्त्र व्यक्तियो ने का विकास करने की कोशिश की है, पर पूजा के क्षेत्र मे एकता ऐसा आदर्श प्रतीत होती है जिसे पाना असम्भव-सा है, पर इस समय यह बात स्पष्ट है कि ईसाइयो मे इस एकता की आवश्यकता पूजा के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण नही है जितनी कि सम्मिलित कार्य तथा सघर्ष के लिए। ईसाई एकता के आदोलन के नेताओ को यह आशा रही है कि कभी सारे ईसाई ईश्वर के समक्ष प्रार्थना मे एक हो सकेगे और इस प्रकार अदृश्य एकता को दृश्य रूप दे सकेगे। लेकिन यह आशा भावुक है और शायद उससे भी ज्यादा राजनैतिक। फिर भी अतर्मतीय सहयोग की तरह किन्ही ठोस कामो के लिए ईसाई एकता भी कभी-कभी व्यावहारिक हो सकती है। मानवीय भ्रातृत्व के आदर्श की तरह धार्मिक रूप से ईश्वर के सम्मुख घोषणा किये जाने के बजाय यह तब अधिक कारगर होती है जब यह मनुष्यो के बीच काम कर रही हो।

अमरीका में इस समय अनेक मतो के अनुयायियो के लिए यह अवसर

है कि वे विविधतापूर्ण धार्मिक जीवन मे अपना अपना योगदान दे। जो कुछ प्रायोगिक साक्षी इस समय मिल रही है और पूजा मे सुधार करने की प्रवृत्ति की जैसी आलोचना की जा रही है उससे भी इसकी पुष्टि होती है। लेकिन य ‍, री धार्मिक शक्तियो को एक ही साँचे मे ढालने की कोशिश की गई तो इससे लाभ के बजाय हानि ही अधिक होगी। स्वर्ग के सगीत की विविधता की तरह पृथ्वी पर भी विविधता बनाये रखना लाभकर ही होगा, क्योकि 'एक ससार' मे विविध प्रकार के भक्ति-गीतो को सुनकर ईश्वर तथा मनुष्य दोनो को ही प्रसन्नता हो सकती है।

क्या राजाओ के भी राजा को यह बताने की आवश्यकता पड़ेगी कि उसे अपनी सृष्टि और उसके चलाने मे क्यो आनद आता है? ईश्वर चाहता है कि उसके प्राणी भी कुछ अपना सृजन करे, इसीलिए तो 'जेनेसिस' मे कहा गया है; "उसने मनुष्य को अपने ही अनुरूप बनाया।" यही मनुष्य की श्रेष्ठता का सबसे बडा प्रमाण है; और मानवीय क्रियाओ मे से भी वह उतनी ही अच्छी है जो ससार के सतत पुनः सृजन मे जितना अधिक सहयोग करती है।

विलियम जेम्स के बाद के धार्मिक अनुभव

धार्मिक अनुभव का जेम्स द्वारा विश्लेषण

१९०० मे जब विलियम जेम्स स्काटलैण्ड मे दिए जाने वाले 'गिफर्ड व्याख्यानो' की दो मालाएँ तैयार कर रहा था तो उसका इरादा पहली माला मे 'मनुष्य की धार्मिक भूखे' और दूसरी मे 'दर्शन के माध्यम से उनकी तृप्ति' पर विचार करने का था। दूसरा भाग तो कभी लिखा ही नही गया, और जब १९१२ मे उसने 'दि प्लूरलिस्टिक यूनिवर्स' नामक पुस्तक लिखी जिसका सुझाव उसे पहली माला से मिला था, तो भी उसको यह नही बताया गया था कि दर्शन मे धार्मिक भूख कैसे शात हो सकती है, अपितु बताया गया था कि धार्मिक अनुभव के तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए अध्यात्म-शास्त्र का पुनर्निर्मण किस प्रकार किया जाना चाहिए। जेम्स के मन मे हुआ यह परिवर्तन न केवल उसके बौद्धिक कैरियर को समझने के लिए आवश्यक है अपितु इससे यह भी पता चलता है कि उस समय धार्मिक विचारो और धर्म के बारे मे विचारो मे क्या-क्या आम परिवर्तन हो रहे थे। गिफर्ड व्याख्यानो की पृष्ठभूमि मे और जेम्स की अपनी पृष्ठभूमि मे एक परम्परा थी जिसे अस्पष्ट रूप से 'स्वाभाविक धर्म' के रूप मे जाना जाता था। इस परम्परा का यह विश्वास था कि मनुष्य के अदर स्वाभाविक धार्मिक प्रवृत्तियाँ होती है, और उन प्रवृत्तियो को स्वाभाविक बताने वाले दर्शन ही उन्हे पारम्परिक विश्वासो और दिव्य ज्ञान प्राप्त धर्मों के कृत्यो की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सतुष्ट कर सकते है। वे 'निरपेक्ष' दार्शनिक आदर्शवाद जिनसे जेम्स स्काटलैंड और अमरीका मे घिरा रहा, केवल धर्म के दर्शन ही नही थे, वे धार्मिक दर्शन थे, और सस्थागत धर्म और धर्म-शास्त्रो के स्थापनापन्न थे। जेम्स ने

अनेक मित्र और स्वय उसके पिता भी इस अर्थ मे धार्मिक दार्शनिक थे। उनको दर्शन मे धार्मिक सतोष मिलता था। व्यक्ति के रूप मे उनके और ईश्वर के बीच के सबध का माध्यम कृपा का चर्च सबधी मार्ग न होकर कुछ आदर्शवादी सिद्धात थे। 'इस ज्ञानवाद' (नस्टिसिज्म) के विरुद्ध जेम्स ने विद्रोह किया, क्योकि यद्यपि वह चर्चवाद का विरोधी था, तो भी उसे विश्वास था कि 'धार्मिक भूख' कभी भी दर्शन से सतुष्ट नही हो सकती। इस विषय पर उसके कुछ विविध मतो को उद्धृत करना अच्छा रहेगा क्योकि उनसे न केवल जेम्स के युक्तिवाद से पलटने के बारे मे अपितु आदर्शवाद तथा भौतिकवादी निरपेक्षवाद के विरुद्ध अमरीका मे उठ रहे आम विद्रोह के बारे मे भी पता चलता है।

अतिप्रकृतिवाद का एक तो स्थूल रूप है और एक परिष्कृत। आधुनिक दार्शनिको मे से अधिकाश का सबध इसके परिष्कृत रूप से है। परिष्कृत अतिप्रकृतिवाद सार्वभौम अतिप्रकृतिवाद है। इसके अपरिष्कृत विभेद को खड रूप अतिप्रकृतिवाद कहना अधिक ठीक रहेगा। यद्यपि मैं लोकप्रिय ईसाई सिद्धात या स्कॉलैस्टिक आस्तिकता को स्वीकार नही कर सकता, तो भी मुझे लगता है कि अपने इस विश्वास के कारण आदर्श के साथ सपर्क होने पर नयी शक्तियाँ ससार मे आती है, मुझे खडरूपी अतिप्रकृतिवादियो मे रखा जा सकता है। साथ ही मुझे लगता है कि सार्वभौम अतिप्रकृतिवाद बडी आसानी से प्रकृतिवाद के आगे घुटने टेक देता है।

इन उद्धरणो से पता चलता है कि धार्मिक अनुभवो के वर्णन पर जेम्स ने कितना वैयक्तिक या व्यक्तिवादी बल दिया था। वह यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा था कि चेतना के दो रूप ऐसे है जो इसके सार्वभौमिकवादी, युक्तिवादी और दार्शनिक रूपो से, जिनके आधार पर कि धर्म-शास्त्री आमतौर पर अपने विश्वास का मडन करते है, अधिक दुनियादी है ये रूप है धार्मिक अनुभूति और धार्मिक प्रकाश के— धार्मिक अनुभव के सवेगी तथा रहस्यवादी रूप।

रहस्यवादी प्रकाश के उसके वर्णन मे कुछ अमरीकी विशेपताओ पर बल दिया गया है। उसने परिपक्व रहस्यवाद को अधिक स्थान दिया है और रहस्यवादी अनुभूति के बारे मे कहा है कि "ध्यान खींचनेवाले अधिकाश दृष्टात जिन्हे मैंने इकट्ठा किया है, घर से बाहर घटित हुए है।" उसने बताया है कि रहस्यवाद के अधिक प्रकृतिवादी और धर्म-निरपेक्ष रूपो से प्रारभ करने मे उसका उद्देश्य इसके धार्मिक रूपो से तारतम्य दिखाना रहा है, लेकिन धर्म-निरपेक्ष रहस्यवादियो और 'ब्रह्माडीय चेतना' पर उसने इतनी सहानुभूति ऊँडेल दी है कि जब तक वह पारम्परिक रहस्यवादियो तक पहुँचता है उसके वर्णन फीके पडने लगते है। अमरीकी रहस्यवादियो मे उसने बैंजामिन पाल, ब्लड, राल्फ वाल्डो ट्राइन तथा वाल्ट ह्विटमैन को अधिक महत्त्व दिया है। बैंजामिन पाल, ब्लड तथा उसके साथी जैनस क्लार्क के लेखो मे जेम्स को उस बात पर बल दिया हुआ मिला है जो कि उसके लिए विशेप महत्त्वपूर्ण है, वह है कि रहस्यवादी प्रकाश कोई सवेगी अनुभव नही है। अनुभूति तो एक मनोवृत्ति बताती है जिसमे ज्ञान को प्रधानता नही होती, पर रहस्यवादी अनुभव 'निजी तौर पर प्रामाणिक' होता है और इसमे एक प्रकार से सत्य की अबौद्धिक पकड निहित होती है।

रहस्यवाद मे जेम्स की अपनी रुचि तब पैदा हुई जब यह बताने के लिए कि किस प्रकार रहस्यवाद बिना तर्क या सवेग की भ्रातियो का सहारा लिए "वैयक्तिक सत्ता के अर्थ को प्रकाशित कर सकता है, वह 'ब्रह्माडीय चेतना' और 'प्रकृति-रहस्यवाद' के विभिन्न रूपो के साथ प्रयोग कर रहा था। उसका विश्वास था कि क्योकि रहस्यवादी अनुभव का (एक चेतना के रूप में) एक वस्तुगत वास्तविकता या तथ्य से सीधा सबध है, इसलिए यह वास्तव मे एक सवेदन या निरीक्षण है, न तो यह तार्किक है, और न सवेगी।

धार्मिक अनुभव के सवेगी प्रकारो को जेम्स ने दो विभागो म बाटा है 'स्वस्थ चित्त' और 'परेशान आत्मा'। स्वस्थ चित्त वाले प्रकार के

लोगो मे उसने एमर्सन, थियोडोर पार्कर, एडवार्ड एवरेट हेल्ड, वाल्ट ह्विटमैन, और 'न्यू थॉट एड क्रिश्चियन साइस' के अनुयायियो का वर्णन किया है। आगे उसने कहा है

पिछले पचास वर्षो मे ईसाइयत मे तथाकथित उदारवाद के आने को उस विकृति के ऊपर जिसका पुराने नरकाग्निवाले धर्म-शास्त्र से सीधा सबध था, स्वस्थचित्तता की विजय माना जा सकता है। पिछले पच्चीस वर्षो मे विकासवाद का सिद्धात यूरोप और अमरीका मे इतनी तेजी के साथ फैला है कि हमे प्रकृति के नये प्रकार के एक धर्म का आधार तैयार हुआ दिखायी पडता है। इसने हमारी पीढी के एक बडे भाग से ईसाइयत को पूरी तरह हटा दिया है। सार्वभौम विकासवाद के विचार से आम-सुधारवाद और प्रगति का सिद्धात निकलता है जो स्वस्थचित्त लोगो की धार्मिक आवश्यकताएँ इतनी अच्छी तरह पूरी करता है कि ऐसा लगता है मानो यह उनके ही उपयोग के लिए बनाया गया हो।

इस उद्धरण से जेम्स के मन मे दो शक्तियाँ काम करती हुई स्पष्ट दिखती है। एक ओर तो वह यह मानता है कि वह स्वय इस 'उदारवाद की प्रगति' की पैदावार है जिसने आशावाद का एक नया तथा अपेक्षाकृत काफिर धर्म पैदा कर दिया था, दूसरी ओर वह अपने इस उत्तराधिकार का आलोचनात्मक परीक्षण करने के लिए भी प्रस्तुत है। वह शैलर मैथ्यू के साथ कह सकता था कि सामाजिक समस्याओ को सुलझाने की उसे कोई जल्दी नही थी, उसे तो केवल यह पता था कि "न्यू इगलैण्ड पर ईश्वर कृपालु रहा है।" साथ ही साथ शैलर मैथ्यू की तरह उसने ऐसी स्वस्थ चित्तता के खोखलेपन को समझ लिया था और इसे वह बचकाने-पन का एक रूप मानता था।

इस प्रकार के 'लोकप्रिय' धर्म की अपेक्षा जेम्स ने 'दु खित' तथा 'परे-शान आत्मा' वाले 'दो बार-उत्पन्न' (द्विज) व्यक्ति को अधिक सम्मान दिया है। जिन लोगो को लबी मानसिक गिरावट के विरुद्ध जेम्स के अपने सघर्ष का पता है उन्हे उसके इस प्रकार के धार्मिक अनुभव के

रहस्यवादी प्रकाश के उसके वर्णन मे कुछ अमरीकी विशेषताओ पर बल दिया गया है । उसने परिपक्व रहस्यवाद को अधिक स्थान दिया है और रहस्यवादी अनुभूति के बारे मे कहा है कि "ध्यान खीचनेवाले अधिकाश दृष्टात जिन्हे मैंने इकट्ठा किया है, घर से बाहर घटित हुए है ।" उसने बताया है कि रहस्यवाद के अधिक प्रकृतिवादी और धर्म-निरपेक्ष रूपो से प्रारभ करने मे उसका उद्देश्य इसके धार्मिक रूपो मे तारतम्य[1] दिखाना रहा है, लेकिन धर्म-निरपेक्ष रहस्यवादियो और 'ब्रह्माडीय चेतना' पर उसने इतनी सहानुभूति उँडेल दी है कि जब तक वह पारम्परिक रहस्यवादियो तक पहुँचता है उसके वर्णन फीके पडने लगते है। अमरीकी रहस्यवादियो मे उसने बैंजामिन पाल, ब्लड, राल्फ वाल्डो ट्राइन तथा वाल्ट ह्विटमैन को अधिक महत्त्व दिया है । बैंजामिन पाल, ब्लड तथा उसके साथी जैनस क्लार्क के लेखो मे जेम्स को उस बात पर बल दिया हुआ मिला है जो कि उसके लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है, वह है कि रहस्यवादी प्रकाश कोई सवेगी अनुभव नही है । अनुभूति तो एक मनोवृत्ति बताती है जिसमे ज्ञान को प्रधानता नही होती, पर रहस्यवादी अनुभव 'निजी तौर पर प्रामाणिक' होता है और इसमे एक प्रकार से सत्य की अबौद्धिक पकड निहित होती है ।

रहस्यवाद मे जेम्स की अपनी रुचि तब पैदा हुई जब यह बताने के लिए कि किस प्रकार रहस्यवाद बिना तर्क या सवेग की भ्रातियो का सहारा लिए "वैयक्तिक सत्ता के अर्थ को प्रकाशित कर सकता है, वह 'ब्रह्माडीय चेतना' और 'प्रकृति-रहस्यवाद' के विभिन्न रूपो के साथ प्रयोग कर रहा था। उसका विश्वास था कि क्योकि रहस्यवादी अनुभव का (एक चेतना के रूप में) एक वस्तुगत वास्तविकता या तथ्य से सीधा सबध है, इसलिए यह वास्तव मे एक सवेदन या निरीक्षण है, न तो यह तार्किक है, और न सवेगी ।

धार्मिक अनुभव के सवेगी प्रकारो को जेम्स ने दो विभागों म बाँटा है 'स्वस्थ चित्त' और 'परेशान आत्मा'। स्वस्थ चित्त वाले प्रकार के

लोगो मे उसने एमर्सन, थियोडोर पार्कर, एडवार्ड एवरेट हेल्ड, वाल्ट ह्विटमैन, और 'न्यू थॉट एड क्रिश्चियन साइस' के अनुयायियो का वर्णन किया है। आगे उसने कहा है

पिछले पचास वर्षो मे ईसाइयत मे तथाकथित उदारवाद के आने को उस विकृति के ऊपर जिनका पुराने नरकाग्निवाले धर्म-शास्त्र से सीधा सबध था, स्वस्थचित्तता की विजय माना जा सकता है। पिछले पच्चीस वर्षो मे विकासवाद का सिद्धात यूरोप और अमरीका मे इतनी तेजी के साथ फैला है कि हमे प्रकृति के नये प्रकार के एक धर्म का आधार तैयार हुआ दिखायी पडता है। इसने हमारी पीढी के एक बडे भाग से ईसाइयत को पूरी तरह हटा दिया है। सार्वभौम विकासवाद के विचार से आम-सुधारवाद और प्रगति का सिद्धात निकलता है जो स्वस्थचित्त लोगो की धार्मिक आवश्यकताएँ इतनी अच्छी तरह पूरी करता है कि ऐसा लगता है मानो यह उनके ही उपयोग के लिए बनाया गया हो।

इस उद्धरण से जेम्स के मन मे दो शक्तियाँ काम करती हुई स्पष्ट दिखती है। एक ओर तो वह यह मानता है कि वह स्वय इस 'उदारवाद की प्रगति' की पैदावार है जिसने आशावाद का एक नया तथा अपेक्षाकृत काफिर धर्म पैदा कर दिया था, दूसरी ओर वह अपने इस उत्तराधिकार का आलोचनात्मक परीक्षण करने के लिए भी प्रस्तुत है। वह शैलर मैथ्यू के साथ कह सकता था कि सामाजिक समस्याओ को सुलझाने की उसे कोई जल्दी नही थी, उसे तो केवल यह पता था कि "न्यू इगलैण्ड पर ईश्वर कृपालु रहा है।" साथ ही साथ शैलर मैथ्यू की तरह उसने ऐसी स्वस्थ चित्तता के खोखलेपन को समझ लिया था और इसे वह बचकाने-पन का एक रूप मानता था।

इस प्रकार के 'लोकप्रिय' धर्म की अपेक्षा जेम्स ने 'दु खित' तथा 'परे-शान आत्मा' वाले 'दो बार-उत्पन्न' (द्विज) व्यक्ति को अधिक सम्मान दिया है। जिन लोगो को लबी मानसिक गिरावट के विरुद्ध जेम्स के अपने सघर्ष का पता है उन्हे उसके इस प्रकार के धार्मिक अनुभव के

परिचय के बारे मे जानकर कोई आश्चर्य नही होगा। पर जेम्स ने अपने अनुभव को पीछे छोडकर धर्म-परिवर्तन के बारे म मनोवैज्ञानिको और धार्मिक नेताओ की आधुनिक रुचि के बारे मे विचार किया है। उसने भ्राति निवारण की भावना पर भी सोचा है

इस बारे मे कोई सदेह नही कि एक दार्शनिक सिद्धात के रूप मे स्वस्थचित्तता पर्याप्त नही है क्योकि जीवन की जिन बुराइयो की यह व्याख्या नही करना चाहती वे वास्तविकता के सच्चे अग है, और हो सकता है कि जीवन के महत्त्व को समझने की वे ही सबसे अच्छी कुजी हो और शायद सत्य की सबसे गहरी तह तक आँखे खोलने वाले हो। जीवन की सामान्य प्रक्रिया मे ऐसे क्षण भी आते है जब बुराई बडे उग्र रूप मे हमारे सामने प्रकट होती है।

क्योकि यह दु ख, दर्द और मृत्यु पर कोई सकारात्मक तथा सक्रिय ध्यान नही देती, इसलिए व्यवस्थित स्वस्थचित्तता उन प्रणालियो के मुकाबले मे अपूर्ण है अधूरी है जो कम से कम इन तत्त्वो को अपने क्षेत्र मे सम्मिलित तो करते है। इसलिए पूर्णतम धर्म वे होगे जिनमे निराशा-वादी तत्त्वो का सबसे अच्छा विकास हुआ हो। बौद्ध तथा ईसाई धर्म इस प्रकार के धर्मो मे से हमारे लिए सबसे अधिक सुपरिचित है।

यद्यपि जेम्स ने स्वस्थ चित्त तथा परेशान आत्मा वाले स्वभावो मे बुनियादी भेद किया है, तो भी उसके विचार से इन दोनो ही प्रकार के व्यक्ति सत बन सकते है। लेकिन एक मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक दोनो के ही रूप मे जेम्स 'सतपन के परिणामो' का मूल्याकन करना चाहता है। उसने सतपन शब्द का व्यवहार इतने विस्तृत अर्थ मे किया है कि उसमे धार्मिक जीवन के विभिन्न पहलुओ का समावेश हो जाता है और फिर वह एक नैतिकवादी की तरह आकता है कि धार्मिक पुण्य और पाप का सभ्य जीवन मे क्या योगदान है? सतपन मे क्या स्वाभा-विक है और क्या अतिरजित। उसका विभेद करने के जेम्स के प्रयत्न पर दृष्टिपात करने से हमको उस प्रकार के धार्मिक आदर्शो के बारे मे पता

लग जाएगा जो कि इस शताब्दी के प्रारभ मे अमरीकी जीवन मे विद्यमान थे।

जेम्स ने इस बारे मे जो पहली बात कही है वह है कि एक धार्मिक अनुभव पूरी तरह वैयक्तिक, भविष्यवाणी न करने योग्य तथा अव्यवस्थित होता है, इसलिए सभी रूढिवादिताएँ ऊपर से थोपी हुई होती है, और सभी (मत) इस ससार मे कम या ज्यादा एकाकी होते है।

मतो के बारे मे विचार करते हुए जेम्स राजनीति को धर्म से बाहर रखना चाहता है और उनके जीवन के नैतिक गुण के आधार पर उनके बारे मे राय बनाना चाहता है, न कि उनके मतो के आधार पर। अगर कोई मत अपनी पवित्रता मे अति करता है तो यह उसके अपने धार्मिक अनुभव का दोष है, अगर वह किसी अपराध करने वाले आदोलन या चर्च का सगठन करता है तो इसमे धर्म का अधिक से अधिक अप्रत्यक्ष दोष ही माना जा सकता है।

जेम्स के निर्णय के अनुसार धार्मिक अनुभव के प्रत्यक्ष परिणाम सक्षेप मे इस प्रकार रखे जा सकते है।

१ श्रद्धा या ईश्वर की भक्ति, जिसमे अति हो जाने पर कट्टरता पैदा हो जाती है। जेम्स ने कट्टरता की जो बुराइयाँ गिनायी है उसमे गुणो पर आधारित सतपन भी है।

२ श्रद्धा से निकट सबध रखती हुई पवित्रता है जिसमे भी कि धर्म रोग उत्पन्न हो जाने का खतरा है। इस सबध में जेम्स ने कहा है

सोलहवी शताब्दी के कैथोलिक मत मे सामाजिक पवित्रता की ओर ध्यान नही दिया जाता था, और ससार को उसके भाग्य पर छोडकर अपनी आत्मा को बचाने का प्रयत्न बुरा नही माना जाता था। पर सही या गलत, आजकल आम मानवीय मामलो मे सहायक होना अच्छे चरित्र के लिए एक आवश्यक तत्त्व माना जाता है, और सार्वजनिक या व्यक्तिगत रूप मे कुछ उपयोगी बन सकना भी दिव्य प्रार्थना का रूप स्वीकार किया जाता है।

३ परोपकार या करुणा भी एक और सतो का गुण है जिसमे अति होने से अविवेक का दोष आ जाता है, और तब इसमे अयोग्य व्यक्तियो की रक्षा होती है, और परोपजीवियो और भिखारियो की वृद्धि होती है। जेम्स यह निश्चित रूप से नही कहता कि अप्रतिरोध ही अतिकरुणा है या नही, लेकिन उसने यह एक बात बडी ध्यान देने योग्य कही है

अगर परिस्थितियो को ऊपर उठाना है, तो किसी न किसी को पहला कदम उठाना पडेगा और इसका जोखिम स्वीकार करना पडेगा। कोई भी ऐसा आदमी जो एक मत की तरह परोपकार और अप्रतिरोध को आज मानने के लिए तैयार नही है यह नही कह सकता कि ये विधियाँ सफल होगी या नही। जब ये सफल होती है तो इनकी सफलता शक्ति या दुनियावी दूरदर्शिता से कही अधिक शक्तिशाली होती है। यह व्याव-हारिक प्रमाण कि दुनियावी बुद्धिमानी से बढकर भी कोई चीज हो सकती है मानव जाति को सतो का जादुई वरदान है।

४ **प्रार्थना**, इसे यदि ईश्वर के साथ आतरिक सबध के विस्तृत अर्थ मे लिया जाय तो यह 'धर्म की आत्मा और सार है,' लेकिन इसमे जब आत्मा की मुक्ति या शरीर के स्वास्थ्य से बढकर किसी चीज की माँग की जाती है तो इसमे मताधमार्गदर्शन का खतरा पैदा हो जाता है। धार्मिक प्रेरणा को जेम्स ने मनुष्य की अवचेतन शक्तियो में से एक माना है।

५ **पाप स्वीकृति** के बारे मे जेम्स ने कुछ थोडा सा कहकर ही टाल दिया है जिससे यह स्पष्ट नही होता कि आया वह यह चाहता है कि अपराध-स्वीकृति को अपनी गिरावट की अवस्था की ओर और जाने दिया जाय या इसे सच्चे तौर पर और अधिक सार्वजनिक बनाया जाय। वह लिखता है

जिसने पाप स्वीकार कर लिया है उसका सारा नकलीपन दूर हो जाता है और वास्तविकता शुरू हो जाती है, उसने अपनी विकृति को बाहर निकालकर रख दिया है। अगर उसने इससे छुटकारा नहीं पा लिया

तो भी वह कम-से-कम इस पर दभपूर्ण दिखावे की लीपा-पोती नहीं करता—वह कम से कम एक सचाई के आधार पर रहता है। यह कहना कठिन है कि ऐंग्लो सैक्सन समुदायो में पाप-स्वीकृति की प्रथा की क्यो पूरी तरह अवनति हो गई। पोपवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया अवश्य ही एक ऐतिहासिक व्याख्या है, क्योकि उसमे पाप-स्वीकृति के बाद तप, पश्चात्ताप, शुद्धि तथा इसी प्रकार के अन्य काम करने पड़ते थे। फिर भी ऐसा लगता है कि पाप स्वीकार करने वाले व्यक्ति मे इसकी इच्छा इतनी तीव्र होनी चाहिए थी कि वह इस साधारण से कारण से इसे छोड़ न बैठता। यह विचार मन मे आता है कि कहीं अधिक व्यक्तियो को अपने भेदो का घेरा तोड़ने की अन्दर रुकी भभक को निकालने और राहत पाने की आवश्यकता रही होगी, भले ही उनकी पाप-स्वीकृति को सुनने वाले कान अयोग्य क्यो न रहे हो। कुछ स्पष्ट उपयोगी कारणो से, कैथोलिक चर्च ने पादरी के कान मे चुपचाप पाप-स्वीकृति कह देने का स्थान पर सार्वजनिक रूप पाप स्वीकार करने की प्रथा चलायी है। अपनी आम आत्म-निर्भरता और अमिलनसारी स्वभाव के कारण, हम अँगरेजी बोलने वाले प्रोटेस्टेंट लोग केवल ईश्वर से ही अपनी गुप्त बात कहना पर्याप्त समझते हैं।

६ तपस्या पर जेम्स ने सबसे अधिक आलोचनात्मक ध्यान दिया है। उस समय जबकि दार्शनिक तपस्या की निन्दा कर रहे थे, जेम्स ने तपस्या का समर्थन किया बशर्ते कि इसे आधुनिक रूप दिया जा सके। वह उद्धरण अब भी पढने लायक है जिसमे जेम्स ने युद्ध-ग्रस्त ससार के लिए एक आवश्यक अनुशासन के रूप मे गरीबी की सिफारिश की है, इससे पता चलता है कि किस प्रकार धार्मिक रूप में जेम्स युद्ध के नैतिक तुल्याग प्रस्तुत करना चाहता था।

धार्मिक पुण्यो के बारे मे की गई ये टिप्पणियाँ बहुतो में से केवल कुछ ही ऐसे उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि जेम्स एक नैतिकवादी के रूप मे धर्म का मूल्याकन उसके वास्तविक या सभाव्य परिणामो के आधार पर कर रहा था। पर जेम्स की नैतिकवादिता का सबसे अच्छा

उदाहरण उसकेद्वारा धार्मिक अनुभवके सौन्दर्यानुभूतिक पक्ष का किया जाने वाला खण्डन है। इस पक्ष को वह धर्म का केवल एक अप्रत्यक्ष अग मानता है। वह 'सौन्दर्यानुभूतिक सपन्नता' राजनीति आदि के वाहरी प्रभावो से धार्मिक अनुभव को मुक्त रखना चाहता था। वैयक्तिक नैतिकता को वह धार्मिक अनुभव का आन्तरिक अग मानता था, पर कला के सवसे वैयक्तिक पहलू भी उसे वाहरी प्रतीत होते थे।

जेम्स एक कलाकार था, और उसे कैथोलिक दिखावे तथा धार्मिक कला के विरुद्ध काल्विनिस्ट लोगो की आपत्ति दोनो से ही एक सौन्दर्यानुभूति अरुचि थी। वास्तव मे वह एक सौन्दर्यानुभूतिक आधुनिकवादी था जो पुरानेपन से भी उतना ही वचता था जितना कि दभ से। और यदि कैथोलिकवाद के प्रति उसने व्यग्यात्मक मनोवृत्ति धारण की तो उसका कारण यह था कि उसे पारम्परिक कला से अरुचि थी न कि यह कि उसका परिशेप प्रोटेस्टेट और नैतिकवादी था। जेम्स से जहाँ तक भी वन सका, उसने अपने कलात्मक तथा धार्मिक अनुभवो को एक दूसरे से अलग रखने की पूरी कोशिश की।

धार्मिक अनुभव की अन्य व्याख्याएँ

'वेराइटीज ऑफ रिलीजस एक्सपीरियसेज' के प्रकाशित होने के एकदम वाद ही जेम्स के एक सहयोगी जार्ज सान्तायना के द्वारा एक और प्रभावशाली पुस्तक धर्म के वारे मे प्रकाशित हुई। यद्यपि इस पर जेम्स का ऋण था, तो भी सान्तायना का 'रीजन इन रिलीजन' एक प्रकार से उसका प्रतिकारक था। इसमे एक विल्कुल भिन्न प्रकार की धार्मिक रुचि का वर्णन किया गया था—वह थी सौन्दर्यानुभूतिक तथा सस्थागत। जेम्स के चेतना के तीन प्रकारो (अनुभूति, वुद्धि और प्रकाश) के स्थान पर सान्तायना ने धार्मिक जीवन की वृद्धि की तीन अवस्थाओ मे विभेद किया है पूर्व युक्ति सगत (अधविश्वास), युक्ति सगत (दार्शनिक विश्वास) और उत्तर युक्ति सगत (कल्पनात्मक सृजन)। धर्म के दोनो विस्तारो में यह प्रगति देखी जा सकती है, पवित्रता मे, जो कि अपने युक्ति सगत

रूप मे हमारे जीवन के आधारो के प्रति वफादारी है, और आध्यात्मिकता, जो अपने युक्ति सगत रूप मे आदर्शों का स्वतत्र अनुशीलन है। अपने पूर्व युक्ति सगत रूप मे पवित्रता, प्रमाण और परम्परा के अनुसरण पर निर्भर रहती है , अपने उत्तर युक्ति सगत रूप मे पवित्रता मे सनातन सत्ता का यश विशद किया जाता है । अपने पूर्व युक्ति सगत रूप आध्यात्मिकता मदाधता होती है (जब लक्ष्य भुला दिया जाता है तो इसकी शक्ति दुगुनी हो जाती है), अपने उत्तर युक्ति सगत रूप मे, आध्यात्मिकता, कला और धर्म-शास्त्र के द्वारा दिव्य रूपो, तत्त्वो या आदर्शो को पनपाती है। धर्म की बचकाने से युक्ति सगत और उससे कल्पनात्मक रूपकी ओर प्रगति में अभिव्यक्ति के सम्य सस्थागत रूपो और सामूहिक धार्मिक रुचियो की वृद्धि भी अपने आप आ जाती है ।

अपनी निकटतम पृष्ठभूमि के कारण तो इस पुस्तक ने कैथोलिक आधुनिकवाद का औचित्य सिद्ध किया, अमरीकियो की धार्मिक शिक्षा के प्रभाव के रूप मे यह एक क्लासिक प्रेरणा का स्रोत रहा है । विशेष तौर से जब सान्तायना की कविताओ और 'कविता तथा धर्म' के प्रसग में उसकी इस पुस्तक को पढा गया तो प्लेटोवाद, अरस्तूवाद और आधुनिक प्रकृतिवाद का यह काव्यमय समिश्रण शिक्षित लोगो के बीच नये मानवतावाद की बाइबिल बन गया, जो आधी ईसाई थी और आधी ग्रीक । इसमे युवक स्वतत्र विचारको का मेल—सगठित धर्म से करा दिया, और कट्टर दिमागो को अधविश्वासो से ऊपर उठाया । सबसे बढ कर इसने वह किया जो कि जेम्स भी करना चाहता था, अर्थात् इसने बुद्धि को उसके उचित स्थान पर रखा। इस नये भाव के अनुसार मनुष्य की आत्मा को उसके शरीर से अलग किये बिना या बुद्धि का श्रद्धा से विरोध उत्पन्न किये बिना भी बुद्धिसगत रूप से जीवन बिताया जा सकता था । जेम्स के दर्शन की तरह इसमे भी बुद्धि को धार्मिक अनुभव मे एक माध्यमिक, व्याख्यात्मक भाग दिया गया है, लेकिन जेम्स से बढकर सान्तायना ने यह माना है कि युक्तिसगत अनुभव उस कल्पनालोक या भावलोक के

द्वार खोल देता है जो सीमाहीन तथा स्वतत्र है।

इसके बाद जोसिया रोइस ने निरपेक्ष सत्ता के आदर्शवादी भाव का सशोधन इस रूप मे किया जिससे जेम्स और आस्तिको की आलोचना का उत्तर मिल सके। यह कार्य उसने अपनी पुस्तक 'दि प्रोब्लम ऑफ क्रिश्चियेनिटी' मे किया जिसमे धार्मिक अनुभव की अधिक मानवतावादी और सामाजिक व्याख्या की गई है। इसने ही दर्शन और धर्म मे उस समझौते की शुरुआत हुई जो जेम्स के बाद मे अब तक धार्मिक विचार की विशेषता रहा है। ब्रह्माण्ड-शास्त्रीय कल्पना को छोडकर रोइस ने इस प्रकार के उद्धारशील समाज के बारे मे एक व्यापक सिद्धान्त बनाने की कोशिश जैसा कि चर्च के बारे मे माना जाता है की उसे होना चाहिए। इस दर्शन के अनुसार सब धार्मिक मनुष्यो का एक अनन्त 'प्रिय समाज' है जिसकी आत्मा ईश्वर है। उनकी श्रद्धा सभी सदस्यो द्वारा एक दूसरे की आत्माओ और अनुभवो की व्याख्या करने के प्रयत्नो के ऊपर निर्भर है। इसी प्रयत्न से वे ज्ञान, कष्ट आनन्द और उपलब्धि की एकरूप दशा मे ईश्वर के अधीन, भागीदार हो जाते है। धार्मिक जीवन का इस प्रकार का भाव चर्च को व्यवहार रूप मे दिव्य बना देता है, और 'सामाजिक धर्म-शास्त्र' की दिशा मे उससे कही आगे चला जाता है जितना कि अधिकाश आस्तिक जाने को तैयार थे। तो भी, इस सदी की ईसाइयत की समस्याओ की ओर ध्यान खीचने मे सफलता मिली। अमरीकी दर्शन और उदारवादी धर्म-शास्त्र मे जो व्यक्तिवाद आता जा रहा था उसका उसने प्रतिकार किया। उस समय अमरीकी आदर्शवादियो मे धार्मिक अनुभवो का औचित्य ब्रह्माण्डीय वास्तविकता या सत्ता के बजाय मनुष्य के वैयक्तिक, सामाजिक और भलाई-बुराई के ऐतिहासिक अनुभवो के आधार पर, सनातन सत्ता की बजाय कालगत प्रक्रिया तथा मानवीय मूल्यो के आधार ठहराने के प्रवृत्ति थी। रोइस ने इस प्रवृत्ति को पूरा प्रोत्साहन दिया।

धार्मिक अनुभव के सिद्धान्त पर जेम्स के दृष्टिकोण के लिए आदर्श-

वाद के अन्दर की इन प्रवृत्तियो की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण आम अनुभव के सिद्धान्तो के प्रति वस्तुगत दृष्टिकोणो की वृद्धि है। न केवल प्रायोगिक दार्शनिको द्वारा अपितु मनोवैज्ञानिको के द्वारा भी अन्तर्दर्शन के लिए चेतना के प्रकारो का 'दशा'ओ के रूप मे वर्णन व्यावहारिक रूप मे छोड दिया गया है। जेम्स की पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ साइकोलौजी' के कम से कम आधे भाग मे जिस प्राणिशास्त्रीय या डार्विनियन दृष्टिकोण को अपनाया गया है उसने अन्तर्दशन के प्रति एक आम विद्रोह के लिए रास्ता साफ कर दिया। परिणामत १९०० मे प्रचलित 'धार्मिक चेतना' के अध्ययन का स्थान धार्मिक व्यवहार के अध्ययन ने ले लिया। इससे नृतत्व-शास्त्रीय तथा समाज-शास्त्रीय खोजबीन के लिए रास्ता खुल गया। आज तो धर्म का प्रायोगिक विज्ञान नृतत्व-शास्त्र, समाज-शास्त्र और मन्त्र-विश्लेषण का समिश्रण बन गया है। दार्शनिको के बीच जोन ड्यूवी और धर्म-शास्त्रियो के बीच रीनहोल्ड नीबर ने धार्मिक पर्यवेक्षको का ध्यान अनुभव के वैयक्तिक तथा एकाकी रूपो से मानवीय इतिहास और सस्कृति सस्थाओ, रिवाजो और निहित स्वार्थों की ओर खीचा है। मनुष्य के विज्ञान मे इस क्रान्तिकारी विचलन का मतलब यह नही है कि आत्मज्ञान को या वैयक्तिक मूल्यो के प्रति चिन्ता को छोड दिया गया है। इसके विपरीत पिछले पचास वर्षो मे आत्म-ज्ञान मे जो वृद्धि हुई है उसका मुख्य कारण ही यह है कि अब व्यक्तियो का अध्ययन अलगाव मे न करके उनके परिवेश, एक-दूसरे के साथ उनके ऐतिहासिक तथा सामाजिक सम्बन्ध और उनके उत्तराधिकारो के आधार पर किया जाता है। सगठित धर्म को अब अप्रत्यक्ष नही माना जाता क्योकि अपने वैयक्तिक जीवन मे कोई मनुष्य प्रत्यक्ष धार्मिक अनुभव से इतना ही दूर हो सकता है जितना कि सार्वजनिक जीवन मे।

धर्म के इस नये सामाजिक विज्ञान का प्रभाव सबसे अधिक धर्म-शास्त्र पर पडा है। जैसा कि हमने पहले के अध्यायो मे देखा है जेम्स की तरह अब धार्मिक स्थिति या मनुष्य और ईश्वर के बीच के सम्बन्ध

की इस रूप मे कल्पना नही की जाती कि अपने एकान्त मे बैठा मनुष्य ब्रह्माण्ड मे विद्यमान ईश्वर के समक्ष उपस्थित होता है। यह सम्बन्ध अब सास्कृतिक तथा ऐतिहासिक घटनात्मक हो गया है जिसमे मनुष्यो को अपने धार्मिक निर्णय करने और अपने धार्मिक विश्वास बनाने के लिए अन्य मनुष्यों तथा ईश्वर दोनो के साथ सम्बन्ध स्थापित करना होता है। धर्म वैयक्तिक अवश्य है पर व्यक्ति तो सामाजिक प्राणी है ओर ईश्वर भी मानवीय इतिहास मे विद्यमान है और साथ ही किसी विशेष आन्दोलन से ऊपर उठा हुआ है। बहुत ही कम धर्म-शास्त्रियो ने ऐसा कहा है कि ईश्वर ब्रह्माण्डीय सत्य या 'ससार का शासक' नही है, पर व्यावहारिक तथा धार्मिक उद्देश्यो के लिए ईश्वर को धर्म से अधिक प्राकृतिक नही माना जाता। इस प्रकार धर्म-शास्त्रियो और दार्शनिको का ऐतिहासिक मनोवृत्ति वाला बन जाना इस शताब्दी के दौरान मे अमरीकी सस्कृति के रूप परिवर्तन का ही अग है, पर धार्मिक अनुभव के लिए यह परिवर्तन विशेष महत्त्व का सिद्ध हुआ है।

इन नये विकासो का बहुत स्पष्ट और व्यावहारिक प्रभाव व्यक्तित्व तथा अनुभव की जानकारी के ऊपर पडा है। अब उस तरह के अनुभवो पर भी स्वास्थ्य और बीमारी के भाव लागू होने लगे है जिन्हे पहले केवल पाप और मुक्ति के शब्दो मे सोचा जाता था। जब जेम्स ने धर्म के प्रकारो को स्वस्थ और अस्वस्थ के भेदो मे बॉटा था तब मानो भविष्यवाणी ही कर रहा था। स्वस्थ मन और अस्वस्थ मन मे अन्तर बताने मे तो वह और भी सूक्ष्म भविष्यवाणी कर सका था। अब मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और मनोविश्लेषणात्मक निदान ने ऐसे साधन उत्पन्न कर दिए है जिनमे, कम से कम कुछ सीमा तक, एक व्यथित आत्मावाला व्यक्ति अपनी दशा को आलोचनात्मक रूप मे समझ सकता है। पहले तो मनुष्यो के पापो पर ईश्वर के शब्दो द्वारा एक आम तथा पारम्परिक निर्णय दिया जाता था, और इसी के आधार पर किसी पापी को अपराधी घोषित कर दिया जाता था। अब इसके स्थान पर ब्योरेवार निदान और चिकित्सा का

भी प्रयोग होने लगा है। अपराध और रोग, नैतिकता और धर्म तथा शाश्वत तथा सामयिक कल्याण के बीच मे जो पक्की रेखाएँ पहले खीची जाती थी वे फीकी पड गई है। कुछ भेद तो अवश्य बना रहेगा, पर ज्यो-ज्यो व्यक्ति या आत्मा के रूप मे शरीर और मन मे एकता स्थापित होती जा रही है त्यो-त्यो स्वास्थ्य, पवित्रता और मुक्ति भी मिलकर एकात्मक भले ही पेचीदी समस्या बनते जा रहे है। 'धर्मरोगी' व्यक्ति को अधिक अच्छी प्रकार समझने के द्वारा सामान्य धार्मिक अनुभव मे भी हम जेम्स की तुलना मे अधिक जानते है कि प्रार्थना मे वास्तव मे किस चीज़ का आदान-प्रदान होता है, रहस्यवादी चरम अनुभूति मे क्या विद्यमान रहता है, और दिव्य ज्ञान कहाँ से आता है। इस तरह का ज्ञान का यद्यपि अपने बचपन मे है पर पिछले पचास वर्षो मे काफी प्रगति हुई है। एण्टन टी० बॉइसँन ने सबसे पहले अपनी पुस्तक 'दि एक्सप्लोरेशन ऑफ दि इनर वर्ल्ड' (शिकागो, १९३६) मे धार्मिक 'स्वस्थ चित्तता' को सबसे पहले चुनौती दी थी और उसके बाद से ऐरिक फ्रौम दूसरे व्यक्तियो ने इस तथ्य को लोकप्रिय बनाया है कि धार्मिक क्रिया-कलापो का मानसिक स्वास्थ्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। १९०० मे जिस तरह डॉ० आर० एम० बक ने एक व्यक्ति को 'ब्रह्माण्डीय चेतना' का रोगी बताया था, वैसा आज कोई मनोविश्लेषक नही करेगा। लेकिन तब जेम्स ने इस निदान को बडी गभीरता से लिया था। जिन अस्वस्थ आत्माओ और 'विभक्त व्यक्तित्वो' का वर्णन जेम्स ने अपनी पुस्तक मे किया था उनमे अब निश्चित रोगो के आधार पर सही ढग से अधिक अतर किया जा सकता है। दूसरी ओर इन रोगियो का इलाज करने की कुछ विधियाँ अब भी पादरियो के तरीको पर आधारित है।

मनोविश्लेषणात्मक तथा धार्मिक व्यवसायो मे सहयोग निरतर बढ रहा है। मनोविश्लेषक अब धर्म तथा इसकी बचाव-विधि को बच्चो की भ्राति कहकर नही चल सकते, और न पादरी ही मानसिक व्याधियो को अब आत्मिक कष्ट बता सकते है। १९२३ से पादरियो को सगठित

तौर पर मानसिक चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा दी जाने लगी है, और विषय मे कई पत्रिकाएँ भी प्रकाशित की जाने लगी है।

धार्मिक तथा मनोविश्लेषक व्यवसायो के बीच इस बढते हुए सहयोग से पता चलता है कि इन दोनो मे से किसी को भी सामने आनेवाली समस्याओ का सामना करने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नही है। नैतिक सलाह देने की एक नयी कला का, और शायद एक नए व्यवसाय का विकास हो रहा है जिसके तकनीकी साधनो मे मानसिक बीमारियो और स्वास्थ्य के विषय मे चिकित्सात्मक समझ, नैतिक माँगो और आदर्शो का एक समालोचनात्मक मूल्याकन और सामाजिक पुनर्निर्माण मे व्यावहारिक रुचियाँ शामिल है। जेम्स के समय के 'मानसिक चिकित्सा' आन्दोलन अब बहुत प्रारम्भिक मालूम पडते है यद्यपि इन्होने बहुत-सा बुनियादी काम किया था। एक मत के रूप मे उनका मूल्य अब कम हो गया है क्योकि उनका यह आग्रह कि मुक्ति मे चिकित्सा भी शामिल है अब आमतौर पर स्वीकार कर लिया गया है।

आम तौर पर, धार्मिक चिकित्सा अब अधिक अन्तर्मतीय और अधिक औपधिक हो गई है, और उसके धर्मशास्त्र का सम्बन्ध मुक्ति के सिद्धान्त से और निकट का हो गया है। क्योकि धर्मशास्त्र के लिए यह सिद्धान्त बनाए रखना कि आत्मा की मुक्ति 'शाश्वत जीवन' का मामला है चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण हो, यह सचाई तो रहती है कि इस प्रकार की मुक्ति की चिन्ता इसी जीवन मे होती है, और इसके द्वारा जो आशाएँ, भय, तथा इच्छाएँ जगायी जाती है उनसे यहाँ और अभी निपटना होता है। फिर उन्हे यह कहकर नही टाला जा सकता कि दूसरे ससार की तुलना मे इस ससार का कोई महत्त्व नही है। चाहिए तो यह कि दूसरे ससार के ज्ञान को इस ससार मे मनुष्य के कल्याण के काम मे लाया जाय, नही तो विचारपूर्ण आदमी की निगाह मे धर्म एक अनैतिक सतान्त्वना बनकर रह जाता है।

इस शताब्दी मे जो सामाजिक सकटो, चिन्ताओ और असुरक्षाओ के

अनुभव हुए हे उसने धार्मिक अनुभव के भाव मे बहुत विस्तार तथा रूप परिवर्तन ला दिया है । पहले तो असुरक्षाओ, चिन्ताओ, कष्टो, अत्याचारो और शहादतो के वे अनुभव अब दिन प्रतिदिन होने लगे है जिन्हे हमारे पूर्वजो ने मध्ययुगीन कहकर टाल दिया था, ऐसे अनुभवो ने प्रत्येक युग मे मनुष्यो को घुटने टेकने पर विवश कर दिया है । इन निर्दयताओ के होने पर मनुष्य अपने ईश्वर के बिल्कुल निकट सम्पर्क मे आ जाता है, उसे ईश्वर ढूंढना नही पडता, वह उसकी ओर खदेड दिया जाता है । सान्तायना की भाषा मे, इस समय 'आध्यात्मिकता' के बजाय पवित्रता को प्रमुखता मिल जाती है । बुनियादी मानवीय वफादारियो की इतनी कठोर परीक्षा होती है कि प्रसन्नता तथा दूसरे आदर्शो की प्राप्ति के सकारात्मक प्रयत्न पृष्ठभूमि मे चले जाते है । बुराई को दूर करने की समस्या के साथ साथ, आन्तरिक तथा बाह्य रूप से बुराई का सामना करना एक वास्तविक समस्या बन जाता है । अमरीकी लोग घटनाओ के इस मोड के लिए तैयार नही थे क्योकि उन्होने मान रखा था कि बीसवी सदी तो 'प्रगति की सदी' है । यह बात कि आविष्कारो मे वृद्धि के साथ साथ कष्टो मे भी वृद्धि होती जाय केवल हेनरी जार्ज के उपदेशो का अनुसरण करने वाले लोगो को समझ मे आ सकती थी । अमरीकी समाजवादी, जिनमे से कुछ ही उग्र मार्क्सवादी और अधिकाश 'सफेद पोश' थे, तकनीकी प्रगति और सार्वभौम सहयोग के द्वारा प्रगति मे अविचल विश्वास रखे हुए थे, उन्हे तो 'राष्ट्रीय समाजवाद' स्वर्ग का ही राज्य मालूम पडता था । मूर्खो के इस स्वर्ग ने पूंजी या बिना पूंजी वाले कल्पनाशील अमरीकियो को १९२० के दशक मे सामाजिक सघर्ष और विनाश के प्रति अन्धा बना दिया था । परिणामत १९३० का भ्रान्ति निवारण और भी दर्दनाक हो गया । यह स्थिति इलहामी .. ज्ञान .के बहुत अनुकूल थी । सब तरह के मसीहा पैदा भी हुए जिनका सदा की तरह खुले कानो और पत्थरो से स्वागत किया गया ।

उस समय तो मानो सारा समाज ही शाप-ग्रस्त हो गया था । विलियम

जेम्स तथा उसके समकालीन कल्पना भी नही कर सकते थे कि असुरक्षा और 'विभक्त चेतनाओ' का ऐसा समाजीकरण हो जायगा। जेम्स को अपनी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला मे चेतना के विभेदो के जिन विभिन्न नमूनो से पाला पडा था, वे अब हमारे लिए सुपरिचित चीज हो गये है, इतने सुपरिचित कि हमारे धार्मिक समाजशास्त्री उन्हे 'मानवीय स्थितियो' के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत करने लगे है, जब कि जेम्स उन्हे केवल धर्म की उग्र अभिव्यक्तियो के नमूने मानता था। जेम्स के समय जिन धार्मिक घटनाओ को चेतना का विशिष्ट रूप माना जाता था, वे ही अब सत्तावादी विश्लेषण की सामग्री बन गई है। रहस्य और पाप-पूर्ण स्थितियो को सत्तावाद मनोविज्ञान से बाहर ले आया है। मानवीय स्थिति का सत्तावादी वर्णन इतना अन्तर्दर्शनपूर्ण और भावनात्मक नही जैसा यह जेम्स के मनोविज्ञान मे था, पर यह सामाजिक रूप से अन्तर्मुख तथा रोमानी है। प्रार्थना के समय जिस दिव्य उपस्थिति और ईश्वर के साथ वैयक्तिक सम्बन्धो की जेम्स ने मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है, वे वे ही अनुभव है जिनका वर्णन सत्तावादी धर्म-शास्त्रियो ने 'अतीन्द्रिय परसत्ता के साथ वस्तुगत सम्बन्ध' के रूप मे किया है। वर्णन किए गए अनुभव सर्वथा वैयक्तिक है, पर अनुभवो की पृष्ठभूमि चेतना की दशाओ से बदल कर सामाजिक स्थितियो की हो गई है। जिसे जेम्स धार्मिक भूख का परिवर्तन कहता है, उसे अब सास्कृतिक रूपान्तरण माना जाता है। इस काल मे दार्शनिक विश्लेषण ने आम तौर पर जिस वस्तुगत, सामाजिक, यथार्थवादी प्रवृत्ति का अनुसरण किया है, वही धर्म के विश्लेषण मे भी दिखायी देती है।

लेकिन सत्तावादी विश्लेषण की प्रकृति जेम्स के मनोविज्ञान की प्रकृति से सर्वथा भिन्न है। बीच मे घटी दर्दनाक घटनाओ की छाप इस-पर पडी है। एक सच्चे वैज्ञानिक के समान जेम्स अपने धार्मिक रोगियो और उनके आवेगो से अलग होकर, निरावेशरूप से उनकी बात के औचित्य का मूल्याकन कर सकता था, पर आज का सत्तावादी वर्णन

हुई धर्म-निरपेक्ष रुचियो के बीच धर्म के कार्य को अपना पवित्र कर्त्तव्य माने हुए है। उन दिनो धर्म विज्ञान से समझौता करना तथा अपना औचित्य सिद्ध करना चाह रहा था, जब कि आज धर्म को अपनी सत्ता के लिए उन प्रबल सास्कृतिक शक्तियो के साथ सघर्ष करना पड रहा है जो इसे लापरवाही तथा घृणा की दृष्टि से देखते है। इस शताब्दी का पहले चतुर्थांश मे 'वैज्ञानिक युग मे धर्म' पर अनेक पुस्तके थी, ओर उनमे विज्ञान से तात्पर्य 'प्राकृतिक विज्ञान' से था। इस प्रसग मे सबसे उचित धर्म निरावेशता की भावना का प्रतीत होता है। वाल्टर लिपमैन ने, जिस पर जेम्स और सान्तायना का प्रभाव था, निसस्वार्थता को ऊँचा धर्म बताया था। उस समय पक्षपात और आग्रह से ऊपर उठकर, स्पिनोजा की तरह ईश्वर को बौद्धिक रूप से प्यार करना और समझने मे ही शान्ति पाना उस समय पवित्रता और आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा माना जाता था। धर्म का प्रसंग आज कितना बदल गया है। आज तो धर्म वचन-बद्धता, निर्णय, विश्वास और वैयक्तिक उत्तरदायित्व का नाम हो गया है, और आज धार्मिक होने के लिए ऐतिहासिक निर्णयो मे भाग लेना आवश्यक है।